RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

Dhingra Family Foundation USA

वर्ष : 2, अंक : 6
जुलाई-सितम्बर 2017
मूल्य : 50 रुपये

शिवना प्रकाशन : नए सेट की पुस्तकें

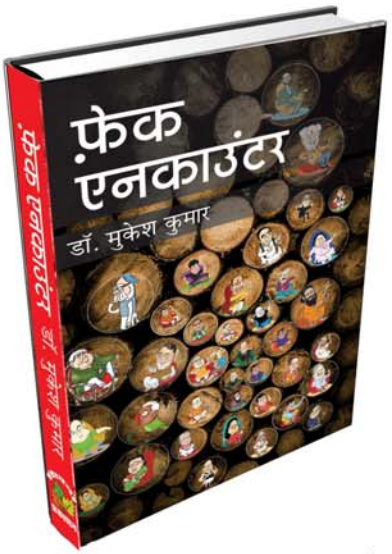

सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा स्तंभ लेखक श्री मुकेश कुमार के समय-समय पर लिखे गए व्यंग्य लेखों का संग्रह-

फ़ेक एनकाउंटर

मूल्य : 300 रुपये

उर्दू के वरिष्ठतम शायर प्रोफ़ेसर मुज़फ़्फ़र हनफ़ी की ग़ज़लों का संग्रह देवनागरी लिपि में-

ग़ज़ल दस्ता

मूल्य : 220 रुपये

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार डॉ. सुधा ओम ढींगरा की नई कहानियों का संग्रह-

सच कुछ और था...

मूल्य : 250 रुपये

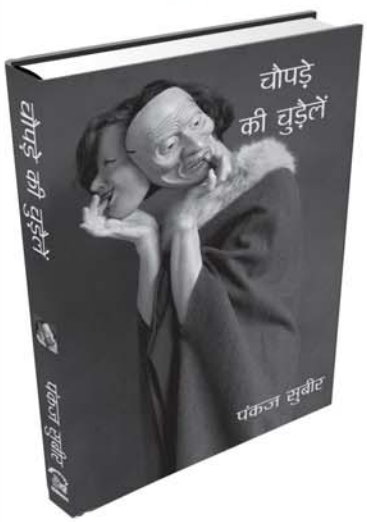

हिन्दी के चर्चित कहानीकार तथा उपन्यासकार पंकज सुबीर की नई तथा चर्चित कहानियों का संग्रह-

चौपड़े की चुड़ैलें

मूल्य : 250 रुपये

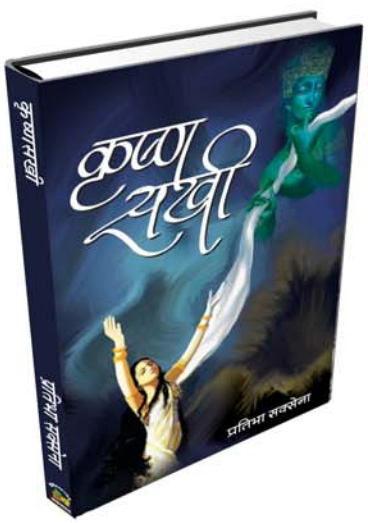

प्रवासी साहित्यकार प्रतिभा सक्सेना का महाभारत की पौराणिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास-

कृष्ण सखी

मूल्य : 375 रुपये

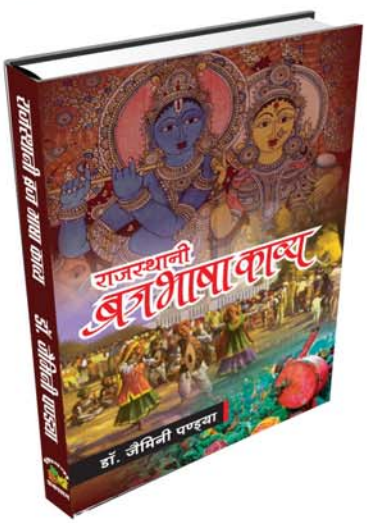

आलोचक तथा समीक्षक डॉ. जैमिनी पण्ड्या द्वारा राजस्थान के आधुनिक ब्रज काव्य पर विशेष पुस्तक-

राजस्थानी ब्रजभाषा काव्य

मूल्य : 550 रुपये

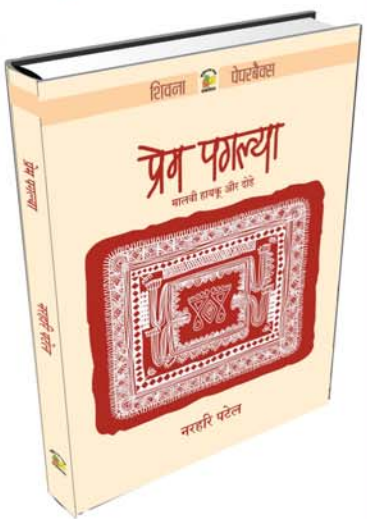

मालवी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरहरि पटेल के मालवी बोली के हायकु और दोहों का अनूठा संग्रह-

प्रेम पगल्या

मूल्य : 200 रुपये

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar
एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंगकॉक)
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, शहरयार
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह
संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 2, अंक : 6, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2017
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

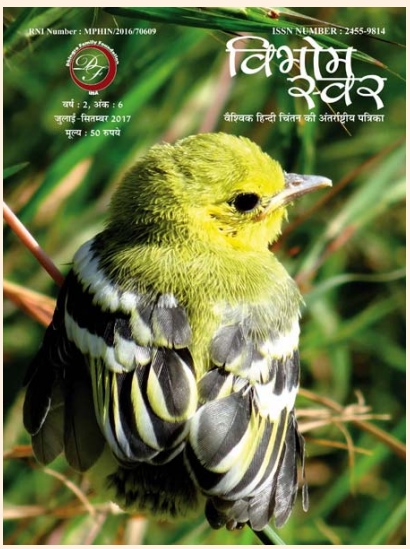

आवरण चित्र
पल्लवी त्रिवेदी

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-678-9056 (H),
+1-919-801-0672(MO.)
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 2, अंक : 6

त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2017

संपादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

शैलजा सक्सेना

सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 12

कहानियाँ

मेरे बाद

पुष्पा सक्सेना 15

काग़ज़ की नावें

मुकेश वर्मा 21

एक और दीवार

मंजुश्री 23

लौट आओ.....

दीनदयाल नैनपुरिया 28

पाकेट

प्रतिभा सक्सेना 32

लघुकथाएँ

सत्संग

नकुल गौतम 22

डिस्चार्ज

मार्टिन जॉन 27

ये कौन सी डगर है

मार्टिन जॉन 39

दादी माँ

सुभाष चंद्र लखेड़ा 67

भाषांतर

संतुष्टि

पंजाबी कहानी : रीतू कलसी

हिन्दी अनुवाद: एन. नवराही 35

लिप्यांतर

कुमकुम बहुत आराम से है

उर्दू कहानी : ज़ाहिदा हिना

हिन्दी लिप्यांतरण : ज़ेबा अल्वी 40

व्यंग्य

आख़िरकार विकास मिल गया

मोहन लाल मौर्य 45

कुत्ता लाओ, हुकुम बचाओ!

अशोक गौतम 47

आलेख

अरब देश की औरतें

हव्वा का पर्दानशीन चेहरा

प्रस्तुति एवं अनुवाद: सुधा अरोड़ा 48

शोध आलेख

प्रवासी हिन्दीकथा साहित्य: वृद्ध एवं स्त्रियाँ

सुबोध शर्मा 53

आवरण चित्र कथा

एक दिन बन सकूँ चिड़िया

पल्लवी त्रिवेदी 59

शहरों की रूह

जो ख़ौफ़ आँधी से खाते तो.....

संतोष श्रीवास्तव 60

ग़ज़लें

डॉ. कुमार प्रजापति 34, 46

प्रदीप कांत 48, 52, 58, 71, 73

अशोक अंजुम 66

चन्द्रसेन विराट 66

ज़हीर कुरैशी 67

गीत

विष्णु सक्सेना 68

कविताएँ

मालिनी गौतम 69

शैफाली गुप्ता 70

पंकज त्रिवेदी 71

मंगलमूर्ति 72

डॉ. अमरेंद्र मिश्र 73

महेश शर्मा 76

नवगीत

सौरभ पाण्डेय 74

दोहे

जय चक्रवर्ती 75

साहित्यिक समाचार

रवीन्द्रनाथ त्यागी पुरस्कार प्रस्तावित 77

कवि योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' सम्मानित 78

पुरस्कार अर्पण समारोह सम्पन्न 79

सूर्यबाला को जीवन-गौरव सम्मान 79

अशोक कश्यप सम्मानित 79

'हँसी की चीखें' का विमोचन संपन्न 80

राकेश मिश्र सम्मानित 80

अभिनव अरुण के संग्रह लोकार्पित 81

हेमंत स्मरण और कवि सम्मेलन 81

ओमप्रकाश प्रजापति सम्मानित 81

आख़िरी पन्ना 82

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :_____ **डाक का पता :**_____

_____ **सदस्यता शुल्क :**_____ **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**_____

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) :_____ **दिनांक :**_____

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

आने वाली पीढ़ी कभी माफ़ नहीं करेगी

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल्ल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
फोन : +1-919-678-9056
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

मित्रो,

हाल खचाखच भरा है। नाटक आरम्भ होने में कुछ ही क्षण शेष हैं। माइक पर घोषणा शुरू होती है और पर्दा उठ जाता है। एक मोहल्ले का सीन है और उस मोहल्ले के कई घर नज़र आ रहे हैं। कुछ पलों के बाद शिशु के रोने की आवाज़ आती है और साथ ही बधाइयाँ ! ईश्वर कृपा करे ! की स्वर लहरी उभरती है। पता चल जाता है कि उन घरों में से किसी एक घर में बच्चा हुआ है और वह हिन्दू परिवार है। फिर एक शिशु के रोने की आवाज़ के साथ ही मुबारकाँ ! अल्लाह मेहर करे ! हॉल में गूँजता है। यानी मुस्लिम परिवार भी यहाँ रहता है। दूर कहीं किसी घर से Congratulations !!! God bless this child ! कहता हुआ लहराता है स्वर और साथ ही शिशु की आवाज़ आती है। ईसाई परिवार भी इस मोहल्ले में है। अब वाहेगुरु !! वाहेगुरु !! के कीर्तन के साथ ही शिशु के रोने के स्वर हाल में चारों ओर सुनाई देते हैं। सिख परिवार में भी शिशु पैदा हुआ।

दृश्य बदलता है। छोटे-छोटे बच्चे खेल रहें हैं, पता नहीं चलता कौन किस परिवार से है। बच्चे थोड़े बड़े होते हैं, पारिवारिक और धार्मिक चिह्न उनके शरीरों पर स्थान पा लेते हैं। उनके अलग-अलग होने की पहचान होने लगी है। फिर भी वे साथ हैं। प्रेम, सद्भावना और मानवता उन्हें इकट्ठा रखे हुए है।

पर्दा गिरता है फिर उठता है। बच्चे युवा हो चुके हैं। पर अब वे दूसरे के ख़िलाफ़ हो गए हैं। प्रेम, सद्भावना और मानवता की जगह नफ़रत स्थान ले चुकी है। क्यों ? क्या हुआ ! बस विचारधाराओं और आस्थाओं में संघर्ष शुरू होते ही जीवन के मुख्य तत्त्व प्रेम, सद्भावना और मानवता सबसे पहले गायब हो गए। जबकि ये तीनों किसी भी धर्म और आस्था के मूल मन्त्र हैं।

यह नाटक नहीं, आज का यथार्थ है। आज के युग की सच्चाई है। आस्थाओं और विचारधाराओं के वशीभूत हम जीवन के मूल तत्त्वों से परे होते जा रहें हैं। जिन आस्थाओं, विचारों, मान्यताओं, परंपराओं को मानव ने स्वयं बनाया और पाला-पोसा; वही उसकी मानवता को निगल रहीं हैं।

एक दूसरे की आस्थाओं को काटने और विश्वास को तोड़ने के लिए हदें पार की जा रही हैं। अपने रास्ते को सही और दूसरे को ग़लत समझा जा रहा है। हालाँकि यह कोई नई बात नहीं, पूरे विश्व के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हर युग में प्रवृत्तिओं और आस्थाओं की टक्कर और संघर्ष रहा है। विदुर की तरह बुद्धिजीवियों ने हर युग में पालयन किया है और आज भी यही हो रहा है। बुद्धिजीवी समाज, राजनीति और आर्थिक कारणों को दोषी ठहरा कर समस्याओं से पल्ला झाड़ रहें हैं।

आधुनिक युग की प्रगति का परिणाम ऐसा होगा कभी सोचा नहीं था।

यह परिवर्तन का युग है। भूमंडलीकरण ने एक ऐसे समाज को जन्म दिया है, जिसमें युवा पीढ़ी की शिक्षा, सोच, विचारधारा तक़रीबन एक सी है। यह पीढ़ी परिवर्तन चाहती है। पुरानी मान्यताओं, परंपराओं और रूढ़ियों की कट्टरता से आज़ादी चाहती हैं। दूसरी ओर

संपादकीय

सामाजिक और धार्मिक असहिष्णुता उन्हें अंतर्विरोधी बना ऊहापोह की स्थिति में ले आई है। उनकी सोच स्पष्ट नहीं हो पा रही।

चारू मजूमदार और कानू सान्याल के नक्सलवादी आंदोलन पर पिछले दिनों कुछ किताबें पढ़ीं। आंदोलन की शुरूआत जिन कारणों के लिए हुई, अब नक्सलवाद बदल कर आर्थिक विपन्नता, सामाजिक भेदभाव और राजनितिक स्वार्थों में परिवर्तन होकर अलग रूप धारण कर चुका है और आतंकवाद तो उभरा ही धार्मिक कट्टरता से है। धार्मिक और राजनीतिक शतरंज का मोहरा बने आतंकी अब मानव और मानवता को नष्ट करना चाहते हैं। उनका कोई धर्म नहीं रहा। बस क्रूर, वीभत्स और विध्वंसक मानसिकता उनमें पैदा हो चुकी है।

आतंकवाद नासूर बन गया है, इसे समाप्त करना ही होगा अन्यथा यह पूरी मानवता में फ़ैल कर उसे नष्ट कर देगा। समझते हुए भी लोग इस यथार्थ को स्वीकार नहीं करना चाहते। आप सोचेंगे मैं ऐसा क्यों कह रही हूँ, क्योंकि अभी तक विचारधाराओं और आस्थाओं के द्वार लाँघ कर लोग इंसानियत की रक्षा के लिए एकजुट नहीं हुए। अभी भी एक दूसरे पर उँगली उठाकर और सरकार की आतंकवाद नीतियों की आलोचना करके अपनी ज़िम्मेदारियों से परे हो रहे हैं। आतंकवाद की जड़ें बहुत गहरी जा चुकी हैं, इन्हें निकाल फेंकना किसी एक सरकार या देश के वश का नहीं। अकेली सरकार कहाँ निपट पाएगी! सबको अपने-अपने मोर्चे पर इसका विरोध कर लड़ना पड़ेगा।

विदेश में आकर जहाँ दृष्टिकोण में व्यापकता आई है, वहीं सोच के दायरे को भी विस्तार मिला है। देश प्रेम क्या होता है? यहीं आकर समझ पाई हूँ। हर बात पर सरकार की ओर नहीं देखा जाता। देश और समाज के उत्थान के लिए क्या ज़रूरी कदम उठाए जाएँ, इस पर ध्यान दिया जाता है और लोग वे सब करने को तत्पर रहते हैं। हाँ, आतंकवाद को समाप्त करने के लिए सब सरकार के साथ हैं। किसी भी देश की शांति और सुरक्षा के लिए आतंकवाद का सफाया अत्यंत आवश्यक है।

आस्थाओं और विचारों का संघर्ष चलता रहेगा.... अभी जो अजगर पूरे विश्व को निगलने को आतुर खड़ा है, उसे मिलकर पछाड़ लें..... गोलियाँ अमरनाथ जा रहे यात्रिओं पर चलाई जाएँ या मक्का जा रहे यात्रिओं पर, मरता आम आदमी है। उस आम आदमी की ख़ातिर राजनीति न करें। सोशल मीडिया पर इन यात्रिओं की मौत पर ऐसी-ऐसी टिप्पणियाँ पढ़ने को मिलीं कि सिर शर्म से झुक गया। क्या विचारधाराओं ने सोच को इतना संकुचित कर दिया है कि भीतर की इंसानियत मर गई है। तभी तो ऐसी विचारधाराएँ समाज में कुछ परिवर्तन नहीं ला पातीं बल्कि अपनी अलगाववादी सोच से देश का वातावरण ज़रूर दूषित करतीं हैं।

मित्रो, अगर निजी स्वार्थों और हितों से परे होकर नहीं सोचेंगे तो आने वाली पीढ़ी कभी माफ़ नहीं करेगी। कहीं ऐसा न हो आतंकवाद एक प्रवृत्ति बन जाए और वह मानसिकता आने वाली नस्लों को ही अपनी लपेट में ले ले..... तब वाद, विचारधाराएँ और आस्थाएँ धरी की धरी रह जाएँगी....

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

मेघ एक बार फिर से घुमड़ कर आसमान पर छा रहे हैं। बिना थके कितनी सदियों से मेघ यूँ ही आते हैं और धरती को जल से सींच जाते हैं। वर्षा ईश्वर का सबसे अनुपम उपहार है मानव को। और इस उपहार को मानव तक पहुँचाने वाले मेघ हैं। मेघों को हम सब का प्रणाम।

मित्रनामा

मानवता का बहुत बड़ा उपकार

आज मैं व्यग्र हो उठा क्योंकि विभोम-स्वर की रचनाएँ अपठित रह गई हैं और बहुत समय बीत गया है ! खैर, सुबह का भूला अगर शाम को वापस आ जाता है तो उसे भूला नहीं कहते हैं, यही सोचकर मैंने 'एक कायर दास्ताँ....' को पढ़ना शुरू किया! मैं किस्मत में यक़ीन नहीं रखता हूँ बल्कि अपने निर्णय और पुरुषार्थ पर विश्वास रखने को ज़्यादा तर्कसंगत मानता हूँ !! लेकिन इस कहानी में नायक यह मानता है कि, ''जीवन में सब कुछ किस्मत ही तय करती है!'' ऐसे लोगों से मुझे बड़ी कोफ़्त होती है, पर घुटन, उमस और चिल्लम चिल्ली से भरे दड़बे जैसे घर के ज़लालत भरे माहौल से तंग आकर नायक ने क्या तय किया, यह जानना बेहद ज़रूरी लगा और मैंने आगे बढ़ते रहने का ही निर्णय लिया !! आगे कहानी इतनी मज़ेदार हो गई कि मुझे हर्ष बाला शर्मा की क़िस्सागोई के हुनर पर ताज्जुब होने लगा पर ज़रा देर बाद ही मेरी ख़ुशी काफ़ूर हो गई ! जब गलीज़ बस्ती के तकलीफ़ से गुज़रते लोगों के बारे में पढ़ा तो समझ में नहीं आया कि इस गलीज़ जगह में इस अफ़साने की सुन्दर हीरोइन क्यों रहती होगी, पर मन की जिज्ञासा को मिटाना ज़रूरी था और इसलिए आगे की कहानी को पढ़ना ज़रूरी था!! कहानी अन्त तक पढ़ी और अवाक् रह गया !

गिलहरी को विभोम-स्वर के आवरण पर देखना मेरे लिए कितना सुखद है सो क्या कहूँ ! बचपन में गिलहरियों के पीछे भागना हम बच्चों का प्रिय खेल हुआ करता था ! आम का बड़ा सा बाग था हम लोगों का और बड़े से संयुक्त परिवार के हम ढेर सारे बच्चे गर्मी की छुट्टियों में खूब धमाचौकड़ी मचाते थे और हमारे इस आनन्दोत्सव के अनूठे साथी थे ये गिलहरी !! अचानक गिलहरी की इतनी सुन्दर और जीवंत तस्वीर के सामने आ जाने से मन जैसे सुदूर अतीत के भाव-भ्रमण में खो गया !! बहुत दु:ख होता है कि अब गिलहरियों के दर्शन नहीं होते, क्योंकि हमारे इलाके में लगातार गिलहरियों की तादाद कम हो रही है !! पल्लवी त्रिवेदी ने इस अद्भुत तस्वीर के संबंध में जो छोटी सी परिचयात्मक टिप्पणी दी है वह उनकी सुरुचि - सम्पन्नता एवम् कलात्मक दृष्टि का सुन्दरतम् साक्ष्य है !! आपसे यह नम्र निवेदन कि पल्लवी त्रिवेदी के प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते बेहतरीन फोटोग्राफी से आगे भी विभोम-स्वर के आवरण को सुसज्जित करते रहें !!

पश्चिम की हवाएँ ही कोहरे से भरी हुई नहीं हैं, बल्कि पूरब भी इस कोहरे से वंचित नहीं है !! लोग यहाँ भी वैसे ही हैं जैसे वहाँ -दिशाहीन और कुंठित !! प्रौद्योगिकीय विकास ने मानव जीवन को एक नया अर्थ दिया और नए आयाम खोले और देखते ही देखते संसार का काया-कल्प हो गया ! सालों का काम महीने में और महीने भर का काम मिनटों में होने लगा है ! सुदूर संसार के किसी अन्य देश में जा बसे अपने आत्मीय मित्रों/रिश्तेदारों तक हम अपनी बात, भावनाएँ और समाचार पल के सौवें हिस्से में ही पहुँचाने में सक्षम हो गए पर अपने घर के सदस्यों से पूरी तरह से कट कर तकनीकी मायाजाल में गुम हो गए, कह सकते हैं कि सामाजिक प्राणी से तकनीकी प्राणी में तब्दील हो गए !! अब हमारी संवेदना, विवेक और मनुष्यता भी लुप्त होने लगी है और हम हिंसक और असहिष्णु हो गए हैं !! अब बड़े से बड़ा नरसंहार, युद्ध या अन्य मानवीय त्रासदी हमारे लिए एक ख़बर मात्र होती है !! मनुष्य और मनुष्य के बीच की सहजीविता और सामंजस्य ही नहीं मनुष्य और प्रकृति के अंर्तसंबंध और पारस्परिकता भी नष्ट हुई है !! इसके जो विध्वंसक परिणाम सामने आए हैं उससे यदि हम समय रहते सचेत नहीं हुए तो सोशल मीडिया पर फैलता यह झूठ का ज़हर हमें बर्बाद करके छोड़ेगा !! नस्लवाद, आतंकवाद और छद्म राष्ट्रवाद की ज़हरीली खुराक के कारण हमें मानव से दानव बनते ज़रा भी देर नहीं लगेगी !! ट्विटर या वाट्सअप पर फैलते या फैलाए जा रहे अफ़वाहों पर हम सच की तरह यक़ीन कर ले रहे हैं और लज्जास्पद बात यह है कि हमारे राष्ट्राध्यक्ष और सम्मानित राजनीतिक शख्सियत अपने झूठ और फरेब से भरे पोस्ट डाल कर जनता को गुमराह कर रहे हैं !! सोशल मीडिया से मानव का भला तो क्या हो रहा है उनमें नस्लवाद, जातिवाद और धार्मिक वैमनस्यता का ज़हर बोया जा रहा है और इसका अपने संपादकीय में ज़िक्र करके मानवता का बहुत बड़ा उपकार किया है सुधा ओम ढींगरा ने !!

अंशु जौहरी की सोच का दायरा कितना विस्तृत है यह जानने के लिए सुधा ओम ढींगरा से उनकी गम्भीर बातचीत को ध्यानपूर्वक पढ़ना आवश्यक लगा !! एक अद्भुत प्रतिभा है सुधा ओम ढींगरा में साक्षात्कार करने की और इस अंक का साक्षात्कार भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण और सराहनीय है ! पेशे से हार्डवेयर इंजीनियर होते हुए भी साहित्य के प्रति अनुराग और समर्पण कैसा अद्भुत और आह्लादक संयोग है ! मुझे इस साक्षात्कार के दूसरे प्रश्न का उत्तर काफ़ी समीचीन लगा ! वैश्विक स्तर पर जो स्त्री की स्थिति है वो काफ़ी संतोषप्रद है ! वैश्विक मंच पर स्त्री एकदम सशक्त, सक्षम, सजग और जागरूक है ! शोषण के खिलाफ आंदोलन करने का जीवट और आत्मविश्वास पश्चिमी विकसित देशों की स्त्रियों में ज़्यादा है बनिस्बत भारत या अन्य विकासशील देशों की स्त्रियों के !! लेखन को स्वतंत्रता अर्जित करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम मानने वाली अंशु जौहरी के विचार काफ़ी सशक्त और स्पष्ट हैं ! बिना किसी लागलपेट के सच कहना कोई अंशु जी से सीखे ! कभी पारिवारिक सुख और शांति के नाम पर तो कभी संस्कार और संस्कृति के नाम पर स्त्रियों का जो शोषण भारतीय समाज में हो रहा है उसे सहने के लिए हर स्त्री विवश है, क्योंकि विरोध को निरस्त करने के लिए प्रताड़ना के जो तरीके पितृसत्तात्मक समाज अपनाता है वो रोंगटे खड़े कर देने वाले होते हैं !! विकसित देशों में स्त्री अपने अधिकार के लिए सहज ही उठ खड़ी होती है पर विकासशील देशों की स्त्रियाँ न सिर्फ अपने अधिकारों से वंचित हैं, बल्कि विरोध करने से घबराती हैं !! यहाँ एशियाई समाजों में

स्त्री असुरक्षित है; क्योंकि यहाँ के समाजों में पुरुष और स्त्री के बीच वर्चस्व का संघर्ष ज़्यादा सघन और कष्टकारी है ! यहाँ तो आज भी 11 साल की बच्ची की शादी 65 साल के बुड्ढे से हो जाती है और कोई प्रतिरोध नहीं होता है ! स्त्री का शोषण परंपरागत संस्कृति का ही एक हिस्सा है और रवायतों के नाम पर लड़कियाँ कुर्बान होती हैं ! भारत में लड़कियों को लड़कों से कमतर समझा जाता है और लड़की को एक भारी बोझ भी समझा जाता है ! लड़कों को उत्तराधिकारी समझा जाता है और लड़की को पराया धन समझा जाता है और लड़कों को अतिरिक्त महत्त्व मिलने के कारण वे काफ़ी उच्छृंखल होते हैं और लड़कियों और स्त्रियों पर रौब झाड़ना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं !! सही कहा है अंशु जौहरी ने कि - आवश्यक है कि हम बातचीत बेटी और बेटे दोनों से करें, ताकि दोनों को सही - गलत का इल्म हो ! - स्त्री - पुरुष समानता की पहली सीढ़ी यही होगी !! इस बेहतरीन और नायाब साक्षात्कार के लिए सुधा ओम ढींगरा और अंशु जौहरी को समवेत रूप से धन्यवाद !!

हिन्दी भाषा से मुझे आत्मिक स्नेह है, इसलिए अन्य सभी रचनाओं से पहले डॉ.नीलाक्षी फुकन के आलेख 'वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा' को ही पढ़ना श्रेयस्कर लगा !! हिन्दी भाषा हिन्दुस्तान की जीवन्त संस्कृति की संवाहिका है और इसलिए यह राष्ट्रभाषा ही नहीं अपितु जनभाषा है और इस भाषा के ज़रिए ही हम अपने उत्साह, सुख- दु:ख आदि संवेदनाओं को प्रकट करते आ रहे हैं, पर अपनी यह हिन्दी भाषा विकास के एक लम्बी प्रक्रिया से गुज़र कर आज वैश्विक पटल पर अपनी विलक्षण, विशिष्ट और सार्थक उपस्थित दर्ज कर रही है, यह जानना कितना संतोषप्रद और आह्लादक है यह नहीं कह सकता !! हिन्दी भाषा का विकास विभिन्न आंचलिक तथा देशज - विदेशज भाषाओं के शब्दों के आदान-प्रदान से हुआ है, इसलिए इस भाषा में ऐसी प्रखरता और आकर्षण है कि सबको सम्मोहित कर लेती है !! भारत जैसे भाषाई विविधता वाले देश में हिन्दी अपनी सहजता/सरलता के कारण दूसरी भाषाओं की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय तो हो ही रही है साथ ही तेज़ी से बदलते वैश्विक परिवेश में भी हिन्दी अपने लिए एक अलग स्थान बना पा रही है !! आज अमरीका और यूरोपीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है और वहाँ के विश्वविद्यालयों में हिन्दी शिक्षण की प्रक्रिया पर नीलाक्षी के सारगर्भित आलेख को पढ़कर हृदय गौरवानुभूति से छलक उठा !!

सुदर्शन वशिष्ठ के 'माँ और मोबाइल' को पढ़ना शुरू किया, क्योंकि सुदर्शन एक ऐसे कथाकार हैं जिनकी कहानियों को मैं कभी नहीं टालता ! सुदर्शन की यह कथा बिल्कुल ही अलग ढंग की लगी ! आज मोबाइल हमारे जी का जंजाल हो गया है और इसकी वजह से न दिन में चैन, न रात में राहत पर आश्चर्य हुआ कि इस कहानी के नायक को मोबाइल माँ जैसी लगती है ! मोबाइल की वजह से जितनी सुविधाएँ हैं उस से कम असुविधाएँ भी नहीं हैं ! खैर, मुझे मोबाइल पर सोचने के बजाए कहानी पर सोचना ज़्यादा तर्कसंगत लगा और मैंने अपना सारा ध्यान कहानी पर ही केन्द्रित कर दिया जो कि शहर में उल्टे - सुल्टे जॉब में जूझते युवाओं के संघर्ष को तथा देश में बढ़ती बेरोज़गारी को उजागर करने लगी थी ! प्राइवेट जॉब का कुछ भी ठिकाना नहीं कि कब तक है और कब नहीं है, उस पर जब आप अपने प्रोडक्ट को बेचने के लिए किसी को कॉल करते हैं तो कोई-कोई ही सीधे मुँह बात करता है, ज़्यादातर तो झिड़की ही मिलती है! मार्केटिंग का काम कितना मुश्किल होता है यह इस कहानी को पढ़कर सहज ही पता चल जाता है ! कहानी में माँ नहीं है बस उसकी स्मृतियाँ हैं पर पिता हैं जो अपने बेटे के लिए शहर जाते हैं और कम्पनियों के बोर्ड देख -दाख कर भटक कर लौट आते हैं! कहानी हमारे गड्डमड्ड हो रहे अतीत और वर्तमान की सच्ची तस्वीर पेश करती है !!

-नवनीत कुमार झा
हरिहरपुर, दरभंगा - 847306
wrambharos@gmail.com

***

चिरकी लागन लाग तो....

पंकज सुबीर क्या सही पकड़े हैं आप, लेखक बनाम साहित्यकारों की तीखी प्रतिक्रिया ! कटनी से हूँ। सीहोर जाना हुआ बचपन में कभी-कभार। आपने सीहोर को साहित्य में पहचान दिला दी है। आप पर गर्व तो कर ही सकती हूँ न !

सभी कविताएँ सामयिक व हृदय-पटल पर आसीन हो पाने की क्षमता रखती हैं। 'अनछुई', नई नकोरी यादें...में सुधा के जीवन के कई पहलू खुले हैं। प्रवासी साहित्यकार है कौन ? विक्रम बाली ने यथोचित प्रश्नों के घेरे में 'प्रवासी ' नाम को लाकर खड़ा कर दिया है। यदि कोई पच्चीस वर्षों से प्रति वर्ष अपने जीवन का कुछ काल खंड विदेश में बिताता है, तो वह भी प्रवासी साहित्य पर खरे सोने सी चमक ला सकता है। डॉ.मधु संधु के आलेख के अनुरूप भी है। समलैंगिकता पर रोचक लेख है। ऐसे विषय हमारे भारतीय समाज में आज भी अश्लील, असंगत व अस्पृश्य माने जाते हैं। 'एक कायर दास्ताँ.....' संवेदनाओं को छूकर गुज़रती है। अंशु जौहरी का बेबाक साक्षात्कार यथार्थ के करीब लगा। शिवानी कोहली द्वारा सत्य पर अटल विश्वास की कहानी मनोबल बढ़ाती है। सुधा ओम ढींगरा का संपादकीय सोशल मीडिया को लताड़ता लगा क्योंकि ठीक कहा...झूठ का पुन:पुन:सुना जाना ही सच लगने लगता है।

विभोम स्वर और शिवना साहित्यिकी दोनों के द्वय संपादक को बधाई एवं शुभकामनाएँ....

- वीणा विज 'उदित'
469- आर, मॉडल टाउन, जलन्धर, 144003

***

संपादकीय पत्रिका का सिंह द्वार

'शिवना साहित्यिकी' और 'विभोम-स्वर' दोनों पत्रिकाएँ आपकी संपादकीय प्रतिभा और साहित्यिक दृष्टि को रेखांकित करती हुईं एक साथ प्राप्त हुईं। 'आख़िरी पन्ना' के बहाने काफ़ी-कुछ ऐसा जो आम तौर पर संपादकों के यहाँ उपलब्ध नहीं होता है। अपनी ग़लती को मान लेना वाक़ई बहुत बड़ी बात है।

सुधा जी का संपादकीय तो पत्रिका का सिंह द्वार है ही। इस बार उन्होंने आतंकवाद और नस्ली हिंसा के लिए चिन्ता व्यक्त की है और सबको आगाह भी किया है।

'शिवना साहित्यिकी' में वंदना मिश्र की कविता झकझोरती है। सुशील सिद्धार्थ का तो मैं मुरीद हूँ। अमिय बिन्दु की कहानी अच्छी लगी। तरही ग़ज़लों के बहाने शायरों की कोशिशें लाजवाब हैं ! शिवानी कोहली, पवन चौहान और कादम्बरी मेहरा को मैंने पहली बार पढ़ा और अच्छा लगा ! संदीप तोमर की 'सिस्टम' कचोटती है। शिव कुमार अर्चन की ग़ज़लों के कुछ अश्आर लाजवाब हैं ! डॉ. नीलाक्षी फुकन का आलेख काफ़ी कुछ informative है। इस प्रकार के आलेख अलग-अलग देशों के प्रवासियों के प्रकाशित हों तो कैसा रहे? 'विभोम स्वर' में मेरे sketches को भी स्थान मिला तो मुझे तो अच्छा लगना ही था ना ! !

-विज्ञान व्रत, नई दिल्ली

***

साक्षात्कार काफी सुलझा हुआ

विभोम -स्वर का अप्रैल-जून अंक मिला। साथ ही शिवना साहित्यिकी का भी। बहुत-बहुत साधुवाद। एक कायर दास्ताँ.... हर्ष की कहानी पढ़ी। एक प्रेम कहानी के भीतर टेरेसा और गाँधी के विचारों को सर्जनात्मक कशिश दी है। प्रेम और बीभत्स जैसे दो विरोधी भावों के बीच कहानी आगे बढ़ती है। बेहतरीन कहानी है। हर्ष को बधाई। हर्ष में रचनात्मक ऊर्जा भरी है। पढ़कर अच्छा लगा। अंशु जौहरी का साक्षात्कार काफी सुलझा हुआ है। रचनात्मक प्रक्रिया के संदर्भ में की गई बातचीत उल्लेखनीय है। सुधा ओर ढींगरा ने तो मालती सत्संगी की श्रद्धांजलि को शोकगीत में बदल दिया है। उन्हें भी बधाई और मालती जी के प्रति संवेदना।

-राज कुमार, सहायक प्राध्यापक, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

***

मन को मोह गया

विभोम-स्वर इस बार भी मन को मोह गया। पहले पन्ने से लेकर आख़िरी पन्ने तक सब पढ़कर लगा अब जल्दी से अगला अंक हाथों में आ जाए। झूठ घूम-घूम कर सच बन जाते हैं। पढ़कर लगा यह समस्या हम सबकी है। पता नहीं इतने सारे कैसे-कैसे मैसेज़ बार-बार घूम-घूम कर आते रहते हैं। लगता है जैसे लोग इन्हीं में फंस के रह गए हैं।

एक कायर दास्ताँ....., माँ और मोबाईल, ब्रांड, थी हूँ और रहूँगी, क्यू गार्डन व अन्य सभी कहानियाँ पढ़ने के बाद भी काफी दिनों तक दिमाग पे छाई रहीं। कविताएँ और शिव कुमार जी की ग़ज़लें वाह! कैलिफोर्निया की गलियाँ पढ़कर उन गलियों में सैर कर आई। आलेख व व्यंग्य विभोम-स्वर में और सितारे जड़ गए। आख़िरी पन्ने पर पंकज सुबीर जी ने जो मुद्दा उठाया इसके लिए उनको नमन ! हर व्यक्ति को चाहे किसी भी उम्र का हो मिर्ची लगने लगी है वो भी सिर्फ मिडिया के कारण।

-अनीता शर्मा, शंघाई (चीन)

***

Linguistic variety

Have gone through Vibhom-Swar and must compliment you for this wonderful attempt. It has high state of linguistic variety and the content is very interesting.

Once again Shubhkamnayein.

- Dr Neerja A Gupta

H/P: +91 9825012984, Principal Bhavans Arts and Commerce College, Khanpur,Ahmedabad

***

दोहे बहुत सुन्दर

जनवरी-मार्च अंक में रघुवीर यादव और के. पी. सक्सेना दूसरे के दोहे बहुत सुन्दर लगे। अपने पैनेपन में वह किसी भी दोहाकार, मध्यकालीन या आधुनिक, से कम नहीं थे। लेखकों को मेरा नमन। नया अंक भी बहुत शानदार आया है। इसमें मेरी कहानी को स्थान देने के लिए धन्यवाद!

-कादम्बरी मेहरा, यूके

***

सारी सामग्री उच्चकोटि की

जनवरी-मार्च अंक का सम्पादकीय, साक्षात्कार, कहानी 'वसन्त लौट रहा है' मन पर छा गए। सुधा अरोड़ा जी के उपन्यास की समीक्षा के माध्यम से कहानी मनोवैज्ञानिक और प्रभावी लगी, जो मन को छू गई। कुछ अन्य आलेख, लघुकथाएँ और कविताएँ तथा ग़ज़लें ही पढ़ सकी। साहित्यिक समाचार भी मन को लुभा गए। सारी सामग्री उच्चकोटि की और स्तरीय लगी। हिन्दी की ऐसी अनूठी पत्रिकाओं के सम्पादनार्थ आपको एवं श्री पंकज सुबीर जी को हार्दिक-बधाई !! वर्तमान में हिन्दी की इतनी अधिक स्तरीय साहित्यिक रचनाओं का सृजन और प्रकाशन देखकर मन प्रफुल्लित हो गया। मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें!

-शकुन्तला बहादुर, कैलिफोर्निया, अमेरिका।

***

मेरी दृष्टि में यह अंक -

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका विभोम-स्वर अप्रैल-जून के सुरुचिमय-सुशीतल कलेवर के साथ मिला। सब से पहले संपादकीय ने आम आदमी की नियति बनती दुर्निवार विभीषिका से जोड़ा। सतत विकसित टेक्नालॉजी ने हमें उपहार दिया - देशों के बीच की दूरियाँ घटाने का, जिसके साथ जुड़ा गया स्वजन समाज और परिवेश से कटते चले जाना, दुनिया भर से जुड़ाव होता है आत्मीय संबंधों की कीमत पर। एक और पहलू है सोशल मीडिया के दुरुपयोग का - ब्रेनवाश के प्रयत्न, मनुष्य की सामर्थ्य का मनमाना दुरुपयोग, जो दुनिया को विरूपित कर रहा है। परिणाम स्पष्ट है मानवीय संवेदनाओं का ह्रास, जीवन में समाता एकाकीपन और अवसाद। इस दुष्चक्र से छूटना मानवता के हित के लिए ज़रूरी है।

प्रखर और बहुआयामी व्यक्तित्व की लेखिका अंशु जौहरी का साक्षात्कार एक सकारात्मक व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को हमारे सामने प्रस्तुत करता है, जिसने भारत से लेकर यू एस ए तक के क्रम में अपनी संतुलित दृष्टि और उद्यमशील नारी होने के साथ, अंतर्निहित संवेदनशील कलाकार को निरंतर सचेत रखते हुए,अपनी सतत सक्रियता से कुछ नए प्रतिमान स्थापित

किए। नए प्रतिमान इसलिए कि अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करते हुए, बिना शिकायत, विषम स्थितियों पर बिना रोए-झींके, अपने प्रयोगों में सफल हुईं। यही बात मैं साक्षात्कार लेनेवाली के संबंध में भी कहना चाहती हूँ। दोनों ही अपने जीवन में अधिकाँशत: अपने ही दम पर बहुत कुछ सकारात्मक कर सकीं। इस साक्षात्कार के लेने और देने वाले दोनो पक्षों से थोड़ा पूर्व परिचित रही हूँ, सो यह धारणा और मज़बूत हुई कि अगर व्यक्ति तुल जाए तो परिस्थितियों को अनुकूल बनना पड़ता है। यह बात उन कामकाजी महिलाओं के लिए जो अपनी रुचि के अनुरूप कुछ विशेष या उपयोगी काम कर अधिक मानसिक तोष पा सकती हैं।

कहानियों में एक कायर दास्ताँ..... यहाँ नायक इतना आत्म-केन्दित कि उसके सामने और सब गौण हो जाता है, थी हूँ और रहूँगी की दामिनी का स्पष्ट संदेश है कि घर से बाहर निकल कर न्याय के लिए संघर्ष बिना नारी का निस्तार नहीं, कादम्बरी मेहरा की टीना आंटी एक पूरे सच की कहानी है, अगली पीढ़ी के आशापूर्ण भविष्य के लिए स्त्री को गलत परम्पराएँ तोड़ कर नए मान-मूल्य अपनाना ज़रूरी है।

अनूदित कहानी दे कर उन भाषाओं से हमें जोड़ दिया है। अनेक सामयिक विषयों पर सार्थक विचार, कविताएँ और लघुकथाएँ सब मिला कर साहित्य की अनेक विधाओं के जगत् में रमने का सुख मिलता है।

-प्रतिभा सक्सेना, कैलिफोर्निया, अमेरिका

***

मेरे विचारों में विभोम-स्वर

सुधा जी सम्बोधित कर रही हूँ,आज मैं सुधा दीदी को कुछ देर के लिए भूलकर यह पत्र विभोम-स्वर की प्रधान संपादक को लिख रही हूँ। दोस्ती, पहचान, हमारी समान रुचि जैसे दोनों को ही हिन्दी लेखन में आनंद आता है हमें एक डोर में बाँधती हैं, कुछ असमानताएँ जैसे संपादक के रूप में आप कठोर नारियल की तरह हैं। मैं आपको व्यक्तिगत तौर पर करीब से जानती हूँ इसीलिए स्वयं को लिखने से रोक नहीं पा रही हूँ आपका व्यक्तित्व बहुत प्रेरणादायक है। किसी नए लेखक को प्रोत्साहित करने में, सहयोग करने में, मार्गदर्शन देने में आप श्रीफल की तरह मीठी, शुभ, सुगन्धित और फलदाई हैं परन्तु जब रचनाओं के चयन की बारी आती है तो संपादक के रूप में आपके चयन का मापदंड बहुत उच्च है,रचनाकार को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। संपादक के रूप में आपका रवैया बहुत व्यावसायिक है।

हिन्दी चेतना के बाद पिछले दो वर्षों से विभोम-स्वर पत्रिका की प्रतियाँ मुझे नियमित रूप से प्राप्त हो रही हैं। इस बार अप्रैल -जून अंक हाथ में आया मुख्य पृष्ट देखकर पत्रिका से खासा लगाव हो गया। पल्लवी त्रिवेदी का आवरण चित्र के बारे में लिखा विवरण मन को छू गया।

सम्पादकीय में आपके विचार वर्तमान काल के दुर्भाग्यपूर्ण काले सच को उजागर करते हैं, उससे समाज में आई चुनौतियों और आने वाले खतरे के प्रति सचेत करते हैं। सोशल मीडिया और इंटरनेट ने जीवन को बहुत आसान बनाया है, हर जानकारी तुरंत मिल जाती है, परन्तु रोज़मर्रा के जीवन में कितने झूठ का सामना हम करते हैं और वह झूठ किस तरह बार-बार सामने आकर सच का रूप मान लिया जाता है, आपने बहुत ही सटीक तरीके से इस सच्चाई का आईना समाज के सामने रखा है।

प्रवासवास के कारण मेरी सोच का दायरा विस्तृत हुआ है, अंशु जौहरी का आपके द्वारा लिए गए साक्षात्कार मन को गद् गद् कर गया। प्रतिभाशाली लेखिका ने खुले ह्रदय और ईमानदारी के साथ अपने अनुभव, अपनी सोच, अपना दृष्टिकोण और अपनी ज़िम्मेदारी को बखूबी साक्षात्कार में बयान किया है, आपके सटीक अर्थपूर्ण प्रश्नों के उत्तर में धीरे-धीरे परत दर परत खोलकर अंशु जी ने ह्रदय की किताब खोलकर रख दी है। अंशु जी का साक्षात्कार उनकी ऊँची सोच का दायरा, दृष्टिकोण और एक लेखिका के रूप में समाज के प्रति उनकी ज़िम्मेदारी और जागरूकता का भाव दर्शाता है और उन्हें कई लेखकों से अगल अग्रिम श्रेणी में बैठाता है। आप दोनों ने ही पूरे साक्षात्कार में सुर-ताल की तरह एक-दूसरे को थामा है।

एक कायर दास्ताँ.....कहानी के लिए डॉ. हर्षबाला बधाई की पात्र हैं। कहानी पर और उर्दू भाषा पर उनकी पकड़ कमाल की है। शुरूआत से लेकर अंत तक कहानी पढ़ते हुए कहानी से पाठक ऐसे बँध जाता है जैसे कहानी नहीं पढ़ रहा हो कोई फिल्म देख रहा हो। मुख्य पात्र का अँधा प्रेम, आत्मग्लानि और मानसिकता को हर्षबाला ने अपनी लेखनी और संवेदनशीलता से पाठकों को अभिभूत किया है।

माँ और मोबाइल जैसी कहानी वही लिख सकता है जो भौतिक और भौगोलिक रूप से भारत में रहता हो और भारत के शहरों और गाँवों को करीब से जानता हो। थी, हूँ, रहूँगी कहानी औरत के संघर्ष, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान की कहानी है। कहानी में माँ का स्वाभाविक डर, आर्थिक संघर्ष, बेटी का पिता से लगाव और रिश्तों में प्रेम से बढ़कर विश्वास होता है, लेखिका का अंत में सन्देश प्रभावित करता है। पवन चौहान की कहानी इंतज़ार एक ऐसी प्रेम कहानी है जिसका अंत दुखद है। प्रेम में डूब चुके प्रेमी युगल प्रेम भावनाओं में बहकर प्रेम की डोर से बँध जाते हैं और अपनी स्वप्निल दुनिया में रहते हैं, परन्तु कई बार जीवन की वास्तविकता बहुत भयानक होती है। कहानी में साथ ही कई बार अस्पतालों में डॉक्टरों की या कर्मचारियों की लापरवाही कैसे किसी मरीज़ की ज़िन्दगी को खतरे में डाल देती है, का बखूबी चित्रण है। टीना आंटी का सपना कहानी ने दिल जीत लिया। इस कहानी ने मुझे 2009 में धर्म परिवर्तन और विडम्बनाओं पर मेरी 'हॉउस मेड' पर लिखी मेरी कहानी 'यह कैसी अनुकम्पा' की याद दिला दी। यह सच है कि हिन्दू धर्म किसी को लालच से या ज़बरदस्ती धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य नहीं करता परन्तु आज भी धर्म की आड़ में, रीति -रिवाज़ों, ढकोसलों, अन्धविश्वास की आड़ लेकर किस तरह भारत के कई कस्बों में आम लोगों खासकर औरतों का जीवन नर्क बना दिया जाता है,कहानी में सुन्दर तरीके से पिरोया गया है। 'किऊ

गार्डन के पेड़' अनुवादित कहानी होते हुए भी भाषा पर पकड़ बहुत मजबूत और प्रभावशाली, शशि सहगल का अनुवाद बहुत अच्छा था, जैसे यह उनकी मौलिक रचना हो। लघुकथा 'सिस्टम' देश में लड़कियों के यौन उत्पीड़न को संकोच से उजागर करती सार्थक कथा। सभी लघुकथाएँ एक से बढ़ कर एक सुन्दर। कहानियों का चयन बहुत ही उत्तम और विविधता लिए हुए है। सुधा जी आप और पंकज जी बधाई के पात्र हैं।

'फादर की तलाश' बहुत ही सटीक व्यंग्य है,लेखक ने लगता है एक ही साँस में अपनी बात कह दी हो। भारत में वर्तमान सन्दर्भ में और पुरानी परम्परा में भी यही धारणा रही है 'फादरवाद' और साधारण जनता पर इसका किस तरह असर होता है, लेखक अपनी बात असरदार व्यंग्यात्मक तरीके से कहने में सक्षम रहे। पढ़ते समय ज़ोर -ज़ोर से हँसने पर हम मजबूर हो गए।

शिवकुमार अर्चन की खूबसूरत ग़ज़लों का भण्डार से भरी विभोम-स्वर यहीं समाप्त नहीं होती है आगे कविताओं के कई-कई खज़ाने भरे हैं। सुदर्शन प्रियदर्शिनी जी को मैंने अधिक नहीं पढ़ा है, पर जितना अधिक पढ़ती जाती हूँ, मैं पहले से ज़्यादा उनकी प्रशंसिका बन जाती हूँ। सभी कविताएँ अद्भुत, कुछ जीवन से भरी, कुछ भावनाओं से, कुछ ख़ुशी से, कुछ दर्द से, कुछ सामाजिक विषयों पर, कुछ सामाजिक विडम्बनाओं पर पढ़कर आनंद आया।

दृष्टिकोण में विक्रम बाली के विचार पढ़े। मैं उनसे सौ टका सहमत हूँ। जब जीवन का एक बड़ा भाग विदेशों में गुज़ार देते हैं,सालों बाद भारत लौटते हैं अपने परिजनों से मिलने हर बार भारत का बदला रूप चौंकाता है। दृष्टिकोण में सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है।

मनोरंजक और ज्ञानवर्धन सामग्री से भरपूर विभोम-स्वर के इस अंक में साहित्यिक ख़बरें , पुस्तकवार्ता के साथ पढ़ी सुधा जी की लिखी हुई मालती सत्संगी जी के लिए भावभीनी श्रद्धांजलि। आपने अपना हृदय निचोड़कर रख दिया है। इससे साबित होता है सच्चे भक्त का स्थान भगवान् के समान ही पूज्यनीय है। स्वयं भगवान् भी सच्चे भक्त के आगे नतमस्तक हो जाते हैं।

साहित्य की विविधिता और भरपूर स्तरीय सामग्री समेटे पत्रिका विभोम-स्वर को जन्म देने के लिए आपको और पंकज सुबीर का आपके साथ उसका पालन-पोषण करने के लिए बधाई!!! कुल मिलाकर सुखद अनुभव रहा।

-रेखा भाटिया, शार्लट, नॉर्थ कैरोलाइना, अमेरिका

***

परदेश में अपनों की महफ़िल

आपकी दोनों पत्रिकाओं के दोनों अंक प्रभावित कर गए। सोचा था कि ''हिन्दी चेतना'' के उपरान्त इनके स्तर में वृद्धि होने की भला कितनी संभावना होगी? आश्चर्य कि ये पत्रिकाएँ श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर की ओर ही विकसित हुई हैं। कलात्मक आवरण- चित्रों के लिए पल्लवी त्रिवेदी को बधाई देती हुई मैं पत्रिकाओं को एक ही बैठक में पढ़ती गई। ऊषा प्रियंवदा जी का आपके द्वारा लिया गया साक्षात्कार अपने आप में ही एक उपहार है और उनके रचना संसार से परिचित होना एक सुखद अनुभव।

कहानियों में मेरी विशेष रुचि होने के कारण लगभग सभी कहानियाँ एक साथ पढ़ गई। पुनर्जन्म की भाषा- शैली अभिभूत करती है तो अरुणा सब्बरवाल की कहानी का विषय। कविता विकास की कहानी नारी विमर्श को एक नई सोच देती है। ''एक कायर दास्ताँ'' हर्ष बाला शर्मा की अपनी विशिष्ट शैली में लिखी गई कहानी है। अंशु जौहरी अच्छी लेखिका हैं पर उनका साक्षात्कार भी उतना ही प्रभावशाली बन पड़ा है। पत्रिकाओं की लघुकथाएँ विशेष ध्यान आकर्षित कर गईं।

संपादकीय जहाँ कुछ सोचने को विवश करते हैं वहीं पंकज सुबीर का आख़िरी पन्ना सहमत होने को। अच्छा है आप प्रवासी साहित्य से सम्बन्धित लेखों को भी अपनी पत्रिका में महत्त्वपूर्ण स्थान दे रही हैं। मुझे डॉ. मधु संधु का लेख ''प्रवासी हिन्दी कहानी और समलैंगिकता (महिला कहानीकारों के विशेष संदर्भ में) विशेष पसन्द आया।

आपकी इन पत्रिकाओं से साहित्य जगत् में हो रही सभी गतिविधियों की बानगी मिल जाती है। लगता है परदेश में अपनों की महफ़िल लग गई। संयोजन के लिए बधाई और भविष्य के लिए शुभकामनाएँ।

-अनिलप्रभा कुमार

119 ओसेज रोड, वेन, न्यू जर्सी 07407

***

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की त्रैमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' का जनवरी- मार्च 2018 अंक ''विदेश में हिंदी ''

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की त्रैमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' का जनवरी-मार्च 2018 अंक ''विदेश में हिंदी '' विषय पर होगा। इसके तहत अन्य देशों में हिंदी कि स्थिति, वहाँ के लेखक, उनकी पुस्तकों पर विमर्श, साक्षात्कार, विदेश में बसे हिंदी लेखकों की रचनाएँ शामिल की जाएँगी, यह सामग्री हमें 15 अगस्त 2017 तक पहुँच जाए। सामग्री वर्ड या पेज मेकर में यूनिकोड, कृति या शिवा मीडियम फॉण्ट में ही हो। साथ में लेखक का पाँच पंक्ति में परिचय व एक फोटो भी अपेक्षित है। परिचय के साथ अपना वही संपर्क का उल्लेख करें जिसे सार्वजनिक करना चाहे यानी फोन, ईमेल, डाक पता।

जानकारी या सदस्यता के लिए मेल करें-

editorpustaksanskriti@gmail.com

फ़ोन- 011 26707760

पंकज चतुर्वेदी

संपादक, पुस्तक संस्कृति, त्रैमासिक,

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

5 नेहरु भवन, वसंत कुञ्ज

सान्स्थानिक क्षेत्र फेस-2,

नई दिल्ली, 110070

लेखक की निष्पक्ष विचारधारा और ईमानदारी उसके लेखन में दिखाई देना आवश्यक है

(शैलजा सक्सेना के साथ सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

कई सम्मानों से सम्मानित, कैनेडा निवासी डॉ. शैलजा सक्सेना, मानव संसाधन(ह्यूमन रिसोर्सस) में स्वतंत्र रूप से कार्यरत हैं। क्या तुम को भी ऐसा लगा? काव्य संग्रह, 'अष्टाक्षर' नाम के संग्रह में अन्य सात कवियों के साथ आठ कविताओं का संकलन, इतर-प्रवासी महिला कथाकारों की कहानियाँ, प्रवासी साहित्य: जोहन्सबर्ग से आगे, हाशिए उलाँघती औरत में साहित्यिक सहयोग, अनभै साँचा, सारिका, पाँचजन्य, क्षितिज, समाज कल्याण, तुलसी, वामा, हरिगंधा, आधुनिक साहित्य, लोकमत, अनुभूति और अभिव्यक्ति (वेब पत्रिका), साहित्य कुंज.नेट (वेबपत्रिका),गर्भनाल (वेब पत्रिका), लघुकथा.कॉम, हाइकु आदि अनेक पत्रिकाओं में कहानी, कविताएँ तथा लेखों का प्रकाशन। टोरांटो के कवियों की कविताओं के संकलन 'काव्योत्पल' का सह-संपादन, 'साहित्य कुंज.नेट' वेब पत्रिका की साहित्यिक परामर्शदाता हैं।

संपर्क:
ईमेल: shailjasaksena@gmail.com
www.sanjhepal.blogspot.com
www.hindiwritersguild.com

प्रवासी साहित्य के भविष्य की ढेरों संभावनाएँ समेटे, रंगमंच और शिक्षा के माध्यम से हिन्दी और भारतीय संस्कृति के प्रचार -प्रसार के कार्यों में सक्रिय, कैनेडा की कवयित्री, कहानीकार शैलजा सक्सेना विश्व पटल पर एक चर्चित नाम है। प्रस्तुत है शैलजा जी से हुई सुधा ओम ढींगरा की बातचीत-

प्रश्न : *आप कवयित्री और कहानीकार दोनों हैं, क्या आपने भी हर रचनाकार की तरह अपने लेखन की शुरूआत कविता से की और फिर कहानी की ओर मुड़ीं।*

उत्तर : आपने सही कहा, भावनाएँ पहले-पहल कविता के छोटे कलेवर में ही प्राय: उतरती है। मैंने भी सातवीं कक्षा में पहली बार अपनी लिखी कविता स्कूल की प्रार्थना-सभा में सुनाई थी। नवीं कक्षा में एक कहानी लिखी थी, कहानी अभी कच्ची थी, उस को मैंने किसी को दिखाया भी नहीं था और उसके बारे में लगभग भूल ही गई थी। दो वर्ष छोटी बहन को जाने कैसे पता लग गया और चुपचाप उसने वह कहानी अपने स्कूल के कहानी लेखन प्रतियोगिता में अपने नाम से भेज दी। कहानी को तीसरा पुरस्कार मिला तब उसने दुखी हो कर मुझ से कहा कि मैंने सोचा था तुम्हारी कहानी पहला नंबर तो लाएगी, पर तुम शायद इतना अच्छा नहीं लिखती। यह घटना मेरे कहानी लेखन के प्रारंभ को हमेशा याद दिलाती रहती है। इसके बाद लेख और नाटक लिखे तो इस तरह सबसे पहले कविता ही आई परन्तु कविता से पहले कहानी प्रकाशित हुई। सारिका के ''आते हुए लोग'' स्तंभ में 1982 में कहानी 'अधूरी कहानी' प्रकाशित हुई थी। कविताएँ इस संदर्भ में पीछे रह गईं।

प्रश्न : *साहित्य की किस विधा में लिखना आपको सहज लगता है और किस विधा में आपको परिश्रम करना पड़ता है।*

उत्तर : हर विधा में लिखने और सुधारने की प्रक्रिया रहती है। कविता हो या कहानी या लेख, सभी को कई बार पढ़ने की आवश्यकता रहती है। यह परिश्रम आवश्यक है। मैं यह सोच कर लिखने नहीं बैठ पाती कि मुझे आज इस विधा में लिखना है। भाव और विचार सहज ही आते हैं और अपनी विधा स्वयं तय कर लेते हैं अत: लिखने में परिश्रम का विचार मन में नहीं आता, हाँ कहानी और लेख अपने लम्बे कलेवर के कारण समय अधिक माँगते हैं।

प्रश्न : *आप कैनेडा कब आईं और आपकी सृजनात्मकता को कैनेडा ने कितना प्रभावित किया?*

उत्तर : मैं कैनेडा 2001 में आई। इस से पहले 1993 से भारत से बाहर मुझे अमरीका के कई शहरों और इंग्लैंड में रहने का अवसर मिला अत: हर देश के सामाजिक ताने-बाने से परिचित होने का अवसर मिला। भारत से बाहर रहने वाले अनेक लेखकों से मिलने का अवसर मिला और उनके साहित्य प्रेम और समर्पण से प्रभावित हुई। कैनेडा में सबसे लम्बा

निवास रहा है अत: स्वभाविकत: यहाँ से जुड़ाव भी अधिक हुआ है।

कैनेडा के सामाजिक ताने-बाने में अनेक देशों की संस्कृतियों के रंग घुले हुए हैं और हर रंग को अपनी पहचान बनाए रखने की स्वतंत्रता है। सरकार द्वारा भी सहायता मिलती है। ऐसे में हिन्दी भाषा के साहित्य को पनपने का भी स्थान और अवसर मिला है। मेरे यहाँ आने से पूर्व यहाँ के वरिष्ठ साहित्यकारों जैसे प्रो. हरिशंकर आदेश, प्रो. ओंकारनाथ द्विवेदी, डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव, डॉ. शिवनंदन सिंह यादव, अचला दीप्ति कुमार, सुमन कुमार घई, आशा बर्मन, श्याम त्रिपाठी, शैल शर्मा जी आदि ने 'हिन्दी साहित्य सभा' और 'हिन्दी परिषद' के माध्यम से साहित्यिक वातावरण बना रखा था, इन साहित्यिक मंचों से जुड़ने का मुझे भी अवसर मिला; जिसने लेखन को आगे बढ़ने में मदद दी। मेरी कई कविताओं और कहानियों में भारत से बाहर का समाज उपस्थित है।

प्रश्न : *शैलजा जी, क्या आपने कभी महसूस किया है कि वैश्विक रचनाकारों की रचनाओं की ओर आलोचक ध्यान नहीं देते।*

उत्तर : आलोचना का काम बहुत कठिन काम है। सही आलोचकों की कमी हर जगह महसूस की जाती रही है अत: आप के इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दिया जा सकता है पर यह सोचना भी ज़रूरी है कि हम किन आलोचक की बात कर रहे हैं। अंतर्जाल के पिछले 15 -20 वर्षों के प्रयोग ने बहुत से वैश्विक रचनाकारों की क्षमताओं को उजागर किया है पर उनकी रचनाओं पर आलोचना का काम कम हुआ है। आलोचना में पूरी रचना को पढ़ना, समझना, गुनना और लिखना सम्मिलित है। इस काम के लिए जो समय और अन्य साहित्यकारों से तुलना करने की क्षमता, लेखन की पृष्ठभूमि को समझने के लिए ज्ञान और उदारता चाहिए, उसके लिए मेहनत की आश्यकता होती है। कई आलोचक आधी-अधूरी रचना पढ़ कर अपना मत बना लेते हैं; जिससे लेखक और लेखन दोनों को ही लाभ मिलने के स्थान पर हानि ही होती है। भारत के जो प्रतिष्ठित आलोचक हैं, वे किसी से व्यक्तिगत परिचय के आधार पर तो उसकी रचना पर अपना मंतव्य लिख देते हैं पर उन्होंने अभी भारतेतर हिन्दी साहित्य पर अधिक नहीं लिखा है। इस स्थिति के कई कारण हैं।

भारत से बाहर बैठे साहित्यकार भी रचनाएँ तो लिख रहे हैं पर अपने आस-पास के लेखकों की सही आलोचना बहुत कम ही लिखते हैं। जो आलोचना लिखी जाती है उस आलोचना में भी सराहना और प्रोत्साहन का भाव अधिक रहता है। इस आलोचना से जब तक 'बाहर रह कर भी कम से कम लिख तो रहे हैं' का सहानुभूतिपरक भाव नहीं जाएगा, उचित आलोचना नहीं हो पाएगी।

यह उत्साहजनक बात है कि बहुत से लेखक जैसे हरिशंकर आदेश, सुषम बेदी, तेजेन्द्र शर्मा, आप स्वयं (सुधा ओम ढींगरा) भारत में प्रसिद्ध हो रहे हैं और उनकी रचनाओं पर आलोचना लिखीं जा रही हैं। आशा है कि इस दिशा में और काम होगा।

प्रश्न : *शैलजा जी, साहित्य में गुटबंदी तो पहले से थी, अब बाज़ारवाद भी बहुत बढ़ गया है...आप की क्या राय है ?*

उत्तर : सुधा जी, आप की बात सही है, बाज़ार जीवन के हर पक्ष में घुसा हुआ है तो साहित्य क्षेत्र में भी घुसने से पीछे कैसे रह सकता था। गुटबंदी और बाज़ार ने मिल कर साहित्यकार को लेखन से अधिक ''मार्केटिंग'' से जोड़ दिया है। जो जितनी अच्छी ''मार्केटिंग'' कर सकता है, उतना ही दूर तक पहुँचता है। सोशल मीडिया की सशक्त भूमिका को जो पहचान ले, वह प्रसिद्ध हो जाता है। अब बाज़ारवाद को गलत कहें या सही, यह ऐसा भारी भरकम यथार्थ है जिसे हटाया नहीं जा सकता। इसके तरीकों को समझने की आवश्यकता है। ऐसे में उपाय वही है जैसा कि सुमन कुमार घई (संपादक: साहित्यकुंज नेट) ने अपने संपादकीय में लिखा था कि 'अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं के लेखकों की तरह ही हिन्दी भाषा के लेखकों को भी एजेंट चाहिए'। ऐसे प्रकाशन समूहों की आवश्यकता है, जहाँ लेखकों के लेखन का सही प्रसार और प्रचार हो सके। अंग्रेज़ी की पुस्तकें छपती हैं और लाखों की संख्या में इसी बाज़ारवाद के तरीके को समझने के कारण बिकती हैं। बसों पर, बड़े बिलबोर्ड्स पर भी आप पुस्तकों के नाम देख सकते हैं, लोग पुस्तकें खरीदते हैं और पढ़ते हैं। हम हिन्दी वाले भी ऐसा कर सकते हैं, इस से पाठक भी बढ़ेंगे और लेखक अपना ध्यान पूरी तरह से लिखने पर लगा सकेगा। पर समस्या तो यह भी है कि प्रकाशक नए रचनाकारों को पारिश्रमिक तो दूर, बिना उनसे पैसे लिए रचनाएँ छापना भी नहीं चाहते। ऐसे में लेखन और प्रकाशन दोनों के स्तर पर प्रश्नचिह्न लगता है पर कोई और निदान न होने पर यही उपाय रह जाता है। आशा है कि प्रकाशक इस बाज़ारवाद को समझते हुए इस के माध्यम से हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान देंगे।

प्रश्न : *गुटबंदी की एक देन विचारधारा भी है। क्या रचना का विचारधारा से संबंध होना चाहिए?*

उत्तर : बिना विचार के लेखन नहीं हो सकता। विचारधारा रचना के लिए आवश्यक है। लेखक की विचारधारा पात्रों की स्थिति और उनके समाज को पूरी निष्पक्षता से दिखाने की होनी चाहिए। इस विचारधारा के आधार पर लिखी रचनाएँ कालजई हो जाती हैं, विचारधाराओं की गुटबंदी की बात वहाँ हानि पहुँचाती है; जब किन्हीं नामचीन आलोचकों को प्रसन्न करने के लिए, उनकी विचारधारा को आधार बना कर रचनाएँ की जाती है फिर उन्हीं रचनाओं को प्रसिद्ध कराने के लिए सारे प्रयास किए जाते हैं। लेखक की निष्पक्ष विचारधारा और ईमानदारी उसके लेखन में दिखाई देना आवश्यक है।

प्रश्न : *मेरा समालापक और जिज्ञासु मन जानना चाहता है कि 'राइटर्स गिल्ड' क्या है ? जिसकी आपने स्थापना की है।*

उत्तर : सुधा जी, 'हिन्दी राइटर्स गिल्ड' हिन्दी लेखकों और हिन्दी साहित्य प्रेमियों की दानार्थ (नॉन फॉर प्रॉफिट) संस्था है जिसकी स्थापना 2008 में सुमन कुमार घई, विजय विक्रांत और मैंने मिल कर की थी। इसके कई उद्देश्यों में दो महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह हैं कि लेखकों को अपनी रचनाओं को

सुनाने और उन पर चर्चा करने के लिए मंच मिले और दूसरा यह कि उनकी रचनाओं का प्रकाशन और प्रचार यहीं किया जा सके। बहुत से लेखक भारत से एक लंबे समय पहले निकल आए थे अत: वे अपनी रचनाओं को प्रकाशित करने के लिए प्रकाशकों से संपर्क करने में झिझकते रहते थे, प्रकाशन होता था तो उसमें अनेक अशुद्धियाँ होती थीं, ऐसे में 'हिन्दी राइटर्स गिल्ड' ने यहीं पर संपादन और प्रकाशन की सुविधाएँ उपलब्ध करा के उनके लिए काम आसान कर दिया। मासिक गोष्ठियों के द्वारा लेखकों को अपनी और दूसरे लेखकों की रचनाओं पर बातचीत करने का और अपने लेखन को सुधारने का अवसर मिलता है।

'हिन्दी राइटर्स गिल्ड' की चेष्टा है कि हिन्दी का प्रतिष्ठित साहित्य स्थानीय जन समाज के सामने आए, और हिन्दी साहित्य से लोगों का जुड़ाव हो सके; इसके लिए अनेक नाटक जैसे: 'अंधा युग', 'रश्मिरथी', 'मित्रो मरजानी', 'सूरदास','जनाबाई' और 'आधे-अधूरे' प्रस्तुत किए गए हैं।

प्रश्न : *'हिन्दी राइटर्स गिल्ड' के द्वारा आप नए लेखकों को कहानी लिखना सिखाती हैं। क्या कहानी लिखना सिखाया जा सकता है। लेखन प्रतिभा तो ईश्वरीय देन होती है। इस तरह सिर्फ़ तकनीकी जानकारी दी जा सकती है। आपकी क्या राय है?*

उत्तर : सुधा जी, महीप सिंह जी के हाथों इस संस्था का उद्घाटन हुआ था और उस सभा में अनेक प्रस्तुतियों के साथ 'अच्छी कहानी और अच्छी कविता क्या है' पर विचार हुआ था। 'हिन्दी राइटर्स गिल्ड' कहानी ही नहीं, साहित्य की अन्य विधाओं जैसे 'समीक्षा', 'रिपोतार्ज', 'यात्रा-संस्मरण', 'आत्मकथा' आदि विधाओं पर भी बातचीत आयोजित करती रही है। जब तेजेन्द्र जी आए थे तो कहानी के रचनात्मक और तकनीकी पक्षों पर बात हुई थी। कविता में 'हाइकु', 'चौका, 'ताँका' और 'माहिया' आदि पर रामेश्वर कांबोज हिमांशु जी के आने पर विशेष सभा की गई थी।

आचार्य भामह ने लेखन के तीन आवश्यक तत्त्व बताए थे: प्रतिभा, व्युत्पत्ति (अन्य पुस्तकों के अनुशीलन से प्राप्त निपुणता) और अभ्यास। लेखन के लिए मूलभूत आवश्यक तत्त्व प्रतिभा ही है, इसमें कोई संदेह नहीं परन्तु ज्ञान और अभ्यास का महत्त्व भी कम नहीं है, इसमें साहित्यक सत्संग यानी चर्चा-परिचर्चा जोड़ दें तो एक पूरा वातावरण बनता है; जिससे साहित्यकार वो मानसिक खाद पाता है, जिसमें उसके लेखन के फूल उगते हैं। भाव और विचार लेखक के ही हैं पर तकनीकी ज्ञान से अनेक विधाओं में लेखन -प्रतिभा प्रस्तुति की क्षमता और अवसर बढ़ते हैं। इसके परिणाम हमारे सामने हैं, टोरोंटो के कई लेखक आज अच्छी लघुकथाएँ, कहानियाँ तथा अन्य विधाओं में साहित्य-लेखन कर रहे हैं। कृष्णा वर्मा जी का हाइकू संग्रह -'अम्बर बाँचे पाती' कनाडा का पहला हाइकु संग्रह है।

सीखना हरेक के अपने हाथ में है। हम किसी को कुछ सिखाने का दंभ नहीं भर रहे, हमारी संस्था का काम तो केवल वह वातावरण तैयार करने का है; जहाँ प्रतिभाएँ और क्षमताएँ बढ़ सकें और प्रकाशित हो सकें।

प्रश्न : *आपकी दृष्टि में विदेशों में कौन-कौन से रचनाकार अच्छा लिख रहे हैं ....?*

उत्तर : विदेश में अनेक साहित्यकार अच्छा लिख रहे हैं, सबके नाम ऐसे गिना नहीं पाऊँगी, किसी के नाम छूट जाने से मुझे ही अधिक दु:ख होगा। आप सब लोग इन लोगों को जानते ही हैं। भारत के बाहर अमरीका, इंग्लैंड, कैनेडा के अलावा मॉरिशस, नार्वे, फीजी आदि में भी लेखन हो रहा है। अनेक कहानीकार और कवि इन देशों में हैं, अब शायद हमें आलोचकों और समीक्षकों की अधिक आवश्यकता है; जो इन रचनाकारों को और अधिक पाठकों से जोड़ सके। मैं साहित्यकुंज.नेट पर 'इसी बहाने से' स्तंभ के अंतर्गत एक-एक देश के लेखकों को प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही हूँ, आशा है उससे लोगों को विदेशों में हिन्दी लेखकों के बारे में पता लगेगा।

प्रश्न : *शैलजा जी, यह प्रश्न मैंने तकरीबन सभी वैश्विक रचनाकारों से पूछा है। आपकी राय भी लेना चाहती हूँ। एक ही प्रश्न पर भिन्न-भिन्न उत्तर परिचर्चा सा आनंद दे जाते हैं। बहुत-सी पत्रिकाएँ प्रवासी विशेषांक निकालती दिखाई देती हैं। प्रवासी दिवस, प्रवासी साहित्य सम्मेलन, प्रवासी सम्मान....आप प्रवासी साहित्य को किस तरह देखती हैं ?*

उत्तर : सुधा जी, बहुत समय तक प्रवासी शब्द को लेकर बहस चलती रही कि इस साहित्य को क्या कहा जाए, प्रवासी या अप्रवासी या कुछ और। आज भारतेतर हिन्दी साहित्य के लिए यही नाम प्रचलित है। पत्रिकाओं के प्रवासी विशेषांकों से विदेश में रहने वाला लेखक पाठकों तक पहुँच पाता है, यह एक सकारात्मक बात है। ये पत्रिकाएँ बहुत अच्छा और महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। प्रवासी दिवस, प्रवासी सम्मेलन आदि भी इस बात का सूचक है कि अब प्रवासी साहित्य को गंभीरता से लिया जा रहा है। प्रवासी साहित्यकारों के लिए यह उत्साहजनक बात है और साथ ही यह उनके लिए एक चुनौती भी है कि अपने लेखन को वो गंभीरता से लें, अधिक पढ़ें, गुनें और अपनी ज़मीन से जुड़ कर लिखें।

दुनिया के 'ग्लोबल विलेज' बन जाने के बाद साहित्य में देश से दूर होने के नॉस्टेलिजिक स्वर कम हुए हैं और अपने स्थानीय परिवेश के सौन्दर्य, स्थितियों और जीवन के अनुभूत सत्य को प्रस्तुत करने का प्रयास अधिक दिखाई दे रहा है। प्रवासी साहित्य में पूरे विश्व का विस्तार है और अनेक संभावनाएँ हैं। मुझे विश्वास है कि प्रवासी साहित्य को पाठकों के सामने लाने के ये अनेक प्रयास सफल होंगे और विश्व के अनेक कोनों में बैठे हिन्दी के लेखक एक-दूसरे को पढ़ सकेंगे और आपस में जुड़ कर हिन्दी भाषा और साहित्य को नए आयाम देते हुए और अधिक सशक्त और सक्षम बनाएँगे।

शैलजा जी आपने बिलकुल सही कहा। वैसे अंतरजाल ने भी काफी हद तक विश्व के अनेक कोनों में बैठे हिन्दी लेखकों को एक-दूसरे जोड़ दिया है। आपके सभी प्रयासों के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ! आप इसी तरह आगे बढ़ती रहें।

***

मेरे बाद

पुष्पा सक्सेना

अमरीका के वाशिंगटन राज्य की सियाटेल नगरी में रहतीं, अनगिनत सम्मानों से सम्मानित, पुष्पा सक्सेना की प्रकाशित कृतियों में पाँच उपन्यास, नौ कहानी संग्रह, सात बाल कथा संग्रह तथा एक हास्य नाटक है। भारत तथा अमरीका की समस्त स्तरीय पत्रिकाओं में 150 से अधिक कहानियाँ प्रकाशित। कहानियों का मराठी, गुजराती, पंजाबी अंग्रेज़ी, बंगला और चीनी भाषाओं में अनुवाद।
'मेरे बाद' कहानी पेकिंग विश्वविद्यालय की छात्रा द्वारा चीनी भाषा में अनूदित की गई है तथा इस पर थीसिस लिख कर हिन्दी में डिप्लोमा प्राप्त किया है।
सम्पर्क:13819 NE 37TH PL, Bellevue, WA 98005
ईमेल- pushpasaxena@hotmail.com

सरस्वती का नश्वर शरीर नंगी ज़मीन पर रखा देख, उसकी मुँहबोली स्नेही बहिन, गंगा से नहीं रहा गया–

'एक चटाई या चादर तो बिछा देतीं। खाली ज़मीन पर सरस्वती को सुला दिया ?'

'अरे माटी का शरीर माटी में ही तो मिलता है, गंगा। अब सुरसती को क्या पलंग, क्या चटाई ? सरस्वती की सास शांता ने आवाज़ को भरसक दुखी बनाते हुए कहा।

'कल तक तो बातें कर रही थीं, बस खाँसी का ज़ोर था। ऐसे चली जाएगी, किसने सोचा था।' गंगा रो पड़ी।

'अरे, गंगा! जाने का बखत तो बस ऊपर वाला जाने है। जाने की उमर हमारी है, पर वह बुलाना ही भूल गया है। न जाने क्यों ज़िंदा हैं।' बूढ़ी काकी ने आँचल से आँसू पोंछे।

'उठावनी कब तक होगी ?' धीमे से एक स्त्री ने पूछा।

'सुरसती की एक ही तो बेटी है, उसके बिना आए, सुरसती कैसे विदा होगी ? गंगा ने उसाँस ली।

'बेटी के आने तक और तैयारी तो की जा सकती हैं। मेरा मतलब बहू को स्नान वग़ैरह भी तो कराना है।' एक बुज़ुर्ग स्त्री ने गंभीरता से कहा।

'अरे, हम कौन होते हैं, कोई फ़ैसला लेने वाले। देखती नहीं, वो सामने इंस्पेक्टर उसका फ़रमान लेकर आया है।' कड़वे स्वर में शांता ने कहा।

'किसका फ़रमान, शांता बहन ?'

'अरे इसी सुरसती की लाड़ली बिटिया आकांक्षा ने फ़रमान भेजा है, उसके आने तक उसकी माँ को कोई हाथ भी न लगाए। जैसे हमारा सुरसती से कोई नाता ही नहीं था।' शांता ने आँसू पोंछे।

'दिल्ली से आ रही है, आकांक्षा, शायद हवाई जहाज़ से आएगी ?'

'हाँ-हाँ, पुलिस-कप्तान क्या बन गई, पाँव ज़मीन पर नहीं पड़ते। देख लो ऐसे दु:ख में भी हम पर हुकुम चला रही है।' सरस्वती की विधवा जिठानी माया ने ज़हर उगला। औरतों

ने एक-दूसरे से संकेतों में बात कर डाली।

अचानक खुले दरवाज़े से हाथ में बैग़ थामे, दृढ़ता से ओंठ भींचे आकांक्षा कमरे में आ गई। चेहरे का विषाद और लाल आँखे साफ़ बता रही थीं, वह काफ़ी रो चुकी थी। साथ में एक सुदर्शन युवक और दो सादी धोती पहने स्त्रियाँ थीं। युवक को बाहर रुकने का संकेत कर, आकांक्षा स्त्रियों के साथ माँ के नश्वर शरीर के पास पहुँची थी।

माँ को एक क्षण निहार, आकांक्षा पास वाले कमरे में चली गई। कमरे से एक गद्दा-तकिया और नई चादर ले आई। संकेत समझते ही दोनों स्त्रियों ने गद्दे पर चादर बिछाकर, सिरहाने तकिया रख दिया। उनकी सहायता से माँ के शरीर को सम्मानपूर्वक गद्दे पर लिटाकर सिर के नीचे तकिया लगा दी।

'यह क्या कर रही है, आकांक्षा ? मरे हुए को क्या गद्दे-तकिए पर लिटाया जाता है ? तू नया ढंग चलाएगी ?' तीख़ी आवाज़ में शांता ने कहा।

अनुत्तरित आकांक्षा ने हाथ जोड़कर स्त्रियों से विनती की- 'आप लोग कृपया थोड़ी देर के लिए बाहर चली जाएँ। मैं माँ के साथ कुछ देर अकेली रहना चाहती हूँ।'

विस्मित स्त्रियों के पास बाहर जाने के अलावा कोई विकल्प शेष नहीं रह गया। आकांक्षा ने दरवाज़ा बंद कर, बाहर हो रही कानाफूसियों के लिए कोई जग़ह नहीं छोड़ी।

'मुक्त हो गई, सुरसती।' भरे गले से गंगा ने बहुत धीमें से कहा, पर पास बैठी शैली से उनके शब्द अनसुने नहीं रह सके।

'क्या कह रही हो, गंगा मौसी ?

'कुछ नहीं, जाने दे।' शैली विस्मिय देखती रह गई।

पंद्रह मिनट बाद आकांक्षा ने साथ आई दोनों स्त्रियों को अंदर बुलाया था। शांता ने आगे आकर कहा- 'बहू को स्नान कराकर नई साड़ी पहनानी है। सुहागिन गई है, सुरसती सो उसका शृंगार भी करना है, बड़ी भाग्यवान् थी हमारी बहू।'

'लगता है माँ की अंतिम विदाई की पूरी तैयारी पहले से कर रखी है, दादी ? चिंता मत करो मैं भी माँ को ठीक से विदा करूँगी।' आकांक्षा की आवाज़ में पता नहीं व्यंग्य था या आक्रोश, शांता समझ नहीं सकी।

आकांक्षा द्वारा कमरे का द्वार बंद करते ही शांता विफर पड़ीं- 'देख रही हो, यह बित्ते भर की छोकरी सारे नियम-विधान ताक पर रखकर, क्या कर रही है। अरे, बड़े-बुजुर्गों का सम्मान न करे, पर ऐसे वक्त में भी भला कोई अपनी चलाता है ?'

कई औरतों ने स्वीकृति में सिर हिलाए। शांता की बात में सचमुच दम था। मुहल्ले की कुछेक सुहागिनों की उठावनी में भाग लेने वाली कई औरतें, आज भी सरस्वती की अंतिम विदाई के लिए हाथ लगाने आई थीं। उनका विश्वास था सुहागिन के शव को सजाने-तैयार करने से खुद भी सुहागिन मरने का चाँस बन जाता है। वैसे भी एक जवान कुँवारी लड़की विधि-विधान क्या जानेगी ? मन में बुदबुदाती औरतें दरवाज़ा खुलने की प्रतीक्षा कर रही थीं। न जाने द्वार खुलने पर कौन-सा अचरज देखने को मिले। कहीं आकांक्षा कोई जादू-टोना तो नहीं जानती, जो माँ के मृत शरीर में प्राण डाल दे, वरना इतनी देर कमरा बंद करके, सबको बाहर करने की क्या ज़रूरत थी ?

दरवाज़ा खुलते ही औरतें धड़धड़ा कर कमरे में घुस गईं। आकांक्षा माँ के शरीर के सिरहाने बैठी थी। कमरा धूप और अगरबत्ती से सुवासित था। सरस्वती के निश्चेष्ट शरीर पर दृष्टि जाते ही स्त्रियाँ चौंक गई। यह क्या ज़री पाड़ की सफ़ेद सिल्क की साड़ी, माथे पर सिंदूर की बिंदिया की जगह शुभ्र चंदन का टीका, सूनी माँग, भला यह सुहागिन का रूप था ? सरस्वती क्या विधवा थी ? यह लड़की सचमुच कुछ नहीं जानती।

'अरी लड़की, यह कैसा अपशगुन कर रही है ? सामने रखी लाल साड़ी, सिंदूर, चूड़ियाँ नहीं दिखाई दीं ? इतना भी नहीं जानती, तेरी माँ सुहागिन मरी है। अपने बाप का भी ख़याल नहीं आया।'

'माँ जैसी सुहागिन थी, वैसा ही उसका शृंगार हुआ है, यह बात तुमसे ज़्यादा अच्छी तरह कौन जानेगा, दादी।' आक्रोश और व्यंग्य से मिलकर आकांक्षा की आवाज़ तीख़ी हो उठी।

'बकवास बंद कर। क्यों दुनिया के सामने तमाशा कर रही है। माँ के मरने से शायद तेरा दिमाग़ चल गया है। यह ले ऊपर से लाल साड़ी डाल दे, दुनिया वालों का तो ख़याल कर।' शांता ने लाल साड़ी उठाकर देनी चाही।

'मुझे दुनिया वालों से कुछ भी लेना-देना नहीं है। वैसे भी माँ ने कब बिंदी-चूड़ी या बिछिया पहना था, दादी ? परेशान मत हो, मैं माँ की वसीयत के अनुसार ही काम कर रही हूँ।' शांति से आकांक्षा ने कहा।

'वाह री, तू और तेरी माँ ! ज़रा हम भी तो सुने, क्या वसीयत की है, तेरी माँ ने ?'

'वही जो मैं कर रही हूँ।'

बाहर से कुछ लोग फूल लेकर सरस्वती के निकट श्रद्धा-सुमन चढ़ाने आने लगे। आकांक्षा ने हाथ जोड़कर कहा- 'कृपया माँ के शरीर पर फूल न चढ़ाएँ। माँ को कष्ट होगा।'

विस्मय और नाराज़गी के भाव लिए लोग पीछे हट गए।

थोड़ी ही देर में आकांक्षा के साथ आए युवक और दोनों स्त्रियों ने तत्परता से तैयारी कर डाली। आकांक्षा के साथ उन्हें, सरस्वती के शरीर को अरथी पर लिटाते देख, शांता चीख पड़ी- 'बस, बहुत मनमानी कर ली। घर की बहू पराए हाथों विदा नहीं होगी। यह हक सिर्फ मेरे बेटे विमल का है, वह सुरसती का पति है। विमल बेटा ज़रा आ कर देख, यहाँ अनर्थ हो रहा है।'

'आपके बेटे को माँ की अंतिम इच्छा बता दी गई है, वह माँ के अंतिम संस्कार में शामिल नहीं होंगे।' दृढ़ता से आकांक्षा ने कहा।

माँ के शरीर को अरथी पर रस्सी से बँधता देख, आकांक्षा सह न सकी। इतनी देर से रुके आँसू बह निकले।

'नहीं, आकांक्षा ! तुम्हारे आँसू माँ की आत्मा को दु:ख पहुँचाएँगे। तुमने न रोने का वादा किया था।' सदुर्शन युवक ने स्नेह से कहा।

'पंडित जी आप ऐसे मंत्र पढ़िए जिनसे मेरी माँ की आत्मा को शांति मिले। वह मेरे मोह से मुक्त होकर स्वर्ग जाएँ।' आँसू पोंछ, आकांक्षा ने कहा।

'ऐसा ही होगा, बेटी।' पंडित जी ने

मंत्रोच्चार प्रारंभ कर दिए।

बाहर शव-वाहक वाहन आ गया था। अरथी को कंधे पर उठाने के लिए आकांक्षा को आगे आते देख, औरतें चौंक गईं। गंगा मौसी ने प्यार से कहा- 'अब यह काम तू रहने दे, आकांक्षा बेटी ! यह काम आदमियों का है।'

'माँ ने मुझे हमेशा अपना बेटा माना है। उनका अंतिम संस्कार मैं ही करूँगी। माँ की अंतिम विदाई के समय एक-एक पल मैं उनके साथ रहूँगी। गौरव, हम माँ को ले चलते हैं।' आकांक्षा ने साथी युवक को संबोधित कर, कहा।

गौरव के साथ आगे से आकांक्षा ने माँ को कंधों पर उठा लिया। पीछे दोनों स्त्रियाँ थीं। सभी पुरुष और स्त्रियाँ इस दृश्य को अचरज़ से देखते रह गए। विमल का बाहर न आना एक प्रश्न चिह्न था! पर शांता ने बात बना दी-

'घरवाली की मौत की वज़ह से विमल को चक्कर आ रहे हैं। डॉक्टर ने घाट जाने को मना किया है।'

दाल में कुछ काला है, सोचकर भी वो समय पूछताछ का नहीं था।

माँ के शरीर को चिता पर लिटाती आकांक्षा की आँखें डबडबा आईं, पर अपने को सँभाल कर उसने पंडित के साथ स्वयं भी कुछ मंत्र पढ़ डाले।

'चिता को आग कौन देगा ?' पंडित जी ने पूछा....

'मैं दूँगी ! अपनी माँ की मैं ही वारिस हूँ। माँ का अंतिम संस्कार मैं ही करूँगी।'

'पर बेटी, तुम्हारे तो पिता जीवित हैं। उनके रहते तुम यह कठिन काम क्यों करोगी ? ऐसे निर्मम काम पुरुष ही साधते हैं। इसीलिए तो लड़कियों को घाट पर आने की भी मनाही होती है।'

'आप शुरू कीजिए! आग मैं दूँगी।' आकांक्षा की दृढ़ता ने पंडित जी को और कुछ कहने का अवसर नहीं दिया। माँ की चिता को प्रणाम कर आकांक्षा ने माँ का शरीर अग्नि की लपटों को समर्पित कर दिया। ऊपर लपटों में से झाँकता- सा माँ का वात्सल्यपूर्ण चेहरा, आकांक्षा को रुला गया।

'जानते हो, गौरव ! एक बार मेरी उँगली ज़रा- सी जल गई थी। मुझसे ज़्यादा माँ रोई थीं। उनका रोना सुनकर, मैं चुप हो गई थी। आज मैंने स्वयं माँ को अग्नि को समर्पित कर दिया। उन्हें कष्ट तो नहीं हो रहा होगा ?' आकांक्षा भावुक हो उठी।

'नहीं, आकांक्षा ! माँ अब कष्ट, दु:ख-सुख से परे हैं। उन्हें कुछ भी महसूस नहीं हो सकता। ऑपरेशन के वक्त शरीर कैसे भी काटा जाए, भला पता लगता है ?'

'तुम्हारे साथ ने मुझे बहुत साहस दिया है, गौरव ! माँ की मौत की ख़बर सह पाना आसान नहीं था। थैंक्स फ़ॉर एवरी थिंग।'

'तुम्हारा दु:ख क्या मेरा दु:ख नहीं है, आकांक्षा ?'

दोनों मौन बुझती लौ को देखते रहे। साथ आने वालों को घर-वापसी की ज़ल्दी थी। आकांक्षा चिता ठंडी होने तक रुकेगी, गौरव ने सबको हाथ जोड़, विदा कर दिया।

आँसू भरी आँखों के साथ चिता की राख समेट, आकांक्षा ने उसी नदी में प्रवाहित कर, हमेशा के लिए माँ को विदा दे दी।

'हम माँ के फूल हरिद्वार या प्रयाग ले जा सकते हैं, आकांक्षा।'

'नहीं, गौरव ! माँ ने हमेशा कहा, सारी नदियाँ एक- सी हैं। सबकी मंज़िल सागर ही है, पता नहीं लोग गंगा को ही मुक्ति-दात्री क्यों मानते हैं।'

'चलो, तुम्हारी यह बात मान ली, पर लोग श्रद्धावश माँ के ऊपर फूल चढ़ाना चाहते थे। तुमने उन्हें मना करके, उनकी भावनाओं को ठेस क्यों पहुँचाई, आकांक्षा ? सच कहूँ, तो मैंने भी माँ के लिए फूल मँगाए थे।'

'माँ के साथ एक अज़ीब बात हुई थी गौरव, एक रात सपने में उन्होंने कविता की कुछ पंक्तियाँ देखीं। जानते हो वो कौन- सी पंक्तियाँ थीं ?

'क्या सपने में कविता देखी थी, माँ ने ?' गौरव विस्मित था।

'हाँ गौरव ! वो पंक्तियाँ थी-

'मेरे मरने के बाद फूलों के गुलदस्ते मत लाना

क्योंकि हँसते फूलों को रुलाना मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'लंबी कविता थी, पर माँ को पूरी याद रही !' आकांक्षा चुप हो गई।

'सच ! यह तो अज़ीब बात है, आकांक्षा !

हाँ उसी दिन माँ ने कहा था,' कितनी सही बात है, कांक्षा। जीवित व्यक्ति तो फूलों का सौंदर्य, उनकी सुगंध का आनंद उठा सकता है, पर एक नश्वर शरीर पर हँसते खिले फूल चढ़ाना तो फूलों का अपमान करना है। मेरे मरने के बाद फूल मत चढ़ाने देना, कांक्षा।'

'डरकर मैंने माँ का मुँह बंद कर दिया, पर उनकी वो बात दिल में बैठ गई, मैं भूल नहीं सकी। इतनी ज़ल्दी माँ चली जाएगी, यह नहीं सोच सकी थी।' आकांक्षा सुबक उठी। गौरव ने सहानुभूति भरा हाथ उसकी पीठ पर धर दिया।

वापस लौटी आकांक्षा ने किसी से कोई बात नहीं की। सबकी उत्सुक दृष्टियों को नकार, अपने को उसी कमरे में बंद कर लिया, जहाँ माँ के साथ उसने जीवन के बाईस वर्ष बिताए थे।

ढूँढ़ने पर भी माँ की कोई तस्वीर उसे नहीं मिली। बहुत ख़ोजने पर एक धूमिल पड़ गई तस्वीर मिली थी, जिसमें माँ नन्हीं आकांक्षा को गोद में लिए खड़ी थी।

फ़ोटो को सीने से चिपका, आकांक्षा फफक पड़ी- इतनी ज़ल्दी तुम क्यों चली गईं, माँ ? दस दिन बाद तो तुम्हें हमेशा के लिए इस घर से मुक्ति दिलाकर, ले जाने आ रही थी। मेरा इंतज़ार क्यों नहीं किया ? तुम्हारी आँखों ने मेरे लिए जो सपना देखा, मैंने पूरा किया। तुम्हारा सपना तो सच हो गया, पर मैंने तुम्हारे लिए जो सपने देखे, उन्हें क्यों नहीं पूरा होने दिया ? बहुत देर से रुका बाँध, आँखों से बह निकला।

बाहर से दरवाज़े पर कोई ज़ोर-ज़ोर से दस्तक दे रहा था। बहुत देर बाद आकांक्षा को इसका भान हुआ। आँखें पोंछ, दरवाज़ा खोला, सामने गंगा मौसी खड़ी थीं।

'जानती हूँ बिटिया, तेरी माँ का दु:ख तो कोई नहीं बाँट सकता, पर सुरसती मेरी छोटी बहिन थी। अपनी मौसी के साथ तो अपना दु:ख बाँट ले, आकांक्षा।'

'मौसी' कहकर आकांक्षा गंगा मौसी के सीने पर सिर धर, बिलख पड़ी।

'चल, अब नहा धोकर कुछ पेट में डाल ले। अगर सारे कर्मकाण्ड तुझे ही पूरे करने हैं तो शरीर में कुछ जान भी तो होनी चाहिए।

'माँ कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं रखती थीं, मौसी ! इस घर में माँ ने काले पानी की सज़ा भोगी है।'

'पर जाने वाले की आत्मा के लिए शांति-हवन तो करना ही होगा।'

'जिसे जीते जी शांति नहीं मिल सकी, मृत्यु के बाद उसे क्या मिलेगा, कौन जाने। हाँ, मैं एक काम करना चाहती हूँ।' 'कौन-सा काम, बेटी ?'

'अनाथालय के बच्चों को खाना खिलाना चाहती हूँ। माँ के पास अपना कहने के लिए तो कुछ था ही नहीं, दो-चार धोतियाँ होंगी, उन्हें ग़रीब स्त्रियों में बाँटना है। आप मेरी मदद करेंगी, मौसी ?'

'सुरसती और तेरे लिए कुछ भी करूँगी, बेटी।' गंगा मौसी रो पड़ीं।

'यहाँ क्या खुसुरपुसुर हो रही है, गंगा ? हमारे घर के मामलों में दख़ल मत देना।' अचानक माया के साथ पहुँच, शांता ने अपना क्रोध प्रकट कर दिया।

'माँ, को इस घर का सदस्य कब माना गया था, दादी ?'

'देख, आकांक्षा, मेरा मुँह मत खुलवा। तेरी माँ के लच्छन ही ऐसे थे, जो अपने आदमी की इज़्ज़त न कर सकी.....।

'ख़बरदार जो माँ के खिलाफ़ एक शब्द भी और कहा।' आकांक्षा का चेहरा आवेश में लाल हो उठा।

गंगा मौसी चुपचाप बाहर चली गईं। बैग़ से कपड़े निकाल, आकांक्षा बाथरूम में घुस गई। ठंडे पानी की धार भी उसका मन शांत न कर सकी।

भीगे बालों के साथ तक़िए में मुँह गड़ा, आकांक्षा सिसक उठी। बचपन की घटनाएँ एक-एक करके आँखों के सामने साकार होने लगीं।

जब से होश सँभाला, माँ और अपने को इसी छोटे से कमरे में रहते पाया। नन्हीं आकांक्षा समझ नहीं पाती, इतने बड़े से घर में उसे और माँ को इतने छोटे से कमरे में क्यों रहना पड़ता था ? जब भी आकांक्षा अपने कमरे से बाहर निकलकर, सजी हुई बैठक में जाकर खेलना चाहती, दादी घुड़की दे डालतीं-

'ऐ छोरी, बैठक में उल्टा-पुल्टा कर डालेगी। जा अपने कमरे में बैठ।'

'नहीं, हम यहीं खेलेंगे। हमें माँ का कमरा अच्छा नहीं लगता।'

'अरी, तुझे घर में रहने दे रहे हैं, यही क्या कम है। बड़ी आई अच्छा-बुरा कहने वाली। भाग यहाँ से वरना टाँगे तोड़ दूँगी। खेलने लायक भी नहीं रहेगी।'

दादी की डाँट से नन्हीं बच्ची माँ के सीने से बहुत देर तक चिपटी-सहमी रहती। माँ का वात्सल्यपूर्ण हाथ उसे सहला जाता।

ऊपर के सज्जित कमरे में रहने वाला दबंग पुरुष उसका पिता है, यह बात दादी से ही पता लगी थी। बड़ी उमंग से एक दिन नन्हें-नन्हें पैरों से धीमे-धीमे सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँची थी। कमरे का परदा उठाया तो पिता के साथ माया ताई को पलंग पर लेटा देख, वह सहम गई। माया ताई और माँ की उम्र लगभग एक बराबर रही होगी, पर माया ताई खूब सज-धज कर रहतीं और माँ हल्के रंग वाली मामूली धोती पहनती। दादी भी माया ताई की खूब मान-मनौवल करतीं, पर माँ से हमेशा झिड़क कर बोलतीं।

आकांक्षा ने माँ से कहा था- 'माँ तुम भी ताई की तरह अच्छी-अच्छी साड़ियाँ क्यों नहीं पहनतीं ?'

'वह सुहागिन है, बेटी।'

'और तुम ?'

'कुछ नहीं। तू इन बातों पर अपना ध्यान मत दिया कर। कपड़ों से क्या होता है ?'

'माँ, हम भी पापा के साथ उनके कमरे में सोएँगे।'

'नहीं, वो हमारा कमरा नहीं है।'

शायद वही उत्सुकता, आकांक्षा को ऊपर वाले कमरे तक खींच ले गई थी। परदा उठाए खड़ी आकांक्षा को देख, माया घबरा-सी गई। पापा का चेहरा तमतमा आया।

'ऐ लड़की तू यहाँ क्यों आई। भाग यहाँ से, ख़बरदार! जो कभी सीढ़ियाँ चढ़ी।

भय से काँपती आकांक्षा न जाने किसी तरह से लड़खड़ाती हुई सीढ़ियाँ उतरी थी। पूरी बात सुनती माँ का चेहरा विवर्ण हो उठा।

'तुझे मना किया था, न ? फिर क्यों गई ?'

'हम पापा से बात करना चाहते थे, माँ।' रोती आकांक्षा ने कहना चाहा।

'वह तेरे पापा नहीं हैं। तू बस मेरी है आकांक्षा।' माँ ने रोती आकांक्षा को सीने से चिपटा लिया।

उस दिन के बाद पहली बार माँ ने ऊपर जाकर पापा से न जाने क्या बात की कि आकांक्षा को हॉस्टल भेजने का निर्णय ले लिया गया।

माँ से अलग होना, सज़ा से कम नहीं था, पर माँ ने दृढ़ता से कह दिया- 'इसी में तेरी भलाई है, कांक्षा ! यह बात बाद में समझेगी। अपनी माँ के सपने तुझे ही तो पूरे करने हैं। यहाँ के माहौल में तू पनप नहीं सकेगी, बेटी।'

बड़ी होती आकांक्षा सच्चाई से परिचित होती गई। माया ताई, दादी के एकमात्र भतीजे की पत्नी थी। भाई-भाभी पहले ही स्वर्ग-वासी हो चुके थे। भतीजे की मृत्यु के बाद नवविवाहित भतीजे की पत्नी, माया को दादी अपने साथ ले आईं। विमल और युवती माया का साथ रहना अस्वाभाविक नहीं लगा था। दोनों में खूब पटती। सरस्वती के साथ शादी के लिए विमल तैयार नहीं था, पर चाचा के घर पल रही अनाथ सरस्वती के नाम माँ की कुछ सम्पत्ति थी। उसी लोभवश शांता ने बेटे को समझा -बुझाकर शादी के लिए तैयार कर लिया। सरस्वती की सम्पत्ति विमल के नाम करने का प्रस्ताव पर चाचा ने अड़चन नहीं डाली थी। अंततः शादी के बाद सम्पत्ति विमल की तो होगी।

प्रथम रात्रि, विमल ने मीठी-मीठी बातें करके भोली सरस्वती को मुग्ध कर लिया। मातृ-पितृ विहीन सरस्वती, पति का प्यार पाकर निहाल हो उठी। अपना सब कुछ देकर भी वह प्रसन्न थी। आकांक्षा शायद प्रथम-रात्रि ही कोख में आ गई थी।

अचानक एक घटना से सारी सच्चाई उजागर हो गई। जिस पति को देवता मानकर पूजा की, वह तो उसका था ही नहीं। उसे सोया जानकर पति माया के पास चला गया था। पानी पीने को उठी सरस्वती पति को न पा, चौंक गई। हल्की दबी हँसी

की आवाज़ों को सुनकर, माया के कमरे की दरार से जो दृश्य देखा, उसे जड़ बना देने को पर्याप्त था। तो यह थी पति की सच्चाई ? घृणा से सरस्वती का सर्वांग कंटकित हो उठा। किसी की जूठन पर वह गर्वित थी। नहीं, उसके संस्कार व्यभिचारी पति को स्वीकार नहीं कर सकते।

भोर की उजास के ज़रा पहले ही पति ने वापस आकर देखा सरस्वती कुर्सी पर निश्चल बैठी थी।

'क्या हुआ, सोई नहीं ?

कोई उत्तर न पा, ज़रा ज़ोरों से प्रश्न दोहराया था- 'मैं तुमसे कुछ पूछ रहा हूँ।'

'आज पूरी तरह से जाग गई हूँ।' धीमे से सरस्वती ने कहा।

'क्या मतलब ?'

'यही की आज, अभी से हमारे बीच के सारे संबंध ख़त्म हो गए। हम पति-पत्नी नहीं हैं।' दृढ़ता से सरस्वती ने कहा।

'क्यों, ऐसा क्या हो गया ?' व्यंग्य से विमल ने पूछा।

'जिसे मेरे पहले ही पत्नी के अधिकार दे रखे हैं, उसके बाद हमारे संबंध का कोई औचित्य ही नहीं रह जाता।

'तब तो तुम्हारा इस घर में रहने का भी कोई औचित्य नहीं है।'

'मेरी सम्पत्ति अपने नाम लिखवाकर मुझे बेघर करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। मैं कहीं नहीं जाऊँगी। भगवान् मेरा न्याय करेगा।'

'अरे भगवान् को जो न्याय करना था, कर दिया। माँ-बाप पहले ही सिधार गए, अब तो तुम्हारे चाचा भी सब कुछ बेचकर बेटे के पास अमरीका चले गए हैं। अब इस घर के अलावा दूसरा ठौर ही कहाँ है ?' विमल ने सरस्वती के मर्म पर सीधा प्रहार किया।

'मेरी संतान मुझे न्याय दिलाएगी।'

'ठीक है, देखती रहो संतान के सपने, देखें कौन-सा अर्जुन पैदा करोगी। अगर वचन की पक्की हो तो याद रखना, अपने बच्चे के साथ इसी कमरे में पड़ी रहना। ख़बरदार जो अपना कोई हक़ जमाने की कोशिश की।' उत्तेजित विमल बाहर चला गया।

बाहर खड़ी शांता ने बेटे का मन पढ़ लिया। चतुर सास समझ गई, माया का साथ देने में ही भलाई है। वैसे भी घर के कामकाज निबटाने के लिए सरस्वती ही ठीक है। माया ने अपने माया-जाल में विमल को पूरी तरह से फँसा लिया था। उसके जैसे लटके-झटके सीधी-साधी सरस्वती में कहाँ ?

उस दिन सरस्वती बहुत रोई। संस्कृत-शिक्षक पिता ने बेटी को आठवीं तक संस्कृत पढ़ाई थी। माँ ने बेटी को स्त्री--धर्म के सारे गुण सिखा दिए थे, पर दुनियादारी नहीं सिखाई। सरस्वती को आगे शिक्षा दिलाने के पहले ही माता-पिता की एक बस-दुर्घटना में मृत्यु हो गई। सरस्वती उस समय चाचा के घर आई हुई थी, सो बच गई। काश ! वह शिक्षित होती तो इस नरक में रहने को क्यों विवश होती ?

घर में बच्चा आने वाला था, पर उसकी न किसी को प्रतीक्षा थी न सरस्वती के लिए कोई चिंतित था। सरस्वती को गंगा दीदी का ही सहारा था। सरस्वती की स्थिति से वह परिचित हो चुकी थीं। सरस्वती के स्वाभिमान का वह आदर करती थीं। एक वहीं थीं जो सरस्वती के लिए कभी कुछ बना लातीं, उसका हौसला बढ़ातीं।

एकाध बार विमल ने पत्नी से भी अपना प्राप्य वसूलना चाहा। अंततः उसके शरीर पर उसका ही तो अधिकार था, पर सरस्वती ने उसे पास नहीं आने दिया। गंगा ने दबी ज़ुबान से कहना चाहा- 'तू विमल को धिक्कारती क्यों है ? हो सकता है, बच्चा आने के बाद वह तेरी ओर खिंच जाए।'

'नहीं दीदी। मुझे जूठन से नफ़रत है। बचपन में अम्मा ने कभी बचा खाना भी नहीं खाने दिया। जूठा पति स्वीकार कर, अपना धर्म नहीं बिगाड़ूँगी।'

गंगा मुग्ध ताक़ती रह गई। आठवीं पास सरस्वती में स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। दुर्भाग्यवश उसके पास कहीं और रहने का ठौर नहीं था, वरना क्या वह एक पल को भी उस छत के नीचे ठहरती ? वैसे भी घर की खरीद में सरस्वती के पिता के पैसे ही लगे थे। अगर विमल ने चालाकी से सम्पत्ति अपने नाम न करवा ली होती तो सरस्वती ही तो घर की मालकिन होती।

प्रसव के समय भी सब कुछ गंगा ने ही सँभाला था। सरस्वती की बेटी को सीने से लगा, सरस्वती की सास से कहा था- 'लो शांता काकी, चाँद- सी बिटिया हुई है। तुम्हारे घर लक्ष्मी आ गई।'

'हाँ-हाँ, माँ सुरसती और बेटी लक्ष्मी। कौन-सा बेटा जना है जो खुशी मनाऊँ। एक बोझ आ गई है।'

'नहीं, मेरी बेटी मेरी आकांक्षा है। यह बोझ नहीं, मेरा सपना मेरी आकांक्षा पूरा करेगी।'

'खुद तो पति से नाता तोड़े बैठी है, बेटी को वकील बनाकर बाप पर मुकदमा कराएगी। यही सपना देख रही है, न ? सास ने ताना मारा।

'भगवान् आपका कहा सच करे।' सरस्वती धीमें से बुदबुदाई।

आकांक्षा के जन्म के बाद सरस्वती जैसे सब कुछ भूल बैठी। बेटी का लाड़ सास को नहीं भाता, पर उनकी बातें अनुसुनी करती सरस्वती मगन रहती। उसे जीने का सहारा मिल गया था। गंगा को आकांक्षा मौसी पुकारती। माँ और गंगा मौसी के बीच आकांक्षा बड़ी होती गई। आकांक्षा मेधावी लड़की थी। उसकी तेजस्विता से सास भी भय खाती। एक बात ज़रूर थी उसने कभी भूलकर भी पिता या माया पर दृष्टि नहीं डाली। माया का सामना होते ही उसके चेहरे पर घृणा आ जाती।

हॉस्टेल से घर आने पर पिता को माया के साथ देख, आकांक्षा का खून खौल उठता। माँ से कहती-'माँ, इस घर में अपमानित जीवन क्यों जी रही हो ? नाना की सम्पत्ति वापस पाने के लिए तुम मुकदमा क्यों नहीं करतीं ?'

'तेरी गंगा मौसी ने किसी वक़ील से बात की थी, उसका कहना है स्वयं दी गई ज़ायदाद वापस लेने का हक़ नहीं होता। हाँ, अगर कोई साबित कर दे जायदाद धोखे से ली गई थी तभी कुछ हो सकता है। अब तू पढ़-लिखकर कुछ बन जा, आकांक्षा तभी इस नरक से बाहर निकल सकूँगी, बेटी।' सरस्वती की आँखों में आँसू आ गए।

'मैं सुपरिटेंडेंट पुलिस बनकर पापा,

दादी, माया ताई सबको जेल में बंद कर दूँगी, माँ।' उत्तेजित आकांक्षा का मुँह लाल हो जाता।

फ़र्स्ट आने पर आकांक्षा को स्कूल से वजीफ़ा मिलने लगा। आकांक्षा ने माँ के लिए एक साड़ी और किताबें ख़रीदी थीं।

'माँ, इन किताबों से तुम्हें जीने का साहस मिलेगा। अगली बार मैट्रिक की किताबें लाऊँगी। तुम्हें मैट्रिक की परीक्षा देनी है।'

'इस उम्र में मैं पढ़ूँगी, कांक्षा ?' सरस्वती हँस पड़ी।

'हाँ, माँ ! तुम्हें अपने पैरों पर खड़ा होना है। कोई किसी को कब तक सहारा देगा ? कल को मैं न रहूँ तो.....।'

सरस्वती ने आकांक्षा को आगे बोलने नहीं दिया था। मन पर भय हावी हो गया था। नहीं, भगवान् इतने निर्दयी नहीं हो सकते। सरस्वती ने अपने को किताबों में डुबो दिया। घर के कामकाज निबटा, वह आकांक्षा की लाई किताबें पढ़ती। आकांक्षा ने प्रेरणा की चिंगारी प्रज्ज्वलित कर दी थी।

समय बीतता गया। आकांक्षा ने बी.ए. की परीक्षा में प्रथम स्थान के साथ प्रथम श्रेणी पाई थी। माँ के पाँव छूकर कहा था- 'आशीर्वाद दो माँ, मैं पुलिस-सेवा में चुन ली जाऊँ और इस वर्ष तुम मैट्रिक की परीक्षा पास कर लो।'

'क्या, पुलिस-सेवा में जाने की बात तू भूली नहीं, कांक्षा ?' सरस्वती विस्मित थी।

'नहीं, माँ ! मुझे सब याद है। मैं जानती हूँ, अन्याय का प्रतिकार करने के लिए कोई ऐसा पद होना चाहिए, जिसमें शक्ति निहित हो।' दृढ़ता से ओंठ भींच आकांक्षा ने कहा।

'भगवान् तुझे सफलता दें, बेटी, पर बदले की भावना मन से निकाल दे। मेरे साथ अन्याय हुआ, पर तेरी पढ़ाई का खर्चा देने के लिए मैं उनकी आभारी हूँ।'

'क्या एक बाप का बस यही फ़र्ज़ होता है, माँ ? कभी बेटी को प्यार नहीं किया। अपने घर में परायों की तरह डरी-सहमी बड़ी हुई। नहीं माँ, मैंने सोच लिया है, मेरी पढ़ाई पर उन्होंने जो भी पैसा खर्च किए हैं, सूद-समेत लौटा दूँगी।' मेरे लिए तो तुम्हीं मेरी माँ और पिता हो।' तल्ख़ी से आकांक्षा ने कहा।

'अब तू सचमुच बड़ी हो गई है, कांक्षा ! तू मेरी बेटी नहीं, मेरा बेटा है।' गद्-गद् कंठ से सरस्वती ने कहा।

'हाँ, माँ ! मैं तुम्हारा बेटा हूँ। तुम्हारे सारे सपने पूरे करूँगी।' प्यार से आकांक्षा ने माँ के गले में बाँहें डाल दीं।

भारतीय पुलिस सेवा में चयन पर आकांक्षा को माँ ने गले से लिपटा, ढेर सारे खुशी के आँसू बहा डाले। ट्रेनिंग पर जाती आकांक्षा ने माँ से वादा किया था, पहली पोस्टिंग होते ही वह माँ को अपने साथ ले जाएगी। अब इस नरक में नहीं रहने देगी।

दिल्ली में पोस्टिंग मिलने की वज़ह प्रतियोगिता-परीक्षा में आकांक्षा की ऊँची पोज़ीशन ही थी। घर मिलते ही माँ को ले जाने की सूचना माँ को भेज दी थी।

ट्रेगिंन के दौरान आकांक्षा को माँ का एक अज़ीब पत्र मिला। जैसे माँ को अपनी मृत्यु का आभास हो गया था, शायद तभी उन्होंने लिखा था,'मैं चाहती हूँ मेरा अंतिम संस्कार मेरी बेटी ही करे। मेरे शरीर का वे लोग स्पर्श भी न करें। जिनकी वजह से जीवन भर चिता की आग में जली हूँ। मैंने एक विधवा जैसा एकाकी जीवन जिया है। मुझे विधवा की तरह ही अंतिम विदाई देना, बेटी। यही मेरी आख़िरी इच्छा और यही मेरी वसीयत है।'

पत्र पढ़ती आकांक्षा रो पड़ी। काश् ! उसी दिन छुट्टी लेकर वह आ पाती, माँ अक्सर ऐसी निराशाजनक बातें नहीं करती थीं।

माँ की अल्मारी देखती आकांक्षा के हाथ सरस्वती की एक मेडिकल-रिपोर्ट आ गई। रिपोर्ट देखती आकांक्षा चीख पड़ी- 'यह क्या.... माँ को लंग- कैंसर था ?' माँ ने यह बात आकांक्षा तक से छिपाई। कई बार माँ को खाँसी का दौरा- सा पड़ता। लगता जैसे उनका दम घुट रहा हो। आकांक्षा की चिंता पर माँ हँस देती।

'कुछ नहीं, परसों भीगे बालों को बाँध लिया था, सो ठंड लग गई।' पानी पीकर माँ अपनी पीड़ा किस आसानी से छिपा लेती थीं।

आँसू बह निकले। सबको तो वह दंडित कर सकती थी, पर अपने को क्या सज़ा दे ? माँ से चिपक कर सोती आकांक्षा, उसके लंग-कैंसर की आवाज़ क्यों नहीं सुन सकी ?

'माँ तुमने मुझे, अपनी बेटी को यह सज़ा क्यों दी ?'

भूखी-प्यासी आकांक्षा कमरा बंद किए पड़ी थी। गौरव की आवाज़ पर द्वार खुला था। लाल सूजी आँखे, बिखरे बाल देखकर गौरव डर- सा गया।

'तुम तो अपनी माँ की बहादुर बेटी हो, आकांक्षा। हिम्मत रखो। तुम्हारे रोने से माँ को कष्ट होगा।'

'माँ ने जो कष्ट सहा, वह तो मैं उनकी जाई बेटी भी नहीं बाँट सकी, गौरव। माँ को लंग-कैंसर था। उन्होंने मुझे क्यों नहीं बताया, क्यों गौरव क्यों ?'

'वह चाहती थीं उनकी बेटी का सपना पूरा हो। उसमें कोई बाधा न आए, इसीलिए उन्होंने यह बात तुमसे भी छिपाई आकांक्षा।'

'चलो, गौरव। हमें अभी वापस जाना है।'

'यह क्या अनर्थ कर रही हो, आकांक्षा। अरे तूने चिता को आग दी है। तेरह दिन तक तुझे वहीं बैठना-सोना है, जहाँ तेरी माँ का शरीर रखा गया था। ऐसा न करने से सुरसती की आत्मा भटकेगी।' शांता ने चेतावनी- सी दी।

'नहीं, इस घर में जीवित माँ की आत्मा अपना स्थान पाने के लिए भटकती रही। अब वह इस भूतों के डेरे से मुक्त हो गई है। मैं यहाँ एक पल के लिए भी नहीं ठहर सकती।' बैग उठा, आकांक्षा घर से बाहर आ गई। पीछे-पीछे गौरव था।

स्नान कर, सूर्य को अर्घ्य देती आकांक्षा बुदबुदाई- 'माँ तुम शून्य में विलीन हो गई हो, पर तुम्हारी स्मृति हमेशा मुझे प्रेरित करती रहेगी। किसी भी परिवार में प्रताड़ित स्त्री को न्याय और उसका प्राप्य दिलाना, मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय और संकल्प होगा।'

आँखें बंद किए आकांक्षा के दृढ़ चेहरे को सूर्य की सुनहरी रश्मियाँ बिखर, उसे ज्योतिर्मय बना गई।

***

काग़ज़ की नावें

मुकेश वर्मा

वे मेरे भाई हैं। पहले हम एक घर में रहते थे। सालों बाद हमने अपने-अपने घर बना लिए। दरअसल हम फिर बड़े और दुनियादार हो चुके थे और दुनियादारी में अलग-अलग रहना और होना ज़रूरी होता है। हम फिर भी तीज-त्योहारों और विवाह-बारातों में अक्सर मिलते-जुलते रहते थे, क्योंकि दुनियादारी का यह एक कायदा है और रस्मो-रिवाज भी और वक्त-बेवक्त की ज़रूरतों का उबाऊ तकाजा भी।

वे मेरे घर में कम ही आते लेकिन इस तरह प्रवेश करते, जैसे किसी सुरंग में पाँव रख रहे हों। नपे-तुले कदमों से आते हैं और बेहतर तरीकों से चौकन्ने रहते हैं। बैठक के कोने में रखे उस सोफे पर बैठकर जहाँ से घर का अधिकांश भीतरी हिस्सा और हालात आराम से देखे जा सकते हैं, बाहर-भीतर का चुस्त मुआयना करते हैं। वे दीवारों के पार भी देख लेते, सुन भी लेते और चुपचाप उन तमाम चीज़ों को नोट करते हैं, जिन्हें हास्यास्पद, घृणास्पद और घटिया बनाकर अपनी पत्नी को लौटकर सुनाया जाता है। हर बात में मीन-मेख निकालकर देर तक हँसते हैं। उनकी हर हँसी में तिक्त उपहास और निष्ठुरता होती, कभी-कभी इतनी ज़्यादा कि लगता है कि वे अपने आप पर हँस रहे हैं और भीतर रो रहे हैं।

वे मुझसे तीन साल बड़े हैं। ऊँचा कद, भारी बदन, बड़ा पेट, कानों में बड़े-बड़े बाल और आँखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा जिसमें से उनकी तेज-तीखी और चौकस-चमक आँखें लगातार घूरती रहती हैं। उनको देखकर अब नहीं लगता कि हम दोनों कभी साथ-साथ पले, पढ़े ओर बड़े हुए हैं।

वे हमेशा अख़बार पढ़ते और हमेशा दुनिया से नाराज़ रहते। वे दुनिया को बचाने के सवाल पर हर किसी से भिड़ जाते और जल्दी ही कठोर शब्दों का इस्तेमाल करते हुए उसी दुनिया को तहस-नहस करने पर आमादा हो जाते। वे स्थायी रूप से क्या कहना चाहते, कभी कोई समझ नहीं पाया क्योंकि वे एक क्षण जिस बात के पक्ष में ज़ोरदार दलीलें देते हुए दिखते, लगभग दूसरे ही पल उसके ख़िलाफ किसी भी किस्म के तर्क देने में उन्हें देर नहीं लगती और यदि कोई बहस टालने की मंशा से उनसे उनकी बात से सहमत होने लगता तो वे हत्थे से उखड़ जाते और ख़िलाफ उसी व्यक्ति पर चिढ़चिढ़ाते हुए उसकी लानत-मलालत करने में कोई कसर नहीं छोड़ते।

उन्हें लगता कि सारी दुनिया किसी अदृश्य साजिश के तहत उनके ख़िलाफ़ है और इस बिना पर वे हर बात पर शक और हर आदमी से नफरत करते। किसी को अपने पास फटकने नहीं देते। उनके मिज़ाज को समझना कठिन होता है। वे जब तक जहाँ रहते, वातावरण तल्ख़ और आशंकाएँ हवा में मँडरातीं। मुझे लगता कि वे ख़ुद इस बात को महसूस करते हैं। लेकिन कहीं अवश हैं। कहीं कुछ ऐसी गाँठें बन चुकी हैं कि उन गुत्थियों के ढेर में आदमी बिला गया है और सुलझाव का सिरा सिरे से गायब है।

मुझे याद आता है कि बचपन में घर के पिछवाड़े बारिश में वे बड़ी सफाई और चतुरता से कागज की नावें तैयार करते थे। छोटी-छोटी सफेद नावें देर तक तैरती चलतीं और फिर नाले के मुहाने में उतरकर कुछ देर बाद ओझल हो जातीं और शायद ही कभी डूबतीं। तब वे बहुत दुबले-पतले थे। सिलेटी रंग का हाफ-पैन्ट और सैन्डो बनियान पहिनते जो उन दिनों हम सब बच्चों का पारम्परिक परिधान था लेकिन वे हमेशा उन्हें रोज़ धोकर और गरम

एफ़-1, सुरेंद्र गार्डन, बाग़ सेवनिया पुलिस स्टेशन के पास, होशंगाबाद रोड, भोपाल मप्र, 462043
मोबाइल 9424446584

लोटे से इस्त्री कर पहिनते थे। उनके गले में काले धागे से बँधा ताबीज़ भी होता जिसे रोज़ाना नियम से धोया जाता।

नाव बनाने में मैं हमेशा फिसड्डी रहा। तमाम कोशिशों के बाद मेरे रुआँसे हो जाने पर वही एक थे जो मुझे पुचकारते, करीब बैठा लेते और मेरी नाव बना देते जो देर तक पानी में तैरती रहती और कभी डूबती नहीं। मैं खूब हँसता। मेरे साथ वे भी हँसते और उत्साहपूर्वक बताते कि नाव किस तरह बनानी चाहिए। अख़बार कभी मत लेना। एकदम गल जाता है। साफ-सुथरा काग़ज़ लेकिन पतला नहीं, कुछ थोड़ा मोटा और ज़्यादा मोटा भी नहीं। तीन मोड़ देते हुए कुछ इस तरह....फिर यूँ झुकाकर...हाँ... ऐसे ही..... आराम से.....कहीं उलझना नहीं है। बस, ध्यान यह देना है कि ख़ास बात संतुलन है, ना कम, ना ज़्यादा, ना बड़ी, ना छोटी, ना भारी, ना हल्की....नाव जो हवा और पानी को बराबर सँभाल ले।

तब से कितना वक्त बीत गया। नाव बनाने का संतुलन जो सीखा था, वह ज़िन्दगी बनाने में मैंने याद रखा लेकिन वे भूल गए; क्योंकि हम दुनिया में हर जगह मिले लेकिन घर के पिछवाड़े बारिश में फिर कभी नहीं मिले।

अगली बार जब वे घर आएँगे, दरवाज़े पर ही मैं उन्हें एक साफ-सुथरा और थोड़ा मोटा काग़ज़ दूँगा। निश्चय ही वे अचकचा जाएँगे और मुझे तथा काग़ज़ को हैरत और ज़्यादा संदेह से घूरने लगेंगे। लेकिन मुझे उम्मीद है कि वे जल्द ही हँसने लगेंगे। मुझे अभी तक उनकी वह हँसी याद है जो आँखों से उमड़कर नीचे होठों के कोनों से जुड़ती और फिर शरीर भर में फैल जाती, तब वे ज़ोर-ज़ोर से हिलते गैस भरे गुब्बारे से दीखते। यह हँसी वे भूल चुके हैं। एक बार याद आने पर वे तमाम नाराज़गियाँ और बदमगज़ियाँ भूल जाएँगे।

फिर शायद हम दोनों घर के पिछवाड़े के आँगन में उतर जाएँ, फिर शायद वैसा ही मौसम हो, फिर शायद बारिश हो या फिर ना भी हो,

लेकिन मैं कोशिश करूँगा।

***

लघु कथा

सत्संग

नकुल गौतम

संपर्क: बी विंग, 202, सरयू, शुचिधाम, मलाड पूर्व, मुंबई 97
ईमेल: nakulgautam1@gmail.com

कुल दस सीढ़ियाँ चढ़ने में उस बुज़ुर्ग महिला को लगभग बीस मिनट लग चुके थे। उसका पति ऊपर पहुँच कर उसका इंतज़ार कर रहा था। मुस्कुराते हुए पति ने महिला से कहा, ''तुम बूढ़ी हो गई हो, कितना रुक-रुक कर चलती हो''।

''तो ढूँढ़ लो शहर में कोई जवान लड़की। मेरे सिवा कोई आपके नखरे नहीं उठाएगी।'' महिला ने भी अपनी लाठी सँभालते हुए कहा।

घण्टी बजाने पर बहू ने दरवाज़ा खोला। चरण स्पर्श की व्यवहारिकता निभा कर बहू रसोई में चली गई। बेटा कुछ देर में कमरे से बाहर निकला।

''एक सत्संग के लिए इतना लम्बा सफर करके शहर आने की क्या ज़रूरत थी? क्यों इतना कष्ट उठाया'' बेटे ने पूछा।

''अब इस उम्र में भजन कीर्तन करके ही समय व्यतीत होता है बेटा''। महिला ने मुस्कुराते हुए कहा।

कुछ देर सुस्ताने के लिए कमरे में गए तो खिड़की से गली की आवाज़ें सुन रही थीं।

''चला जाता नहीं और ट्रेन में बैठ गए। अब दो दिन इन्हीं की आव भगत में निकलेंगे। हड्डियों में जान नहीं है और पैरों को चैन नहीं''। बहू किसी सहेली से शिकायत कर रही थी। दोनों बुज़ुर्ग लेटे हुए सब सुनते रहे।

अगले दिन सत्संग में गए तो दोनों प्रवचन सुनने से अधिक बहू के तानों और बेटे की बेरुखी के बारे में सोच रहे थे। एक दूसरे से आँख चुरा कर थोड़ा रो कर अपना मन भी हल्का कर लिया। बीच में उठ कर ही घर लौट आए।

''बेटा आठ बजे दिल्ली की गाड़ी में बिठा देना। कल वहाँ सत्संग है''। बुज़ुर्ग ने बेटे से कहा।

''अब दिल्ली जाकर बाबा कुछ नया कहेंगे क्या? एक ही बात दोहराते हैं ये लोग। भैया को भी परेशानी होगी।'' बेटे ने चिढ़ते हुए कहा।

''तुम नहीं समझोगे बेटा, जब बूढ़े हो जाओगे, तब शायद समझ पाओ''। पिता ने समझाते हुए कहा।

पत्नी की आँखों में देखते हुए बुज़ुर्ग सोचने लगा ''अब यह कहाँ समझ पाएगा कि हम सत्संग के बहाने दोनों बेटों से मिलने की तम्मन्ना पूरी कर रहे हैं''।

***

एक और दीवार

मंजुश्री

''मिसेज़ बागची... मिसेज़ बागची...'' सिस्टर कामले उसको झकझोरते हुए आवाज़ दे रही थीं।

वह छटपटा रही थी पर उठ नहीं पा रही थी। गले से घर्र-घर्र आवाज़ निकल रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे उसकी छाती पर मनो बोझ रखा हुआ है और उसके ऊपर दबाव और बढ़ता ही जा रहा है। जैसे कोई उसका गला दबा रहा है। साँस लेने में बड़ी कठिनाई हो रही है। तभी अचानक वह अपना गला पकड़े हुए झटके से उठ बैठी... बुरी तरह घबराई हुई, पसीने से तर-बतर, अस्त-व्यस्त। पर यह सपना नहीं लग रहा था। सब कुछ इतना सच लग रहा था, जैसे वास्तव में कोई उसका गला घोंट रहा हो। इधर उसे अक्सर इस प्रकार का अनुभव होने लगा है और यह अहसास इतना ज़बरदस्त होता है कि उसे झटक पाना आसान नहीं होता... काफ़ी समय तक वह डरी-डरी सी रहती है।

सिस्टर कामले ने उसे सहारा देकर बैठाया और तौलिए से पसीना पोंछकर एक गिलास पानी और दवाई की एक गोली दी और दो-चार बातें कर के चली गईं। उसने तेज़ी से पलंग से उठकर सामने वाली खिड़की पूरी तरह खोल कर दो-चार गहरी साँसें लीं। बाहर की खिली हुई धूप में लॉन पर ओस की बूँदें मोती सी चमक रही थीं। बूँदों पर पड़ती धूप सतरंगे रंग बिखेर रही थी। एकबारगी मन हुआ हथेली पर बूँदों को उठा ले। बाहर अभी कोई नहीं था। केवल चिड़ियाँ चहचहा रही थीं और पास के पीपल के पेड़ से सूरज की रोशनी ज़मीन पर शहतीरें बना रही थीं। हवा का ठंडा झोंका चेहरे को सहला गया और वह कुछ चैतन्य हुई। बहुत देर तक खिड़की के बाहर ताकती रही।

बाहर मैदान में उसके कमरे से थोड़ी दूर पर एक घना पीपल का पेड़ है, जिसके चबूतरे पर सारा दिन मजमा-सा लगा रहता है। एक आदमी आता है, तो एक जाता है। काफी देर तक वहाँ चबूतरे पर लोग गप्पें मारते रहते हैं, ताश भी खेलते हैं। ये वे लोग हैं जो यहाँ अपने संबंधियों से या तो मिलने या उनके उपचार के सिलसिले में आते हैं। यहाँ के कर्मचारी भी खाली समय में बैठकर बीड़ी-सिगरेट पीते हुए गप्पें मारते रहते हैं। बड़ा अच्छा लगता है उसे यह सब। कभी-कभी कुछ मरीज़ भी अपने रिश्तेदारों के साथ बाहर टहलते हुए दिखाई देते हैं। खिड़की के सामने बैठ कर वह इन सबको देखती रहती और सबके बारे

मुंबई की सेवानिवृत शिक्षिका, कथाबिंब पत्रिका की संपादिका मंजुश्री की कहानियाँ सारिका, पुष्पगंधा, हिन्दी चेतना, सबरंग इत्यादि में और कविताएँ ऋतुचक्र, पूर्वा, आघात, अपूर्वा, अर्पण और दैनिक कश्मीर टाइम्ज़ में प्रकाशित हुई हैं। विभिन्न पत्रिकाओं में लेख, साक्षात्कार व लघुकथाएँ भी प्रकाशित एवं पुरस्कृत हुई हैं। कुछ कहानियाँ मराठी में अनूदित।
संपर्क:
ए-10, बसेरा ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-400088
मो. : 9819162949

में अपनी धारणाएँ बनाती रहती है। पर जब बिस्तर पर लेट कर इस पीपल के पेड़ को देखती है तो उसकी टेढ़ी-मेढ़ी लंबी-लंबी डालें उसे काटने को दौड़ती हैं। शाम के धुँधलके में खिड़की के शीशों पर हिलती-डुलती शाखों की छायाएँ उसे डराने लगती हैं। इतना घना और पुराना पेड़ दिन में तो उसे सुकून देता है किन्तु रात में अस्पताल के दमघोटू सूने माहौल में उसे यह डराने लगता है। वह सोचती कुछ दिनों में पीपल की पत्तियाँ झड़ने लगेंगी तब! कितना सूखा और सूना लगेगा यह पेड़! इस कल्पना से ही वह सिहर उठती। उसको लगता है कि इन सूखी शाखाओं को बार-बार लगातार देखते रहने से कहीं वे खिड़की के रास्ते अंदर घुस कर उसका गला न पकड़ लें। कहीं ऐसा ही तो नहीं हो रहा है... चौंक कर उसने अपने गले पर हाथ फिराया.... एक सिहरन-सी दौड़ गई पूरे शरीर में... यह क्या हो रहा है.... क्या सोच रही है वह... नहीं, नहीं .... यह सब एक सपना ही है।

इतने दिनों से अस्पताल में रहते-रहते ऊब गई है वह। दवाइयाँ, इंजेक्शन, नर्स, डॉक्टर... कितना नीरस और उबाऊ माहौल है यहाँ का! कितनी यंत्रचालित ज़िन्दगी। खिड़की के बाहर का संसार कितना अलग है। बदलते मौसम के सारे चटकीले रंग कमरे के बाहर ही दिखाई देते हैं जो उसे थोड़ी-सी राहत दे जाते हैं। सड़क के पार अमलतास के पीले फूलों की लड़ियाँ और गुलमोहर के चटक नारंगी-लाल फूल ताज़गी भर देते हैं। कितना खुशनुमा और सुंदर लगता है सब कुछ। अस्पताल की चारदीवारी से सड़क की चहल-पहल ज़्यादा तो नहीं दिखाई देती पर आते-जाते वाहनों की आवाज़ों से अंदाज़ा लगाती है कि काफी शोर-शराबा रहता है दिन भर। मानसिक और मनोवैज्ञानिक तनावों से ग्रस्त लोगों के उपचार के लिए बना यह अस्पताल मुख्य शहर से थोड़ा दूर हट कर है। सुंदर-सी इमारत है और चारों तरफ काफी हरियाली और सुकून है दूसरे अस्पतालों से अलग। पर उसे लगता है कि किसी तरह उड़कर बाहर पहुँच जाए।

घर पर सब लोग वैसे होंगे? उन्हें भी उसकी कमी महसूस होती होगी या नहीं? ठीक तो है वह बिल्कुल! क्या हुआ है उसे, समझ नहीं पाती! उसे तो यहाँ सब स्वस्थ ही नज़र आते हैं। उसे यहाँ आए हुए लगभग दो साल हो गए हैं। डॉक्टर कहते हैं कि अस्पताल में कुछ दिन और रहना उसके लिए फायदेमंद है, उसे आराम की ज़रूरत है। वह पूरी तरह ठीक नहीं है, यहाँ उसकी देखभाल ठीक से होती रहेगी; लेकिन ये सब बातें उसके अंदर उठते बवंडर को शांत नहीं कर पातीं। बहुत हो गया अब, नहीं चाहती वह और ठीक होना... यहाँ रहकर तो वह पागल ही हो जाएगी। क्यों नहीं जाने देते उसे ये लोग?

सुमी...! मेरी सुमी वैसी होगी...? अच्छा खासा कद निकल आया होगा... और आकाश... क्या हो गया है आकाश को? पंद्रह-बीस दिनों में बस एक चक्कर मार जाते हैं। पहले तो बहुत जल्दी-जल्दी आते थे। आकाश के आने पर वह बहुत खुश हो जाती थी। लगता उसे घर वापस ले जाने के लिए आए हैं। कितनी उद्वेलित हो जाती थी वह। पर धीरे-धीरे उसे समझ में आने लगा कि ऐसा कुछ नहीं है। उसे अभी यहीं रहना है। आकाश उसे फिलहाल ले जाने नहीं आए हैं। हर बार वही ठंडे वाक्य, ''कैसी हो?'' 'दवा बराबर लेती हो या नहीं?' ''घर से और कुछ चाहिए?''

उसके पूछने पर कि कब घर जा पाएगी? हर बार एक ही जबाव, ''जल्दी ही...'' पूछे गए प्रश्नों के छोटे-छोटे उत्तर उसके मन में उमड़ते-घुमड़ते प्रश्नों को पीछे धकेल देते। वह बहुत बलपूर्वक कुछ कह भी तो नहीं पाती।

टुकड़ों-टुकड़ों में की गई छोटी-छोटी बातें उसकी उम्मीदों पर पानी फेर देतीं, मानो कहीं कोई नाटक चल रहा है.... आकाश की आँखों में झाँक कर समझना चाहती है। समस्या की जड़ में जाना चाहती है। उसे ऐसा लगने लगा है कि आकाश कतई समझना नहीं चाह रहा है कि वह यहाँ एक पल भी और रहना नहीं चाहती। पिछली बार आकाश को डॉक्टर से काफी देर बातें करते देख कर एक क्षीण-सी आशा बंधी थी पर आगे कुछ नहीं हुआ। उसे लगने लगा है कि हो न हो सब एक साजिश में लगे हैं। आकाश उसके पास थोड़ी देर बैठे रहे। फिर थोड़ी देर में बाहर कॉरीडॉर में जा कर किसी से फ़ोन पर बातें करते रहे। अंदर आए और गालों पर हाथ फिराकर जल्दी आने की बात करके निकल गए।

उसके अपने लोग उसके खिलाफ लामबंद हो गए हैं। वैसे सब उसके बिना रह पा रहे हैं? जबकि वह उन सबके लिए इतनी बेचैन है। सब कहते हैं, यहाँ आकर उसे नया जीवन मिला है। पर वह क्या चाहती है कोई नहीं जानना चाहता। उसे ऐसा जीवन नहीं चाहिए। समझकर भी लोग अनजान बने रहना चाहते हैं। सारा कुछ सोचते-सोचते वह डाइनिंग हाल में चली आई, वैसे उसके लिए खाना उसके कमरे में ही आता है। कोने की एक टेबिल पर बैठकर आस-पास बैठे लोगों को देखकर थोड़ी तसल्ली हुई। पास ही तीसरी टेबिल पर बैठी हुई पंद्रह-सोलह साल की साँवली-सी लड़की के साथ उसकी माँ धीरे-धीरे बातें कर रही थी और लड़की बड़े ध्यान से बातें सुन रही थी। अचानक न जाने क्या हुआ कि लड़की ज़ोर-ज़ोर से हाथ-पाँव पटक कर रोने लगी। माँ के काबू से बाहर हो गई। आस-पास की टेबिल पर बैठे लोग चौकन्ने हो गए और कई एक सिस्टर्स दौड़कर आईं और डाइनिंग हाल में काम करने वाले कर्मचारियों की सहायता से लड़की को पकड़ कर बाहर ले गईं। उसकी माँ बहुत देर तक बैठी रोती रही, फिर बाहर चली गई। माहौल बड़ा उदास हो गया था।

उसका मन भी बहुत ख़राब हो गया। वह वहाँ से उठकर बाहर बरामदे में पड़ी बेंच पर आ बैठी। शाम का सिलेटी रंग आसमान पर छाने लगा था। थोड़े बादल भी घिर आए थे। चिड़ियों के झुंड बसेरे के लिए लौट रहे थे। शायद पानी बरसे। बरसात उसे बहुत अच्छी लगती है। सब कुछ धुला-धुला सा। काफी उमस हो गई थी। कमरे में जाने का मन नहीं कर रहा था। लग रहा था कि किसी से खूब बातें करे, जी खोल कर सब कुछ कह-सुन डाले। सिस्टर नीना अच्छी हैं कभी-कभी बात कर लेती हैं। पर इस तरफ़ उनकी ड्यूटी कम ही लगती है।

सिस्टर कामले से जब कभी अपनी बीमारी के बारे में कुछ पूछना चाहती है तो बिगड़ जाती हैं... ''डॉक्टर से बात करो... हमारा जान मत खाओ.... हमको और काम नहीं है क्या...?'' वैसे भी सिस्टर कामले बहुत खड़ूस है। तीन साल रिटायरमेंट के रह गए हैं.... बस समय काट रही हैं। उसका मन होता है ज़ोर से कह दे... ''जब काम नहीं होता तो घर बैठो...''

अक्सर सिस्टर नीना सुबह-सुबह गुलदस्ते में ताज़ा फूल लगा जाती हैं। आकाश को मालूम है कि उसे फूल बहुत पसंद हैं, पर कभी-कभी उसका मन करता कि गुलदस्ते में लगे फूलों की एक-एक पंखुरी नोच डाले और पीपल की मोटी-मोटी डालों को खुद अपने गले के इर्द-गिर्द कसकर लपेट ले, कसाव इतना बढ़ता जाए कि इस झूठी ज़िन्दगी से हमेशा के लिए छुटकारा मिल जाए। पर ऐसा कर नहीं पाती। इस तरफ़ कुल चार कमरे हैं। इस कोने के कमरे में वह अकेली है, हालाँकि उसका कमरा बहुत अच्छा और हवादार है। बाहर लगी रातरानी से हल्की खुशबू आती रहती है। पास के दो कमरे खाली हैं। अंतिम कमरे में बीस-बाइस साल की एक लड़की है, जो कम ही दिखाई देती है। बगल के कमरे में रहने वाली केतकी पटेल अभी चार दिन पहले घर चली गई हैं। वे थीं तो मन लगा रहता था। उनके दो बड़े-बड़े शादीशुदा लड़के दूसरे शहरों में रहते थे। बीच-बीच में मिलने आते थे। उनके पति विट्ठल पटेल ज़्यादातर अपनी पत्नी के पास बैठते, उसके कमरे में भी अक्सर दोनों आ जाते। शाम को बाहर पीपल के पेड़ के नीचे चबूतरे पर बैठकर गपशप करते या अख़बार पढ़ते। क्या करते वे घर पर बैठकर अकेले?

अस्पताल के दूसरी तरफ़ के हिस्से में जनरल वार्ड है जहाँ बीस बेड हैं। वहाँ से कभी-कभी चीखने-चिल्लाने और आपस में लड़ने-झगड़ने की आवाज़ें आती हैं। सिस्टर और आयाओं के गुस्सा करने की आवाज़ें अस्पताल के सन्नाटे को तोड़ती उसे अच्छी लगती हैं। मन होता है उसी वार्ड में रहे। अकेलापन उसे काटने दौड़ता है, जैसे इस तरफ़ पसरा सन्नाटा उसके भीतर तक समा गया है। दिन में दो बार डॉक्टर आते हैं और बीच-बीच में सिस्टर दवा देने और आया खाना देने आती है। सुबह छः बजे से अस्पताल का रूटीन शुरू हो जाता है। सब जैसे एक यंत्रचालित ड्यूटी कर रहे होते हैं। क्या सचमुच सबकी संवेदनाएँ मर गई हैं या फिर सब अपने-अपने में इतने व्यस्त हैं कि किसी दूसरे के लिए सोचने की फुर्सत नहीं है और एक वह है कि उसके पास दुनिया जहान का वक्त ही वक्त है।

उस दिन डॉक्टर मिश्रा ने हँसकर कहा भी था, ''मिसेज़ बागची आप बिल्कुल ठीक हैं, बस थोड़े दिन और... फिर आप घर जा सकेंगी।''

तब से वह उस दिन का इंतज़ार कर रही है। आकाश... हाँ आकाश को क्या हो गया है? वैसे वह अकेले मैनेज कर रहा है? मन के कोने में कहीं एक खटका भी है, कहीं कुछ... नहीं, नहीं... बिज़ी रहता है। क्या करे वह भी अकेला रह गया है। टूरिंग जॉब है, पिछली बार कई दिनों बाद आया तो बेहद थका और अनमयस्क-सा लग रहा था। काम का शायद बहुत ज़्यादा प्रेशर है। उसे अच्छा लगा कि इतनी व्यस्तता के बावजूद भी वह समय निकाल कर उससे मिलने आया। मन खिल गया। उसके लिए बहुत सारा सामान और सुंदर-सा गुलदस्ता भी लाया था। बहुत कुछ पूछना चाह रही थी पर फिर कुछ सोच कर रुक गई। आकाश थोड़ी देर बाद डॉक्टर से मिलने चला गया।

नंदिनी भी तो नहीं आई कब से? सब उसकी तरह खाली तो नहीं बैठे हैं! कितनी बदल गई है नंदिनी! चुपचाप रहने वाली उसकी वह सहेली कितनी बातें करने लगी है? अस्पताल में ही मुलाकात हुई थी कितने सालों के बाद। वह अपनी माँ को दिखाने आई थी। भारी डिप्रेशन से गुज़र रही थीं उसकी माँ। दो साल पहले पिताजी की मृत्यु के बाद बिल्कुल अकेली रह गई थीं। नंदिनी के साथ वह अमेरिका भी नहीं जाना चाहती थीं। इतने सालों बाद अचानक सामने नंदिनी को देखते ही बरसों पुरानी यादें ताज़ा हो आईं। उसकी सबसे अच्छी सहेली जिसने कभी शादी न करने की कसम खाई थी, फिर भुवन से शादी कर ऐसी उड़नछू हुई कि बरसों पता ही नहीं चला। बाद में किसी से ख़बर मिली कि विदेश में बस गई है। कह रही थी कि फिर आएगी और ढेर सारी बातें करेगी। पर एक महीना बीत गया दोबारा दिखी नहीं वह। क्या सब उससे दूर भाग रहे हैं...?

लग रहा है कि उसके भीतर कहीं कुछ तड़क रहा है। जब कभी कुछ ज़्यादा सोचने लगती है तो कमरा जैसे घूमने लगता है, आँखों के आगे अँधेरा घिरने लगता है। कानों में सीटियाँ बजने लगती हैं। शरीर ऐंठने लगता है, ऐसा महसूस होने लगता है कि उसके दिमाग की नसें फट जाएँगी। सिर पकड़ कर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने का मन करने लगता है। वह सिर पकड़ कर बिस्तर पर बैठी-बैठी आगे-पीछे झूल-सी रही है और अपने पर नियंत्रण पाने की कोशिश कर रही है। वह नहीं चाहती कि कोई सिस्टर उसे इस हालत में देख ले और आनन-फानन में उसे इंजेक्शन दे कर सुला दिया जाए और इतने दिनों के बाद भी उसकी तबियत ठीक नहीं है इसका चारों ओर एलान हो जाए।

शादी के बाद से अस्पतालों के चक्कर काटते-काटते सात साल बीत गए थे। सब कुछ ठीक था पर बार-बार दो-तीन महीने में ही गर्भपात हो जाता था। उसको लेकर आकाश और उसके बीच में मौन पसरने लगा था। इस विषय पर संवाद लगभग बंद ही हो गए थे। उन्हीं दिनों उसका ऐसा नर्वस ब्रेकडॉउन हुआ कि हफ्तों बाद सिडेटिव्स के सहारे सँभल पाई। डॉक्टरों का कहना था कि शारीरिक स्तर पर उसे कुछ नहीं हुआ है, सब नॉर्मल है। मानसिक तनाव के चलते गर्भ अधिक दिनों तक ठहर नहीं पाता। उसे इस विषय में ज़्यादा नहीं सोचना चाहिए, सब ठीक-ठाक होगा। और सचमुच एक साल बाद सुमी का जन्म हुआ। सुमी के गर्भ में आने के बाद से वह पूरे समय लगभग बिस्तर पर ही थी। बहुत एहतियात बरती। सब लोग कितने खुश थे, आकाश तो मानों सातवें आसमान पर था।

याद करने की कोशिश कर रही है वह वाक्या जब उस रात पहली बार उसे दौरा पड़ा था। घर में ही आयोजित पार्टी में उस

रात सुमी को लेकर कुछ बात हो रही थी कि मिसेज़ बग्गा ने अचानक सुमी को गोद में लेना चाहा तो उसने नन्हीं सुमी को इतनी ज़ोर से सीने से चिपटा लिया कि वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। न जाने उसे ऐसा क्यों लगा कि सब उससे उसकी सुमी को छीन रहे हैं। वह उसे ज़ोर से सीने में भींच कर कोने में दुबकी जा रही थी। जितना आकाश सुमी को छुड़ाने की कोशिश करते वह उतनी ही ज़ोर से उसे जकड़े जा रही थी। सुमी का रोना इतना बढ़ गया था कि किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए, तभी उसका सारा शरीर ऐंठने लगा। वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी, उसका सिर फटने लगा और जैसे ही उसने अपना सिर पकड़ने के लिए हाथ ऊपर किया, सुमी उसके हाथों से फिसल कर ज़मीन पर गिर पड़ी और वह बेहोश हो गई।

आँख खुली तो वह अस्पताल में थी। उसने सुना डॉक्टर कह रहे थे, अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। पूरी जाँच करनी पड़ेगी, सी टी स्कैन करना पड़ेगा। कुछ दिनों अस्पताल में रहना पड़ेगा... आदि, आदि। गनीमत थी कि सुमी को ज़रा-सी खरोंच भी नहीं आई थी। पर सब लोग सकते में थे। काफी दिनों से सब कुछ सामान्य था। अचानक ऐसा क्यों और कैसे हुआ? और बस तब से बीच-बीच में अक्सर उसे ऐसे दौरे पड़ने लगे हैं।

हालाँकि शारीरिक रूप से वह पूरी तरह स्वस्थ है, पर बच्ची को अभी उसके साथ नहीं रखा जा सकता, ऐसा डॉक्टरों का कहना है। उसका मन करता है कि ज़ोर-ज़ोर से चीख कर बताए कि बच्ची के बिना तो वह बिल्कुल टूट जाएगी। उसकी बीमारी का कारण कोई क्यों नहीं समझता? वह चाहती है कोई सुमी के पास उसे ले जाए। एक-दो बार शुरू में आकाश सुमी को अस्पताल लेकर आए भी। बाद में आकाश ने बताया कि सबने मिलकर निर्णय लिया और वे सुमी को नानी के पास देहरादून छोड़ आए हैं। यहाँ अब कौन उसकी देखभाल करता? उसे तो मालूम ही है कि अक्सर आकाश को टूर पर जाना होता है और आकाश के माता-पिता अपने बड़े लड़के के पास आस्ट्रेलिया में हैं। वैसे भी इस उम्र में आकाश की माँ की तबियत अब ठीक नहीं रहती। माँ-पिता जी एक-दूसरे को सँभाल लें यही काफी है। छोटी बच्ची को सँभालना उनके लिए असंभव ही है। दोनों थोड़े समय के लिए आए ज़रूर थे पर वापस चले गए। बीच-बीच में आकाश देहरादून हो आता है। वह नानी से अच्छी तरह हिल गई है। आकाश के यह बताने पर कि सुमी कुछ दिनों बाद नर्सरी में जाने लगेगी, मन खिल उठा। लगा उड़कर सुमी के पास पहुँच जाए। माँ भी लंबे समय के लिए पुश्तैनी मकान अकेला छोड़कर यहाँ नहीं आ सकतीं।

इधर कुछ दिनों से वह यहाँ से भाग जाने की योजनाएँ बनाने लगी है, जबसे उसने सुना है कि अभी थोड़े दिनों उसे यहाँ और रहना पड़ेगा... बहुत हो गया, अब और नहीं। उसे लगता है कि वह पूर्ण रूप से स्वस्थ है, उसे कुछ नहीं हुआ है, बल्कि अगर कुछ दिन और यहाँ रहेगी तो ज़रूर पूरी तरह पागल हो जाएगी। उसे तो सभी मरीज़ स्वस्थ ही दिखाई देते हैं। मानसिक तनाव या और किसी तरह का तनाव ऊपर से तो दिखता नहीं। उसका बार-बार मन होता है कि ज़ोर-ज़ोर से इतना चीखे कि दीवारें ढह जाएँ। कहीं कोई रोक-टोक न हो। हालाँकि उसका घर अस्पताल से बहुत दूर नहीं है, फिर भी कितना समय लग रहा है वहाँ पहुँचने में?

कभी-कभी सोचती है कि रात के अँधेरे में भाग जाए यहाँ से। उसे लगता है कि सब लोग ज़बरदस्ती उसे यहाँ रखना चाहते हैं। रात में जब सब लोग सो जाएँगे तब भाग ही जाएगी वह अस्पताल की दीवार लाँघकर। पर शायद वह बहुत कल्पनाशील होती जा रही है। क्या ऐसा हो सकता है? इतना सोचने मात्र से ही उसके दिमाग में साँय-साँय होने लगी। हाथ-पाँव ठंडे होने लगे। दिल तेज़ी से धड़कने लगा। ऐसा महसूस हो रहा है कि अभी गिर पड़ेगी। आसपास का सब घूमने लगा। वह घबराकर बिस्तर पर बैठ गई। तभी किसी ने कमरे का दरवाज़ा खोला। चौंककर देखा सिस्टर दवा लेकर आई हैं। उसने तुरंत अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया, लगा सिस्टर कहीं उसके चेहरे को पढ़कर उसका इरादा न भाँप ले और उसकी योजना धरी की धरी रह जाए। सिस्टर ने दवा मेज़ पर रखी और खाना खाने के बाद गोली लेने की हिदायत दे कर चली गईं। उसने राहत की साँस ली।

उसे स्वयं पर आश्चर्य हो रहा है कि आज उसने सिस्टर से दवा न लेने की हुज्जत क्यों नहीं की! ऐसा बहुत कम होता है। दो सालों से यहाँ रहते-रहते चिड़चिड़ाहट उसकी नस-नस में समा गई है। रोज़ किसी न किसी बात पर कहा-सुनी हो जाती है। सभी सिस्टर्स भी उससे उलझते-उलझते तंग आ गई हैं। सोच रही है आज ही बारह बजे के बाद रात के सन्नाटे में जब सब तरफ शांति रहती है वह भाग जाएगी। घड़ी पर निगाह पड़ी देखा कि अभी तो शाम के सात ही बजे हैं अभी तो बहुत समय बाकी है। खाना भी जल्दी आ गया है। उसने खा भी लिया। मौसी खाली बर्तन भी ले गई है। इंतज़ार में वक्त और भी लंबा हो जाता है। थोड़ी नींद आ जाए तो अच्छा है, पर उत्तेजना में नींद भी नहीं आ रही। कमरे में छाए सन्नाटे में मेज़ पर रखी घड़ी की टिक-टिक उसके दिल की धड़कन की तरह ही काफी तेज़ सुनाई दे रही है।

समय काटे नहीं कट रहा है, उसे लग रहा है कि अवश्य उसकी घबराहट उसके चेहरे पर भी दिख रही होगी! अगर सिस्टर फिर आ गईं तो उसके हावभाव से उसकी चोरी कहीं पकड़ी न जाए। बिस्तर पर पड़े-पड़े तमाम बातें सोचते-सोचते उसकी आँख लग गई। कुछ देर बाद हड़बड़ाकर आँख खुली तो ग्यारह बजे थे। एक बार चारों ओर नज़र दौड़ाई। सब तरफ इतना सन्नाटा छाया था कि अपनी साँस लेने की आवाज़ भी सुनाई दे रही थी। कॉरीडार में पीले से नाइट बल्ब की मध्यम रोशनी थी। हाँ, सामने के वार्ड से सिस्टर्स की बातें करने की आवाज़ें आ रही थीं। वार्ड का दरवाज़ा भी खुला था। अपने कमरे से निकलकर दीवार से चिपक कर बिना हिले-डुले वह काफी देर तक खड़ी रहकर आहट लेती रही। थोड़ा आगे बढ़ी तो घना अँधेरा था। शायद उस जगह का बल्ब खराब हो गया था। एक तरह से अच्छा ही हुआ। जब उसकी आँखें अंधेरे

की कुछ अभ्यस्त हुईं तो एकबारगी मन हुआ कि वापस पलटकर कमरे में पहुँच जाए। उसने कदम बढ़ाए भी कमरे की तरफ कि सहसा एक सरसराहट-सी गुज़र गई पास से। अचकचा कर मुड़ी तो देखा बिल्ली थी। पल भर को उसका शरीर सुन्न पड़ गया। किसी तरह सँभाला अपने आपको। साँसें संभलीं तो जान में जान आई। अपने अंतर्द्वंद्व पर काबू पाने की कोशिश की। उसे मालूम है कि उसकी इस हरकत का और उल्टा असर हो सकता है। दूर से उसे गेट दिख रहा है। गेट बंद था और वाचमैन के केबिन की लाइट दूर तक पसरी हुई थी। कोई ज़्यादा हलचल नहीं थी। लगता है वाचमैन की आँख लग गई है। केबिन के दूसरी ओर वाले हिस्से में ज़रूर अँधेरा था। वैसे चारदीवारी बहुत ऊँची भी नहीं थी। चारदीवारी से लगी हुई क्यारियों में लगे हुए पौधों की काली छायाएँ लॉन पर पड़ रही थीं।

मंज़िल बहुत दूर नहीं थी। पर न जाने क्या हो रहा है! मनो बोझ से पैर बोझिल हो गए हैं। वहाँ से अंदाज़ा लगा रही थी कि दीवार के उस पार ही तो है सब कुछ। चहल-पहल, घर संसार, आनंद और सकून... क्या कर रही है वह यहाँ ? वहाँ पहुँचेगी तो सब पहले जैसा ठीक ही हो जाएगा। उसे लग रहा है कि अगर वह पूरी ताकत से एक छलांग लगाएगी तो दीवार के उस पार होगी। पर पैर बिल्कुल उठ नहीं रहे हैं। आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है... और यह क्या? एकाएक दीवार कैसे इतनी ऊँची हो गई? वह पूरी ताकत लगा रही है, साँसें तेज़ हो गई हैं पसीना आ रहा है। फिर न जाने कैसे वह नीचे गिर पड़ी। पता नहीं दीवार के इस पार थी या उस पार!

अशक्त-सी उसने उठने की कोशिश की। देखा तो वह अब भी दीवार के इस पार ही थी। गेट पर उसी तरह से लाइट जल रही थी। वह चुपचाप उठी और अस्पताल के अपने कमरे की तरफ बढ़ गई। कितनी देर बिस्तर पर पड़े-पड़े पूरे घटनाक्रम को बार-बार जीती रही। घड़ी देखी तो केवल साढ़े बारह बजे थे। सब कुछ वैसा ही था, फिर भी बहुत कुछ बदल गया था।

***

लघु कथा

डिस्चार्ज

मार्टिन जॉन

उसने चिट्ठी लिखी। लिफ़ाफ़े में भरी और टेबुल पर रखकर पोस्ट ऑफिस जाने की तैयारी करने लगा। चिट्ठी के बगल में ही मोबाइल आराम फरमा रहा था। उसे देखते ही उसके होठों पर एक कुटील मुस्कान तैर गई, 'हेलो, अभी तक ज़िंदा हो ?' उसने तंज़ कसा।

'क़यामत तक ज़िंदा रहूँगी !'

'यह भी कोई जीना !.....कछुए की तरह !....वन जी से भी कम स्पीड !'

'आख़िर में कछुए की ही जीत हुई थी।'

'हाऊ बोरिंग स्टोरी !....आउट ऑफ़ डेटेड !....मुझे देखो, फोरजी स्पीड !...ग्लोरियस लाइफ़ !'

'दूसरे के दम पर !'

'सो व्हाट ?....इसी दम पर तुम्हारे साथियों को कब्रिस्तान पहुँचा चुका हूँ.....अब तेरी बारी है।'

'मुझे नेस्तनाबूत करने का ख़्वाब मत देखो। जब तक तुम में ऊर्जा है, खूब बोलियाँ निकलेंगी, दुनिया तेरी मुट्ठियों में रहेगी .....उसके बाद टाय- टाय फिस्स !'

'फ़ास्ट कम्युनिकेशन के ज़माने में जो प्रोग्रेस चाहता है वह ऊर्जा से प्यार करता है।....तरक्की और ऊर्जा में गहरा रिश्ता है।'

'कोई भी रिश्ता दिल का रिश्ता से बड़ा नहीं होता।'

'व्हाट दिल विल ?...जेट युग में इसे कौन पूछता है !'

'तुम क्या जानो दिल की अहमियत !....दिल की बदौलत दुनिया बदसूरत होने से बची हुई है।.....तुम तो बगैर रूह वाला जिस्म हो।'

'फिर भी ज़माना इस जिस्म का दीवाना है।'

'इस दीवानगी में ज़ज्बात की कोई जगह नहीं .....संवेदना का कोई मोल नहीं ....टोटली मेकनाइज़्ड रिलेशन !'

'और तुम्हारा रिलेशन?'

'मुझे नाज़ है सदियों पुराने रिश्ते पर.....मेरे हर हर्फ़ में रूह बसती है.....हर लफ़्ज में संजीदगी, पूरे वजूद में अपनेपन के एहसास की ख़ुशबू....दिल की गहराई तक उतरने वाला अल्फाज़ !'

इसी बीच मोबाइल के जिस्म से अजीब तरह की 'टूई-टूई' आवाज़ आने लगी। इससे बेख़बर चिट्ठी अपने प्रवाह में बहती रही, '...मेरे स्पर्श से ही जिस्म के रेशे-रेशे में जल-तरंग बजने लगता है, जिसकी स्वर-लहरियाँ घर -आँगन को मौसिकी से भर देती है...चिट्ठी लिखने वाला और पढ़नेवाला पूरी शिद्दत से गुफ़्तगू करने लगते हैं .....दोनों आंतरिकता की महक से सराबोर हो जाते हैं .....दूरियाँ आँसू बहाने लगती हैं ....नज़दीकियाँ मुस्कराने लगती हैं...।'

पुन: मोबाइल के जिस्म से पहली वाली आवाज़ आने लगी, 'क्यों भाई, तुम्हारी ज़ुबान को क्या हो गया .....लगता ज़वाब देते नहीं बन पा रहा है। इसलिए तुम्हारी ज़ुबान लड़खड़ा रही है। मुझे मालूम है, सच्चाई का सामना करने की कूवत तुझमें नहीं है।'

मोबाइल लाजवाब हो गया।

उसकी ख़ामोशी चिट्ठी को अखरने लगी.....

प्रत्युत्तर न पाकर उसने थोड़ा उचक कर झाँका, 'अरे यह तो बेजान हो गया !'

***

संपर्क: अपर बेनियासोल, पोस्ट- आद्रा, जिला- पुरुलिया, पश्चिम बंगाल- 723121, मो. 09800940477

email : martin29john@gmail.com

लौट आओ.....

दीनदयाल नैनपुरिया

पूरब से आज पुरवा बह रही थी, जो अनुराग का वतन वापसी से पहले ही स्वागत कर रही थी। आज छह साल बाद वह वापस देश लौट रहा था। अपने वतन से दूर रहने के बाद भी वह कभी एक पल के लिए उसे भुला नहीं पाया था। उसकी आँखों में देश लौटने की उत्सुकता झलक रही थी। जी तो चाह रहा था कि वह एक पल में देश की सरजमीं पर कदम रखकर उसे चूम लें। वह दीदार कर लेना चाहता था अपने देश, अपने गाँव का। अपनी माँ को हृदय से लगाने को उसका मन आतुर था। पर विमान की उड़ान समय की बाध्यता से बंधी थी। वह मजबूर था इंतज़ार करने को। पर यह प्रतीक्षा भी रह-रह कर उसके मन में मीठी-सी चुभन दे रही थी। वह बार-बार अपने अतीत में चक्कर लगा रहा था। यादें उसके दिमाग में भ्रमण कर रही थीं, हिलोरे मार रही थीं।

विमान के उड़ान भरने के बाद वह देर तक लंदन की धरती को ताकता रहा। मन ही मन याचना करने लगा कि अब यहाँ दोबारा लौट कर नहीं आऊँगा। मैं तो आना भी नहीं चाहता था। पर परिवार के दबाव के कारण आना पड़ा। और आज उनको मेरी भावनाओं का अहसास होने के बाद वापस लौट रहा हूँ। पर मेरी भावनाओं को समझने में इतना वक्त क्यूँ लग गया।

आईआईटी से उत्तीर्ण होने के बाद उसके पास कई बड़ी-बड़ी कम्पनियों से अच्छा पैकेज देने के ऑफर आए थे, उसमें विदेशी कम्पनियाँ भी शामिल थीं, जो अपने मुल्क बुला रही थीं। उसके घरवाले बहुत खुश थे। उसके माता-पिता ने बेटे को विदेश भेजने का फैसला पहले ही कर लिया था ताकि गाँव और रिश्तेदारों के बीच सीना फुला कर बात कर सके। बेटे की कामयाबी के किस्से तो वे आस-पड़ोस और सगे-संबंधियों में सुनाने लगे थे। इन बातों से अनुराग अपने आपको असहज महसूस करता था। पर माता-पिता का वह विरोध भी नहीं कर सकता था; क्योंकि उसने बचपन से ही उनका बेहद आदर-सम्मान किया है, उसे वैसे ही संस्कार मिले थे।

एक बार वह माता-पिता से ज़रूर अड़ गया था, जब उसने शादी की बात पर अपने प्यार के बारे में जिक्र किया। पर माता-पिता नहीं माने। वे गैर-बिरादरी में शादी करके अपनी मान-मर्यादा को समाज के सामने कलंकित नहीं होने देना चाहते थे। गुस्से में आकर उसने भी कभी शादी नहीं करने का फैसला कर लिया था। पर उसके माता-पिता ने भी अपना दिल कठोर बना लिया। वे बेटे के आगे झुके नहीं।

बड़ी-बड़ी कम्पनियों से ऑफर आने के बाद हर कोई उसके परिवार से मधुर संबंध बनाने को आतुर था। बधाइयाँ देने वालों की बाढ़ आ गई थी, कभी कोई रिश्तेदार आता और कभी कोई। घर में रोज़ाना कोई न कोई अच्छा पकवान बनाया जाता, आने वालों को भी चाय-नाश्ते का अच्छा प्रबंध किया जाता। वह सिर झुकाए सबकी बातें सुना करता। पर एक भी किस्सा किसी को अपनी कामयाबी का नहीं सुनाता था। घर से निकलते ही लोग उसके परिवार को घमंड आने की चर्चा शुरू कर देते थे।

दीनदयाल नैनपुरिया विगत तेरह वर्षों से पत्रकारिता के पेशे से जुड़े हैं। वर्तमान में दैनिक राष्ट्रीय समाचार-पत्र राजस्थान पत्रिका में कार्यरत हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं।

संपर्क:
2711, चौकड़ी तोपखाना हजूरी, कोठी कोलियान, छावनी वालों का टीबा,
जयपुर-302003 राजस्थान
मोबाइल: 0950927386
ईमेल :deendayal.koli@gmail.com

अनुराग ने कहा, 'मैं विदेश जाकर करूँगा क्या? यहाँ रहूँगा आप सबके पास तो मन भी सदैव लगा रहेगा।'

'तुझे जो कामयाबी मिली है वह आज तक यहाँ पर किसी को नहीं मिली। घर का कितना नाम हो गया है। विदेश जाएगा तो घर की इज़्ज़त और बढ़ जाएगी।' पिता ने समझाते हुए उससे कहा।

'पर जो काम वहाँ करने जाऊँगा, वह यहाँ पर भी तो कर सकता हूँ।'

'वहाँ से कितना बड़ा ऑफर आया है, उसे ठोकर मत मार।'

'आप मेरी बात का गलत अर्थ निकाल रहे हैं। मैं अपने वतन के लिए ही काम करना चाहता हूँ। एक बार वहाँ गया तो फिर वहीं का होकर रह जाऊँगा फिर देश के लिए कुछ नहीं कर पाऊँगा।'

'वहाँ पर काम करेगा तो देश का भी नाम रोशन होगा।'

आप सच कह रहे हैं, पर मेरा इस मिट्टी से गहरा जुड़ाव है।'

'आईआईटी में पढऩे के बाद भी क्या तू खेतीबाड़ी ही करेगा। नहीं बेटा, यह हम जैसों का काम हैं।'

'मैंने यह पढ़ाई अपने देश के लिए की है, किसी और मुल्क के लिए नहीं। मेरी अर्हता मेरे देश के काम आए, किसी और के नहीं।'

'तुम इस वक्त भावनाओं में बह रहे हो। मैं नहीं चाहता कि बाद में तुम पछताओ। इसलिए तुझे जाना ही होगा।'

'वहाँ की आबोहवा मेरा सुख-चैन छीन लेगी माँ।'

पास ही खड़ी उसकी माँ फफक पड़ी। आँसू पोंछते हुए कहा, 'बेटा पिता की बात मान लें हम लोगों ने यहाँ पर रह कर क्या कुछ बड़ा काम कर लिया। तुझे तो अवसर मिला है। उसे जाया मत कर।'

पिता ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, 'विदेश में रहेगा तो एक दिन हम भी वहाँ घूम लेंगे।'

पिता की बात से वह रुआँसा हो गया। पिता ने उसे सीने से लगा लिया। दूर खड़ी उसकी छोटी बहन उन सबकी बातें सुन कर मन ही मन दुखी हो रही थी। अनुराग इशारा कर बहन को अपनी तरफ बुलाता है तो वह दबे-दबे कदमों से आती हैं और भाई के लिपट कर कहा, 'तुम विदेश चले गए तो मैं राखी कैसे बाँधूँगी। क्या हम सब साथ नहीं चल सकते?'

'रानो बेटा कैसी बात करती है।' पिता ने टोकते हुए कहा। 'पहले उसे वहाँ जाकर पैर जमाने दें। रहने का बंदोबस्त करने दें। फिर चलेंगे।'

'मैं भैया के बिना नहीं रह सकती।'

'हाँ, ज़रूर चलेंगे मेरी रानो बेटा।'

रानो खुश होते हुए अपने कमरे में चली गईं तब उसके पिता ने कहा, 'यह पगली नहीं जानती जब कल इसकी शादी होगी तो क्या वहाँ भी भाई को साथ लेकर जाएगी।'

'बहुत प्यार करती हैं भाई से।' माँ ने जवाब दिया।

अनुराग को लगा जैसे इस देश के साथ उसका रिश्ता खत्म हो जाएगा। वह उन सबसे दूर हो जाएगा, जिन्होंने हर कदम पर उसका साथ दिया है। चाहे वह अच्छी रही हो या बुरी। शरारतें रही हों या हँसी ठिठोली। उसका मन उदास हो चला। पूरा आषाढ़ मास वह गाँव में ही बिताता था। कभी छुट्टियाँ होती थीं कॉलेज की तो तुरंत गाँव की तरफ कूच कर जाता था। आषाढ़ की पहली बारिश में दोस्तों के साथ मस्ती करता था। खेतों में पानी भर जाता तो उनमें कागज़ की नाव बनाकर छोड़ा करते, उसकी बहन भी उसका साथ देती थी।

एक बार रानो को साँप ने काट लिया था तब उसने गाँव के हर धार्मिक स्थल पर अरदास लगाई थी। उपवास किए थे। रात-दिन उसकी सेवा की थी तब जाकर रानो स्वस्थ हुई थी।

रानो ने कहा, 'हर जनम में मुझे भगवान् तेरी ही बहन बनाकर भेजे।' और वह मज़ाक में कहता तो हर जनम में क्या मुझे तेरी ऐसे ही सेवा करनी पड़ेगी। ना बा ना...। रानो उसकी आँखों का तारा थी। कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने के बाद जब अनुराग घर आया तब एक दिन वह पनघट पर रानो को साथ ले गया। क्योंकि वह विद्या को चाहने लगा था और वह रानो से अपना प्रेम संदेश भिजवाना चाहता था। विद्या हर रोज़ पनघट पर पानी भरने आती थी। रानो ने यह काम करने से मना करते हुए कहा, 'भैया प्रेम तुम करते हो तो फिर डरते क्यों हो, जाकर कहो।'

रानो की बात मानकर उसने विद्या से प्रेम का इज़हार किया तो उसके हाथ से बर्तन छूट गया। विद्या ने कहा, 'मैं तो तुम्हें बचपन से चाहती हूँ। बस कह न सकी।' और वह शरमा कर वहाँ से भाग गई।

रानो ने पहले ही कह दिया था कि विद्या गैर-बिरदारी की है, पिताजी कबूल नहीं करेंगे।

'रानो, पर शादी मुझे करनी है तो पिताजी को क्या हर्ज होगा। क्या तुम मेरा साथ नहीं दोगी।'

'हमेशा।' रानो ने यह कहकर उसका मनोबल बढ़ा दिया था।

रानो की ज़िद के कारण उसके पिता ने उसे बहलाने के लिए ही 'हाँ' कर दी थी। यह कोई उससे वादा नहीं था। वह यह मान बैठी कि वह भी भाई के साथ विदेश में रहेगी। वह समझे या नहीं, पर अनुराग सब जानता था। कुछ देर बाद ही उसने रानो के कमरे में जाकर कहा, 'क्या सचमुच ही विदेश चलेगी।'

'क्या तुम नहीं चाहते। मुझे विदेश की सैर करना।'

'तेरे लिए तो मैं सबकुछ कर सकता हूँ।' यह कहकर वह कुछ क्षण के लिए शांत हो गया। फिर कहा, 'पर मेरा जी वहाँ नहीं लगेगा।'

'क्यों नहीं लगेगा।'

'रानो, जो बात यहाँ की मिट्टी में है यह वहाँ नहीं मिलेगी। मैं यहीं पर कुछ करना चाहता हूँ।'

'यह भी सही है। तुमको विदेश जाना ही नहीं चाहिए। यही तो मैं कहती हूँ। तुम इतने काबिल हो कि कुछ भी अभिनव प्रयोग कर सकते हो।'

अनुराग मन ही मन सोचने लगा कि काश! यह बात रानो की जगह पिताजी ने कही होती। वे मेरी भावना को क्यों नहीं समझ पा रहे हैं।

'रानो ऐसी कौनसी बात है, जो पिताजी विदेश की रट लगाए हुए हैं।'

'शाम को पिताजी बाहर घूमने के लिए निकलते हैं तो हर किसी से यही बात कहते रहते हैं कि मेरा बेटा विदेश जा रहा है। अब वहीं पर नौकरी करेगा।' यह सुनकर सब बगले झाँकने लगते हैं। 'क्योंकि बुरे वक्त में उन्होंने पिताजी को नीचा दिखाया था। यह तो तुम जानते ही हो।'

'हाँ।' अनुराग ने लंबी साँस लेकर कहा।

रानो उसके कंधे पर हाथ डालकर लिपट गई तब अनुराग ने उससे पूछा, 'अगर तुम मेरी जगह होती तो क्या करती।'

'एक बार ज़रूर जाती विदेश।'

रानो की बातें सुनकर वह असमंजस में पड़ गया। आख़िर उसने दृढ़संकल्प कर लिया, वह विदेश ज़रूर जाएगा। माता-पिता का मान रखने के लिए ही सही। चाहे फिर उसे कितना ही कुछ क्यों न गँवाना पड़े। और सबकी खुशी के लिए वह लंदन चला गया।

पाँच साल गुज़र गए थे उसे लंदन में। उसके पास आज सब कुछ था। पर खुशी से वह हज़ारों मील दूर था। पाँच साल में भी वह लंदन की आबोहवा में नहीं ढल पाया। एक साधारण सा जीवन जी रहा था। काम के प्रति समर्पित होने के कारण कम्पनी उसे प्रमोशन देती रही समय-समय पर। इस बीच एक बार भी वह अपने वतन लौट कर नहीं गया। लंदन में आने के एक साल बाद ही विद्या की शादी हो गई थी। यह बात उसे रानो ने बताई थी। रानो ने रोकने की बहुत कोशिश भी की थी, पर अपने परिवार का समर्थन नहीं मिलने कारण वह भी हार गई थी। फिर विद्या के परिवार ने भी उसकी बात नहीं मानी। और विद्या हालात से मजबूर थी। विद्या ने रानो से कहा था, 'जिस तरह तुम अपने घर की लाड़ली हो, वैसे ही मैं भी अपने बाबूल की प्यारी लाडो हूँ। मैं उन्हें दुखी नहीं कर सकती।'

रानो ने एक-एक बात का जिक्र किया था अनुराग से फ़ोन पर, उसकी आँखें डबडबा गई थीं। रानो ने पूछा, 'वापस कब आ रहे हो भैया।'

अनुराग के मुँह से एक बोल भी नहीं फूटा, जैसे उसके कंठ को किसी ने जकड़ लिया था। वह स्तब्ध खड़ा था। वह भाव शून्य हो गया। फ़ोन पर आवाज़ आ रही थी, 'तुम कब वापस...।'

काफी देर बाद उसने कहा, 'पता नहीं।' उसके शब्दों में दर्द झलक रहा था। रानो समझ गई कि वे इस घटना से टूट गए हैं। ऐसी हालात में तस्कीन देने वाला भी कोई नहीं उसके पास।

इसके बाद अनुराग ने घर पर बात करना बहुत कम कर दिया। रानो से ही होती थी कभी-कभार। अनुराग के मन में देश के लिए कुछ करने की जज़्बा था। उसके सपने दिल में ही कब्र का रूप लेने लगे थे। मन जब भी बहुत उदास हो जाता तब एक पोटली में लपेट कर लाई गई वतन की मिट्टी की सौंधी महक से आनंद की अनुभूति महसूस करता। कई बार यादों में वतन लौट जाता। पर जब होश आता तब पहले से कहीं अधिक उदास हो जाता। उसकी अंतरआत्मा कह रही थी कि वतन लौट जा। पर वह बेबस था अपनी ही काबिलियत के कारण। उसे लगता कि मेरी योग्यता ने ही मुझे मेरे अपनों से अलग कर दिया। जो लोग विदेशों में आना चाहते हैं, वे नहीं आ पाते और जो वही सेवा करना चाहते हैं वे आने को मजबूर होते हैं। यह कैसी नियति है ईश्वर की।

'कभी अगर घर पर आ भी गया तो सिर्फ अतिथियों सा ही व्यवहार होगा मेरे साथ। बेटे की तरह प्यार-दुलार-स्नेह नहीं मिलेगा। क्योंकि माता-पिता तो यह भूल गए हैं कि मैं उनका बेटा हूँ। कभी फ़ोन पर बात भी होती है तो मेरे काम, मेरे स्वास्थ्य, खाने के लिए ही पूछते हैं। कभी यह नहीं पछूते कि मैं यहाँ खुश हूँ या नहीं। नहीं है तो लौट आ। क्योंकि उनको मेरी खुशी से कोई मतलब ही नहीं है। बस वे दिखावे में ही जीना चाहते हैं।'

भाई की यह बात रानो के दिल तक इस कदर चोट कर गई कि उसने पिता से लंदन जाने की ज़िद पकड़ ली। ताकि भाई का दर्द बाँट सके। उसे दिलासा दे सके।

एक दिन फ़ोन पर रानो ने यह कहकर उसे चौंका दिया कि वह माँ और पिताजी के साथ लंदन आ रही है। अनुराग ने बातों ही बातों में उसे नहीं आने के लिए कहता रहा, लेकिन उसने एक नहीं सुनी। मजबूरवश अनुराग को उनके स्वागत की तैयारियाँ करनी पड़ीं। ज़रूरत का सारा सामान उसने खरीद लिया था। कई चीज़ें छूट भी गई जिससे वह अनजान था। मगर रानो की ज़रूरत की सभी चीज़ों का उसने विशेष ध्यान रखा।

एयरपोर्ट पर उनको लेने गया तो माता-पिता के चरण स्पर्श करने पर उनको यह तो अहसास हो गया कि वह आज भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति से जुड़ा हुआ है। वरना, लोग पाश्चात्य संस्कृति में बहुत जल्द रच बस जाते हैं। यह देख वे बेहद खुश थे और उसे अपने जीवनभर की कमाई पूँजी समझने लगे। सामने बहन रानो को पाकर उसका रोम-रोम खिल गया। रानो झट से उसके गले लग गई। दोनों की आँखें आँसुओं से नम हो गईं।

रानो ने सिसकते हुए कहा, 'अब मुझे अकेली छोड़कर कभी मत जाना।'

'अगर पिताजी ज़िद न करते तो कभी नहीं आता।'

'फिर चले क्यों नहीं आए सब कुछ छोड़कर।'

'पिताजी समझते हैं कि मैं ज़िम्मेदारियों से भाग रहा हूँ। बाहरी वातावरण से डर रहा हूँ।'

वह भाई को कातर नेत्रों से देख रही थी। फिर से भाई की स्निग्धता पाकर उसे अमरत्व का अहसास होने लगा।

'अनुराग हमने सोचा है कुछ दिन यहाँ तुम्हारे ही साथ रहे।' घर में प्रवेश करते हुए उसके पिता ने कहा।

'मैं भी हमेशा माता-पिता की ही छत्रछाया में रहना चाहता हूँ।'

उसके पिता आँख में कुछ गिरने का बहाना बनाकर आँखें मलने लगे। पर उनकी पत्नी यह समझ गई थी कि बेटे की बात सुनकर उनके आँसू छलक आए हैं। फिर भी अपनी ही बात पर अड़े हुए हैं, लेकिन बेटे के आगे झुकने को तैयार नहीं है।

बेटे के दूर चले जाने के कारण माँ का दिल पिघल गया था। उसे पति का साथ देने पर अपनी गलती का अहसास हो गया था।

कोई भी माँ अपने लाल को आँखों से दूर नहीं करती है, पर वह स्वार्थपूर्ण यह कर्म कर बैठी थी।

उसने बेटे के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'बेटा, उस वक्त मैं तेरा साथ नहीं दे पाई। इस बात का अहसास मुझे धीरे-धीरे होने लगा था कि तू सही था।'

'माँ खुद को ज़िम्मेदार मत ठहराओ। यह सब हालात के कारण हुआ था।' यह बोल वह बरसों बाद माँ की गोद में सिर रखकर सो गया। माँ-बेटे के दिल को सुकून मिलने लगा था।

परिवार के साथ लंदन में रहते हुए उसे तीन माह गुज़र गए थे। एक दिन पिता ने वापस लौटने की बात कही तो जैसे उसका संसार उजड़ गया। अनुराग प्रस्तर सा खड़ा रहा। क्या उसे फिर अकेले ही जीवन व्यतीत करना पड़ेगा, इन गोरों के बीच। क्या उसकी दिनचर्या फिर बेरंग-बेनूर हो जाएगी। उसकी तमाम खुशियाँ रानो फिर उससे दूर हो जाएगी। वह कैसे जी पाएगा! या फिर इस बार एकाकीपन में उसके प्राण ही निकल जाएँगे। तमाम विचारों ने उसे बंधक बना लिया था।

'रानो के लिए कुछ जगह से रिश्ते की बात आई है।'

'पर अभी तो उसकी पढ़ाई के दिन है।'

'अभी से देखना शुरू करेंगे तब कोई अच्छा रिश्ता नज़र में आएगा।'

'एक गुजारिश है उसके सपनों की बलि मत चढ़ाना। वह जो चाहे उसे करने देना। वह बहुत होशियार है, बहुत समझदार है। अपने भले-बुरे की परख है उसे। मुझसे भी कहीं ज़्यादा। उसका दुःख मैं कभी सहन नहीं कर पाऊँगा।' बोलते हुए अनुराग का गला रूंध गया था। और वह कमरे से बाहर निकल आया। रानो हॉल में बैठी थी, उसे वापस लौटने की खुशी थी, मगर भाई से बिछड़ने का गम भी। उसने कहा, 'तुम भी साथ चलो भैया। यहाँ अकेले क्या करोगे। जितना कमाना था बस कमा लिया।'

'काश! यह बात पिताजी कहते।'

उनके जाने की सभी तैयारियाँ पूरी हो गई थीं। जितनी खुशी उसे एयरपोर्ट पर उन्हें लेने जाने वक्त हुई थी उससे कई गुना ज़्यादा दुःख उनके लौटते वक्त हो रहा था। वह बार-बार पिताजी के मुँह की तरफ देखकर मन ही मन कह रहा था, 'पिताजी मुझे भी वापस ले चलो। मैं यहाँ नहीं रह सकता। मुझे अपने देश का कर्ज़ चुकाना है। उसने मुझे बहुत कुछ दिया है, अब मुझे उसे देने की बारी है। क्यूँ नहीं मेरा हाथ थाम लेते हो पिताजी।' पर मन की बात पढ़ना आसान नहीं होता है।

उड़ान का वक्त नज़दीक आ गया। पिता ने बात करनी बंद सी कर दी थी। अनुराग रानो और माँ गाँव की यादों को साझा करने लगे। और पिताजी कहीं दूसरे ही विचारों में खोए हुए थे। अनुराग को लगा कि घर की हालत को लेकर परेशान होंगे। घर में न जाने कितनी धूल मिट्टी जमी होगी। कीट पतंगे उसे अपना घर समझ रहे होंगे।

अनुराग ने कहा, 'पिताजी उड़ान का समय हो रहा है। भीतर जाने में भी वक्त लगेगा।'

वे उठे और बेटे को गले लगाकर कहा, 'अपना ख़याल रखना। जाते ही हम इत्तला कर देंगे।'

उनकी बातों में एक उदासी थी, जो अनुराग को नज़र आ रही थी। वे अंदर जाने लगे। चलते-चलते कदम ठिठक गए, जैसे कुछ रह गया हो। पीछे पलट कर अनुराग से कहा, 'बेटा, मैंने तुम्हें यहाँ भेज कर गलती की थी। तू अपने देश की तरक्की के लिए कुछ करना चाहता था, पर उसमें मैं बाधा बनकर खड़ा हो गया। तुम वापस लौट चलो। तुम्हारी ज़रूरत यहाँ नहीं, बल्कि वहाँ पर है। तुमने इतने बरस किस तरह पीड़ा भोगी होगी, यह मैं तीन महीने में समझ गया। बस अब और नहीं रहा जाता देश के बिना।'

वह पिता के सीने से लिपट गया। पूरे परिवार को संसार की तमाम खुशियाँ मिल गईं।

इसके एक महीने के बाद अनुराग अपने अधूरे प्रोजेक्ट पूरे करके देश लौटने की तैयारी करने लगा..... और अब वह जहाज़ में बैठा परदेश की धरती छोड़ अपने देश पहुँचने की उत्सुकता में है.....

***

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2017

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पाकिट

प्रतिभा सक्सेना

स्कूल से लौटते ही उसने बस्ता सोफ़े पर फेंका और मेरे गले मे हाथ डाल कर पीठ से झूलते हुए बोली,'मम्मी... ! '

'क्या बात है?'

'मम्मी, हमें भी पाकिट मँगा दो।'

'अच्छा, अच्छा, मँगा दूँगी ! पहले कपड़े बदलो और खाना खाओ।'

खाना खाते-खाते भी वह पाकिट की बात करती रही -उसकी डिब्बी भी बन जाती है,हवाई जहाज़ भी। कैंची से काटें तो लालटेन निकल आए। रीना के, मन्टू के पास तीन-तीन हैं। पापा से कहना बाज़ार से ला देंगे।'

'पापा से तो हमने कहा था। वो कहते हैं हमें नहीं पता।'

'कब कहा था ?'

'कल भी कहा था, पहले भी कहा था।'

'अच्छा, अब मैं भी कह दूँगी।'

पर पता तो मुझे भी नहीं था कि वह काहे के लिए कह रही है। मैंने पूछा,'यह बताओ, पाकिट क्या चीज़ है ?'

'पाकिट है।'

'पाकिट क्या ?'

'पाकिट है पाकिट, जैसा सुधीर के पास है, मोना के पास है और सब के पास है।'

चार साल की बच्ची को मैं कैसे समझाऊँ कि जो चीज़ सिर्फ़ उसने देखी है, मैं नहीं जान सकती।

'किसी के पास से लाकर दिखाओ,पहले देखूँ तो कैसा है!'

'कोई नहीं देगा मम्मी, अपना पाकिट।'

'अच्छा कितना बड़ा है ?'

उसने अपनी छोटी-सी गुलाबी हथेली खोलकर नाप बता दी। सफ़ेद रंग का है, ऊपर लालटेन का फ़ोटू है और लिखा भी है। क्या लिखा है ये पता नहीं -अभी जितना पढ़ना आता है उसे, वह तो मजबूरी में जितना पढ़ना पड़ता है उतना ही पढ़ती है, बेचारी!

शाम को खेलने गई तो थोड़ी देर में वापस लौट आई। सबके पास पाकिट हैं उनसे खेल होता है, रीनी के पास ही नहीं। वह उदास होकर घर लौट आई। उसका चेहरा देखकर मुझे बड़ा तरस आया।

'नानक की दूकान पर मिलता है ?'

'पता नहीं।'

'और लोग कहाँ से लाए ?'

'सब अपने घर से लाते हैं।'

मैं चक्कर में पड़ी - सब के घरों मे पाकिट हैं, हमारे घर में नहीं, और हम जानते तक नहीं कि यह क्या चीज़ है, कैसी होती है!

'अच्छा, अबकी से सुधीर आए तो तुम उसका पाकिट दिखा देना, हम तुम्हारे लिए भी ला देंगे।'

इनके बाज़ार जाते समय भी उसने याद दिलाई,'पापा, हमारे लिए पाकिट ज़रूर लाना है।'

'बेटे, हमें पता नहीं पाकिट कैसा होता है।'

'पापा सबके पास तो है।'

मैंने बीच में दखल दिया,'कैसा पाकिट कह रही है ? ला क्यों नहीं देते -इतने दिनों से

कैलिफ़ोर्निया, यू एस ए की कवयित्री, लेखिका प्रतिभा सक्सेना का सीमा के बंधन-कहानी संग्रह, घर मेरा है-लघु-उपन्यास, कुछ हास्य कुछ व्यंग्य- फ़ैसला सुरक्षित है तथा उत्तर-कथा खंडकाव्य है।
सम्प्रति : सेवा निवृत्त (रीडर) हैं।
संपर्क: 1341,पार्सन्स कोर्ट, फ़ोल्सम,केलिफ़ोर्निया.95630. यू एस ए
ईमेल:pratibha_saksena@yahoo.com

रट लगाए है।'

'पर है क्या, कुछ पता भी तो चले।'

'तो ऐसा कीजिए, इसे अपने साथ लेते जाइए। अपने आप देखकर ले लेगी।'

'अच्छा चलो। रीनी बेटे कपड़े बदलवा आओ।'

ढाई घन्टे बाद बाप-बेटी दोनों मुँह लटकाए लौट आए।

'क्यों मिल गया पाकिट ?'

रीनी तो रोने-रोने को हो आई। ये झल्लाए हुए थे, बोले अब तुम्हीं जाकर खरिदवा दो। हम तो सारा बाज़ार ढूँढ़ फिरे, कहीं मिला नहीं।'

इनसे डाँट खाती है तो मेरे पास आ बैठती है, ये उसकी पुरानी आदत है।

मैंने सिर सहलाकर कहा,'जाओ, अपना स्कूल का काम कर डालो, मैं तुम्हारे लिए पाकिट मँगा दूँगी।'

वह आश्वस्त होकर चली गई।

सौदा लाने में इन्होंने हमेशा मुझे झिंकाया है। एक से दूसरी दूकान देखने में इनकी शान घटती है। जिस दूकान पर ठहर जाएँगे, उसी से सारा सामान खरीद लेंगे - चाहे सड़ा हो, गला हो, देखेंगे तक नहीं। घर पर आने के बाद कुछ कहो तो कह देंगे,'मैं क्या करूँ उसके यहाँ और था ही नहीं।'

अरे, आदमी दो-चार दुकानें देख कर पूरी तसल्ली कर सामान लेता है ! पर मजाल है जो ये एक दूकान से दूसरी तक बढ़ भी जाएँ। कभी-कभी तो ऐसा सामान लाकर पटका है कि पड़े-पड़े सड़ता रहा और अंत मे कूड़े में फेंक देना पड़ा। मैं तो इनकी खरीदारी जानती हूँ,रीनी का पाकिट ठीक से ढूँढ़ा थोड़े ही होगा !

मैंने रीनी से पूछा,'क्यों रीनी, पापा ने कहाँ-कहाँ ढूँढ़ा था पाकिट ?'

'खूब सारी दुकानें देखी थीं।,' आशा के विपरीत उत्तर मिला। बाप-बेटी दोनों एक से हैं !

दुकानदार को अपनी बात समझा नहीं पाए होंगे, नहीं तो सबके पास जो चीज़ है, वो इन्हें ढूँढे नहीं मिलती ! अब मुझे ही जाना पड़ेगा।

अगले दिन उसके स्कूल में छुट्टी थी। मैने रीनी से कहा,'नानक की दुकान पर देख आओ,पाकिट है ?'

नानक मोहल्ले की परचून की दूकानवाला है, बच्चों के मतलब की चीज़ें भी रखता है थोड़ी-बहुत।

वह दौड़ी-दौड़ी चली गई पर आधे रास्ते जाकर लौट आई,'मम्मी,पैसे तो दिए ही नहीं।'

'पहले तुम देख तो आओ जाके।'

'ऐसे तो वो देगा भी नहीं और कह देगा भाग जाओ यहाँ से।'

मुझे हँसी आ गई - बड़ी समझदार हो गई है मेरी बिटिया ! मैंने पाँच रुपये का नोट उसे पकड़ा दिया।

पर पाकिट उसे नानक की दूकान पर भी नहीं मिला।

सब बच्चे अपने पापा से पाकिट लेते हैं, बस रीनी के पापा के पास नहीं है, उसके लिए शरम की बात है !

इनके आने पर फिर वही रट ! दो-तीन बार इन्होंने उसे समझाया, देखा, नहीं समझती तो बुरी तरह डाँट दिया। वह चुपचाप रोने लगी।

बच्चों का चुपचाप रोना मन को कितना बुरा लगता है ! मुझे बोलना ही पड़ा,'इस बुरी तरह झिड़क दिया लड़की को ! ज़रा सी चीज़ लाकर दे नहीं सकते ?'

'तुम तो उसी की तरफ़ बोलोगी ! हर बखत पाकिट-पाकिट-- हमारी तो समझ में नहीं आता आखर है क्या चीज़ !'

मैंने उसे पाँच रुपये का नोट दिया पाकिट के लिए, पर उसने फेंक दिया और रोती रही।

मेरी अच्छी मुसीबत है ! ये तो डाँट फटकार कर छुट्टी पा लेते हैं, वह रोती हुई मेरे पास आती है। इन बापों का ढंग भी बड़ा अजीब होता है - कभी तो उसे इतना प्यार करेंगे और कभी एकदम फटकार देंगे। इनके आगे वह अधिक बोल भी नहीं पाती, डाँट खाते हुए सहम जाती है। पर मुझे तो उसका मन रखना ही है।

रीनी तीसरे पहर फिर खेलने नहीं गई।

सब बच्चे जान गए है कि वह पाकिट नहीं मँगा पाई। उसे दिखा-दिखा कर और चिढ़ाते हैं। इसलिए वह खेलने ही नहीं जाती। उदास अकेली बैठी देखकर मेरा मन कचोटता है। दो साल छोटे टोनू से उसकी बिल्कुल नहीं पटती, वह तो कभी उसके रिबन खींचता है कभी बाल नोचता है।

'रीनी, कल सुबह स्कूल जाते समय सुधीर से पाकिट लेकर मुझे दिखा देना फिर मैं तुम्हारा खरीद दूँगी।'

सुबह का समय? क्या किसी तूफ़ान से कम होता है.....

रीनी तो फिर भी सीधी है, दो साल का टोनू तो ज़रा सा मन के खिलाफ़ होते ही आसमान सिर पर उठा लेता है - उस पर न बाप की फटकार का असर, न मेरी पुचकार का।अपनी पूरी बात बोल नहीं पाता तो क्या हुआ बे-मन की बात होने पर ऐसा धमकाता है। पहली स्टेज होती है नीचे का होंठ सिकोड़ कर पूरा बाहर निकाल कर छः कोने का मुँह बना कर रोने की तैयारी। इस पर अगर कोई ध्यान न दे तो दूसरी और आख़िरी स्टेज है -खूब ज़ोर से रोने की और वह भी आँखें बन्द करके कि कहीं किसी की पुचकार से रोने की मुद्रा भंग न हो जाए। रुदन पूर्व की छः कोने के मुँह और होंठ बाहर फुलाने की आदत तो तब की है, जब वह तीन महीने का था। पहने तो ऐसा मुँह देखकर मुझे बड़े ज़ोर की हँसी छूटती थी - दो चार बार सास वगैरा ने टोका तो अब हँसने पर काफ़ी कंट्रोल कर लिया है। मेरी रीनी ने ऐसा कभी नहीं किया वह सीधे-सीधे रोती है।

सात बजे रीनी का रिक्शा आ जाता है, छः बजे से उसे जगाकर उसके पीछे लगती हूँ - बीच-बीच में टोनू की इमरजेन्सियाँ पूरी करती हूँ और जब वह खा-पी कर समय से तैयार होकर रिक्शे पर बैठ जाती है तो मुझे लगता है एक किला फ़तेह कर लिया। इस सब के बीच दूध गर्म करना, ठण्डा करना, टोनू की शीशी भरना, शूशू कराना चलता रहता है।

रीनी को रिक्शे पर भेज कर मैंने चैन की साँस ली ही थी कि रीनी की आवाज़ आई,' मम्मी --मम्मी--'

'क्या हो गया ?' हाथ मे सँडासी लिए मैं दौड़ी-दौड़ी ज़ीने पर आई।

'मम्मी ये रहा सुधीर का पाकिट --'

वह रिक्शे से चिल्लाई, 'सुधीर,जल्दी दिखाओ मेरी मम्मी को --।'

सुधीर अपने बस्ते में कुछ ढूँढ़ रहा था।

मेरे पीछे-पीछे टोनू घिसटता चला आया था। मेरी साड़ी की चुन्नटें पकड़ कर वह ऊपरवाली सीढ़ी पर खड़ा उछल-उछल कर नीचे रिक्शे पर, रीनी को देख किलक रहा था। नीचे को बढ़ता उसका पाँव देखकर मैंने एक हाथ से उसे सँभाला, आवाज़ लगाई, 'रीनू, जल्दी दिखा पाकिट।'

सुधीर ने अपने बस्ते से कोई सफ़ेद सी चीज़ ऊपर उठाकर दिखाई, इतने में दूध जलने की महक आई।

अरे, मैं तो सारा दूध आग पर चढ़ा आई थी ! सँड़सी से उतारने जा रही थी कि रीनी की आवाज़ सुनी। इधर टोनू एक साथ सारी सीढ़ियाँ फलाँगने की कोशिश में। मैंने खींचा तो उसने बड़ी जोर से होंठ निकाल कर मुझे धमकाया, तभी रीनी का रिक्शे वाला चिल्लाया, 'जल्दी करो।'

'मम्मी देख लिया पाकिट ?'

'हाँ,हाँ--' करती मैं एक हाथ से टोनू को खींचती, दूसरे हाथ में सँड़ासी सँभाले अन्दर भागी -दूध उतारने। मैंने सोचा लौटकर आएगी तब देख लूँगी, पर उस दिन किसी कारण हाफ़ डे में ही छुट्टी हो गई, वह जल्दी ही लौट आई। मुझे पाकिट देखने का मौका नहीं मिला।

शाम को बाज़ार जाने का प्रोग्राम बना, बना क्या मैंने जान-बूझकर बनाया। वैसे मुझे बज़ार जाने का कोई शौक नहीं है। पर अब तो पाकिट लेना था।

हम लोगों ने सारा बाज़र छान मारा।

दूकानदारों को समझाना मुश्किल हो गया कि पाकिट है क्या। रीनी अपने ढंग से समझाती थी और वे समझ न पाकर उसे ही बहलाने की कोशिश करते थे। वे अपनी ही कोई चीज़ भिड़ाने के चक्कर मे रहते। पर बहल जाय तो रीनी कैसी ! हम लोगों ने भी उसे समझाया, कई खिलौने दिखाए - 'कहा तुम ये लेलो ये पाकिट से भी अच्छे हैं, और किसी के पास ऐसा है भी नहीं।'

पर उसकी एक ही रट '-हमें तो पाकिट चाहिए, सबके पास है हमें भी चाहिए।'

अब तो मैं भी परेशान हो गई, 'जो चीज़ कहीं मिलती ही नहीं, तुम्हारे लिए कहाँ से ला दें ?हमने तो कभी देखी भी नहीं।'

'सुधीर की दिखाई तो थी।'

'कहाँ देख पाई मैं ! टोनू नीचे कूदा जा रहा था उधर दूध उबल गया --।'

रीनी फिर उदास हो गई। मुझे भी अच्छा नहीं लग रहा था।

शाम हो गई थी। मौसम सुहावना था। मैंने सोचा जल्दी घर पहुँच जाएँगे तो ये अकेली चुपचाप बैठी रहेगी खेलने भी नहीं जाएगी, रास्ते में ही थोड़ा समय निकाल दें।

'चलो पैदल ही घर चलें रिक्शा लेकर क्या करेंगे ?'

'तुम्हीं थक जाओगी, मुझे क्या --।'

हम लेग लौट पड़े।

आज तो हद हो गई! बीस पच्चीस दुकानों पर पूछा पाकिट किसी के पास नहीं!

ऐसा क्या अजूबा है ?

नुमायश ग्राउण्ड की सफ़ाई हो गई थी, उधर से निकल चलेंगे तो काफ़ी चक्कर बच जाएगा। हम लोग नुमायश की तैयारियाँ देखते हुए चलते रहे। पूरा मैदान एकदम साफ़ है, जगह-जगह फाटक लग रहे हैं, बिजली वालों के तम्बू गड़े हैं, बिजली की फ़िटिंग चल रही है, क्यारियों में फूलों की पौध तैयार हो रही है। हफ़्ते भर बाद यहाँ खूब रौनक रहेग, शहर के लोग इधर ही उमड़ पड़ेंगे। लाउड-स्पीकरों के शोर के मारे एक-एक बजे तक सोना मुश्किल हो जाएगा !

गर्मियों की सुहावनी शामें बड़ी जल्दी ढल जाती हैं। नुमायश ग्राउण्ड की इक्की-दुक्की बिजलियाँ जल गईं थीं, बिजली वालों के तम्बुओं से हम ज़रा आगे बढ़े ही थे कि दौड़ती हुई रीनी चिल्लाई, 'मम्मी, मम्मी, वो रहा पाकिट!'

उसने झुक कर ज़मीन से कुछ उठाया, फ्रॉक से उसकी मिट्टी पोंछी और दोनों हथेलियों से दबा कर सीने से लगा लिया।

'देखें तो क्या है,' हम दोनों उत्सुक होकर एक साथ भागे।

उसने खोल कर दिखाया -

सिगरेट का एक खाली पैकेट, जिस पर लालटेन की तस्वीर बनी हुई थी!

***

ग़ज़लें

डॉ. 'कुमार' प्रजापति

यहाँ जो भी किसानी कर रहे हैं
वो अपना ख़ून पानी कर रहे हैं
जो सपने लिखे रहे हैं पानियों पर
ख़राब अपनी जवानी कर रहे हैं
हमारी शख़्सियत रद्द करने वाले
हक़ीक़त को कहानी कर रहे हैं
इरादा है न भूलें ज़िन्दगी भर
तुझे हम मुँहज़बानी कर रहे हैं
दुआ उनके लिए मैं कर रहा हूँ
जो मुझपे मेहरबानी कर रहे हैं
ज़माने में मुहब्बत करने वाले
दिलों पर हुक्मरानी कर रहे हैं
ज़रूरत है 'कुमार' अब बोलने की
बहुत ये लन्तरानी कर रहे हैं

***

आदमी देखा हुआ है
आँखों को धोखा हुआ है
रास्ता टूटा हुआ है
हाकिमों को क्या हुआ है
आपकी कृपा हुई है
ज़ख़्म भी ताज़ा हुआ है
प्रेम का दरिया अपार
दूर तक फैला हुआ है
तू बहुत दानी न बन जा
तेरा घर देखा हुआ है
मेढ़ है अपनी जगह पर
खेत क्यूँ सिमटा हुआ है
मैं अगर जागा हुआ हूँ
वो कहाँ सोया हुआ है
रोना-धोना क्या 'कुमार' अब
जो हुआ अच्छा हुआ है

***

संपर्क : प्रजापति भवन, मेन रोड,
राउरकेला-769001 (ओड़िशा)
मोबाइल : 09437044680
krishnaprajapati2007@gmail.com

संतुष्टि

पंजाबी कहानी : रीतू कलसी
हिन्दी अनुवादः एन. नवराही

वल्ली कॉलेज जाते समय गाँव के अंदर के रास्ते से ना जाकर बाहर की तरफ से नदी के साथ लगती सड़क से जाती। वह नदी के किनारे बने आश्रम के मंदिर में माथा ज़रूर टेकती। उसे नदी के बहते पानी की आवाज़ और हवा से पेड़ों के पत्तों की होती खड़-खड़ाहट बहुत पसंद थी। उसे लगता पानी और पत्ते आपस में बातें कर रहे हैं। कभी अपने मन की मान कुछ समय वहाँ रुककर बहते पानी को देखती। कभी उसका दिल करता पानी में उतर जाए पर उसे तैरना नहीं आता। इसी डर के कारण वह आगे ना बढ़ पाती।

बारिश के दिनों में रास्ता कीचड़ के कारण फिसलन भरा हो जाता, फिर भी वल्ली ने कभी अपना रास्ता नहीं बदला। एक दिन वल्ली ने देखा, उस प्राचीन मंदिर के आश्रम में कुछ संन्यासी आए हुए हैं। कपड़े उनके गेरुए हैं। मंदिर वाले बाबा जी के पास अक्सर संन्यासी आते-जाते रहते हैं। कुछ तो कई-कई दिन बाबा के पास डेरा लगाए रखते। वल्ली ने अंदाज़ा लगाया यह महात्मा लोग हैं, संन्यासी, ब्रह्मचारी। नहीं..., बहुत संन्यासी हुए हैं, जो ब्रह्मचारी नहीं थे। कितने ही... चलते हुए उसके दिमाग में पता नही क्या-क्या चलने लगा।

वल्ली के मन में उत्सुकता थी, यह जानने की कि क्या करते होंगे ये लोग सारा दिन! कहाँ से खाने पीने का इंतज़ाम करते होंगे? हवा खाकर तो जी नहीं सकते? कुल छह लोग हैं। उन में से एक बड़ी उम्र का उनका गुरु लगता है, और बाकी पाँच उनके चेले।

वो रोज़ आते-जाते उन पर एक तरह से नज़र रखने लगी। उसने देखा, वे सारे अपने आप में मस्त रहते। उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं था कि कोई उनके रोज़ाना के कामों पर नज़र रखता है। थोड़े दिनों में उसने अंदाज़ा लगा लिया कि सभी ने आपस में काम बाँटे हुए हैं। दो लोग कहीं बाहर जाते हैं- शायद माँगकर खाने का जुगाड़ करते हों। दो लोग बाकी का काम और गुरु ज़्यादातर एक जगह बैठा रहता। सुबह-शाम अपने चेलों से बातें करता रहता।

घर में इकलौती लड़की होने के कारण वल्ली अपनी हर ज़िद मनवाती। तभी तो घर में कम रहती। इधर-उधर घूमने का या यूँ ही सहेलियों से बातों करने का उसे कोई शौक नहीं। बस प्रकृति से ज़रूर प्यार करती। उसकी यह आदत घर के बाकी लोग भी जानते हैं। उन्हें पता है, अगर वो घर पर नहीं, तो पक्का नहर पर गई होगी। घर में से कोई उसे नहर पर जाने से रोकता भी नहीं। अब छुट्टियों में तो वो ज़्यादा देर रहती ही नहर पर।

आज उसके घर में खीर बनी है। वल्ली उनके लिए खीर कटोरे में डाले, कुटिया के बाहर, जो कि संन्यासियों का आश्रम है, के दरवाज़े पर जा खड़ी हुई। खड़े-खड़े सोचने लगी, कहीं गुस्सा ही न हो जाएँ। क्या पता इन लोगों का। महिलाओं से बात करते भी हैं या नहीं। पर एक बात तो है, अगर कोई काम-धंधा नहीं करते, माँगकर खाते हैं तो घर में तो महिलाएँ ही खैरात डालती होंगी। या फिर दरवाज़े पर खड़े होकर कहते होंगे— 'बीबी

कहानीकार और पत्रकार रीतू कलसी की रचनाओं का विभिन्न स्तरीय पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशन हुआ है। एक पुस्तक प्रकाशनाधीन। पिछले पंद्रह साल से विभिन्न समाचार पत्रों में भिन्न पदों पर कार्यरत रहीं। वर्तमान में फिल्मी पत्रिका 'सिने दुनिया' में मैनेजिंग एडिटर के पद पर कार्यरत।
संपर्क : ओ-2002, सुपरटेक ईको सिटी, सेक्टर 137, नोएडा-201301 (उप्र)
मोबाइल: 9569570059
9915884681
ईमेल- reetukalsi@gmail.com

पंजाबी और हिंदी के कवि एन नवराही की भिन्न-भिन्न पंजाबी एवं नया ज्ञानोदय, अनुभूति जैसी हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ , समीक्षा , एवं पर्यावरण जागरूकता विषय पर लेख प्रकाशित। तीन सौ से ज़्यादा पाकस्तिानी पंजाबी कहानियों एवं तीन उर्दू नॉवेलों का हिंदी में अनुवाद।
संप्रति : डिप्टी एडिटर, राजस्थान पत्रिका, नोएडा
संपर्क: ओ-2002, सुपरटेक ईको सिटी, सेक्टर 137, नोएडा-201301 (उप्र)
मोबाइल : 9815070059
ई-मेल : navrahi@gmail.com, navrahi@yahoo.com

तुमसे हम नहीं लेंगे, हमारा धर्म भ्रष्ट होता है, अगर घर में कोई मर्द है, तो उसे भेजो।' यह सोचकर वल्ली को हँसी आ गई और वह हँसने लगी। उसकी हँसी की आवाज़ सुनकर एक संन्यासी चेला बाहर आया, जिसे देखकर वह एकदम चुप हो गई और अपनी इस हरकत पर शर्मिंदा सी हुई। संन्यासी ने उससे पूछा— 'क्या बात है बच्चा?'

'कुछ नहीं, आपके लिए खीर लेकर आई थी, अगर आप...।' और खीर वाला बर्तन आगे कर दिया।

छोटे संन्यासी ने बर्तन न पकड़ा, कुछ पल चुप खड़ा सोचता रहा और फिर कहने लगा, 'महात्मा जी से पूछकर आता हूँ।' और वो अंदर चला गया। थोड़ी देर में छोटा संन्यासी महात्मा के साथ बाहर आया। वल्ली ने महात्मा को प्रणाम किया। महात्मा आशीर्वाद देकर पूछने लगे, 'बेटा खीर लेकर आए हो।'

'जी महाराज।'

'पहले बताओ, तुम हँसी क्यों थी। यह बता रहा था कि तुम अकेली खड़ी हँस रही थी।' वह डर से कुछ न बोल पाई।

'डरो मत बच्चा, बताओ जो तुम्हारे मन में है।' महाराज ने फिर पूछा।

वल्ली ने उसे अपने हँसने का कारण बता दिया। सुनकर महात्मा भी मुस्कुरा पड़े और कहने लगे, 'बच्चा, ठीक है, हम संन्यासी हैं। औरत से दूर रहते हैं, पर ऐसी सोच भी नहीं रखते कि प्रेम से लाई हुई खीर भी न लें। वैसे भी बहुत दिन हो गए थे, खीर खाए हुए।'

वल्ली ने खुश होकर खीर वाला बर्तन एक चेले को पकड़ा दिया और कहने लगी, 'आगे से भी जब बनेगी, ज़रूर लेकर आऊँगी।' पर उनमें से एक संन्यासी था, जिसे वल्ली का आना पसंद न आया। वो बाकियों से भी कहने लगा, 'क्यों इस लड़की से इतना मेल-जोल बढ़ाया जा रहा है।' बाकी उसे जवाब देते— 'अगर अपना मन साफ है तो क्या फर्क पड़ता है।' पर उसका कहना था कि कहीं न कहीं, किसी न किसी को तो फर्क पड़ ही जाता है।

वल्ली को भी इस बात का पता था कि उसे उसका आना पसंद नहीं। वैसे भी जब वल्ली आती थी, तो वह उसे घूरकर ही देखता था। वल्ली बाकियों से पूछती— 'उसे मेरा आना पसंद नहीं, मैं पसंद नहीं, तो मेरी तरफ इस तरह क्यों देखता है, न देखा करे।' वल्ली वहाँ से आकर सोचती, अगर उसे मेरे वहाँ आने-जाने से ही फर्क पड़ता है, तो फिर किस बात का संन्यासी बना फिरता है!

वल्ली ने आश्रम में जाना छोड़ दिया। खीर लेकर जाने पर अगर कोई संन्यासी बाहर मिल जाता, तो उसे बाहर से ही बर्तन पकड़ा देती। नहीं तो लौट आती और किसी और के हाथ बर्तन भिजवा देती। उसने फिर उसी पुरानी जगह पर बैठना शुरू कर दिया- नहर के किनारे। वह नहर के पानी से बातें करती, कलोलें करती, वृक्षों से बातें करती। पत्तों की खड़खड़ाहट की आवाज़ सुनती। सोचती, यह नदी कभी भी नहीं ठहरती, हमेशा चलती रहती है। जो इसमें घुलना-मिलना चाहे मिल जाए। किसी को न नहीं करती। अपने में समाती चली जाती है। कई बार सोचते-सोचते संन्यासी उसकी सोच में दाखिल हो जाता। वह उसे पसंद क्यों नहीं करता? कभी सोचने लगती, 'मैं इतनी इतनी बुरी हूँ' और फिर सोचने लगती, 'बेचारा संन्यासी है, घर-बार छोड़ा हुआ है' और फिर खुद ही नतीजा निकालती— 'उसके बारे में इस तरह सोचना अच्छा नहीं...।'

कुछ दिनों से वह देख रही थी, उसके नहर पर आने से पहले ही संन्यासी वहाँ बैठा होता है। उसके आते ही उठकर चला जाता, पर उसका देखना अभी भी पहले जैसा ही है। वह सोचती, 'इससे अच्छा तो देखा ही न करे।'

आज सुबह से ही बादल छाए हुए हैं। लगता है वर्षा होगी। इसी सोच में वे नदी की ओर चल पड़ी। उसके वहाँ पहुँचते-पहुँचते वर्षा होने लगी। उसने देखा संन्यासी उससे पहले से आकर वहाँ बैठा हुआ है। वर्षा से वह भीग रही थी। वल्ली को बारिश में भीगना शुरू से ही पसंद था। इसलिए वह वर्षा वाले मौसम में भी आ गई थी। किंतु संन्यासी को देखकर सोचने लगी कि यह इस मौसम में क्या करने आया है? वल्ली को देखकर संन्यासी के मन में भी यही सवाल उठा। वर्षा धीरे-धीरे बढ़ने लगी। वल्ली पूरी तरह भीग गई। उसका सूट उसकी देह से चिपक गया, जिस कारण वल्ली के शरीर के कटाव और उभार नज़र आने लगे। न चाहते हुए भी संन्यासी की नज़र उस पर ठहर गई। पानी उसके लंबे बालों से होकर उसकी दोनों चोटियों से होता हुआ उसके उभारों से नीचे बहने लगा। वल्ली का भीगा हुआ शरीर उसे आग की लपट की तरह लगा। किंतु जब उसकी नज़र वल्ली की नज़र से मिली, तो वह काँप-सा गया। उसने नज़र चुरा ली और जल्दी से वहाँ से चला गया। वल्ली उसे जाते हुए पीछे से देखने लगी। उसके चौड़े कंधों और पतली कमर को एकटक देखती रही। उसकी जाँघें भले कपड़े से ढँकी हुई थीं, पर कपड़ा गीला होकर चिपका हुआ था और जाँघें अपनी मज़बूती का अहसास करवा रहे थे। उसके भीघे लंबे बाल उसकी खूबसूरती को चार चाँद लगा रहे थे।

कितनी ही देर वह वहाँ खड़ी रही। संन्यासी जा चुका था। इतनी वर्षा में भी उसे इस बात की सुध-बुध नहीं रही थी कि वह खड़ी कहाँ है! जब होश आया तो उसे अपने आप पर हँसी आ गई। वह पूरी तरह भीग चुकी थी। उसे लगा, बारिश ने उसका शरीर बाहर से ही नहीं भिगोया, बल्कि वह अंदर तक भीग गई है... बादल उसके मन की कंदरों तक बरस गए हैं।

कई दिनों से वल्ली उस नहर की ओर नहीं गई। वह कहीं भी नहीं गई थी। घर वाले परेशान हो रहे हैं, पर वह ठीक न होने का बहाना बनाती।

गाँव में किसी ने उसे बताया कि सारे संन्यासी आश्रम में से चले गए हैं। यह सुनकर वल्ली खुद देखने आश्रम की ओर चल पड़ी। जैसे उसे गाँव वाले की बात पर यकीन न आया हो। खाली आश्रम देखकर उसे लगा, जैसे आश्रम में से अकेला संन्यासी ही नहीं गया, उसके अंदर से भी कुछ चला गया है। वह वही खड़ी सुन्न सी होने लगी। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मन भारी होने लगा। उसकी आँखें भर आईं। सोचने लगी, 'कहाँ गए होंगे? फिर पता नहीं

कभी आएँगे भी?' यह सोचते हुए वह घर लौट आई।

सुबह कॉलेज तो वह उसी रास्ते से जाती, पर अब उसके पाँव नदी पर न रुकते। अगर कहीं रुक भी जाती, तो उसे बेचैनी होने लगती। उसका मन भटकने लगता और वह जल्दी से वहाँ से आगे बढ़ जाती। घर वाले वल्ली के बदले व्यवहार से परेशान हैं। कारण पूछते, पर वह बताती कुछ ना। उनकी परेशानी और बढ़ जाती। जो वल्ली घर नहीं टिकती थी, अब उसने स्वयं को कमरे में कैद कर लिया।

बीए पूरी हो गई। माँ ने शादी की बात चलाई। वल्ली ने यह कहकर कि वह अभी आगे पढ़ना चाहती है, शादी न करवाने का फैसला सुना दिया।

उसकी बी.एड भी पूरी हो गई। घर वालों ने फिर बात चलाई। वल्ली उन्हें कैसे बताए कि कैसे वह किसी और के साथ शादी कर ले। जब आँखें बंद करती तो उसे संन्यासी का घूरता हुआ चेहरा दिखाई देता है। वल्ली ने महसूस किया, संन्यासी उसके पूरे वजूद पर छा चुका है। उसने सोचा— 'वह कहीं संन्यासी को प्यार तो नहीं करने लगी। भला प्यार में ऐसा हो जाता है!'

एक दिन उसने सोचा— शादी तो करवारनी नहीं। बी.एड हो गई है, क्यों न बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दूँ। घर वाले भी कुछ न करती देखकर शादी की रट लगाने लगते हैं। सोचते-सोचते उसकी सोच फिर उसी संन्यासी पर आकर रुक गई। उसकी आँखें बंद हो गईं। उसे लगा संन्यासी उसके सामने खड़ा है, और वह ख़यालों में उसकी बाहों में पहुँच गई।

वह अपने आप को अजीब-सी स्थिति में फँसी महसूस करती और सोचती, मेरा सपना कभी सच होगा? कभी वापस लौटेगा? ...नहीं, लगता तो नहीं, हो ही नहीं सकता... क्योंकि संन्यासी तो कभी एक जगह रुकते ही नहीं शायद। वह सोचती- शायद मैं कभी कहीं जाऊँ, तो मुझे नज़र आ जाए। पर ऐसा नहीं होता। पता नहीं... मैं पगली पता नहीं क्या-क्या सोच रही हूँ। मैं तो सचमुच ही पगला गई लगती हूँ। उसके प्यार में, एक तरफा प्यार में। वो भी उस संन्यासी के, जो उसे घूरता रहता था, जो शायद उसके लिए छलावा मात्र ही था... बस एक देखने को छोड़कर। जिसने वल्ली की दुनिया ही बदल दी थी। पागल कर दिया... और वो हँस पड़ी। कितने ही दिनों बाद हँसी। वो भी अपनी ही सोच पर। उसने देखा, सोचते हुए वह आश्रम तक ही पहुँच गई है। यहाँ पहुँचकर उसे अच्छा-अच्छा महसूस हुआ। उसने महसूस किया- शायद उसे यहाँ आकर ही सुकून मिलता है, चैन मिलता है। यहाँ का वातावरण उसे मोहित करता था। उसे लगा, जैसे यह जगह उसे बुला रही थी। उसी को पुकार रही थी। उसने महसूस किया, जैसे उसके ना आने के कारण यहाँ की हवा ने अपना रुख बदल लिया हो। आश्रम के अंदर जाकर देखा, घास काफी बड़ी हो गई थी। आश्रम की सिरकी से बनी दीवार कई जगह से टूटी हुई थी। जानवरों ने आश्रम की बाड़ भी कई जगह से तोड़ दी हुई थी। आश्रम के अंदर कई जगह गाँओं और भैंसों का गोबर पड़ा हुआ है। कमरे में कुत्ते सोए हुए हैं, जो उसे देखकर भौंकने लगे हैं। वह डरकर एकदम पीछे हो गई। उसे कुत्तों से हमेशा डर लगता है। जहाँ संन्यासी बैठा हुआ उसने देखा था, उस जगह पर आवारा कुत्ते बैठे उसे बर्दाश्त न हुए। उसने कुत्तों को भगाने के लिए छत से एक डंडा निकाला और कुत्तों को दुत्कारा। कुत्ते बाहर की ओर दौड़े। वह उसी जगह खड़ी आश्रम की हालत को देखने लगी। उसका भीतर जैसे आश्रम से जुड़ गया हुआ था। अजीब-सा अपनापन महसूस हुआ उसे। सोचने लगी- क्या हालत हो गई है आश्रम की। यहाँ रहने वाले बाबा भी कोई ध्यान नहीं देते। बस अपने में ही मसत रहते हैं। उसने सोचा- क्यों न आश्रम को ठीक करवाकर यहाँ बच्चे पढ़ाने शुरू कर दूँ। यह सोचती हुई वह घर की ओर लौटी। घर आकर वल्ली ने अपनी माँ से बात की। माँ को सुनकर खुशी हुई कि चलो बच्चों को पढ़ाने के बहाने ही सही, अंदर-बाहर जाएगी, तो इसका मन खुद ही ठीक हो जाएगा। शायद फिर शादी के लिए भी मान जाए। वल्ली ने डरते हुए बाबा जी से आश्रम में गाँव के बच्चों को पढ़ाने की अपनी इच्छा बताई। बाबा जी ने सहमती में सिर हिला दिया था।

वल्ली ने आश्रम को ठीक करवाकर बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दिया। शुरू में कुछ बच्चे आने शुरू हुए। उसके अपने ही गाँव के थे। किंतु धीरे-धीरे आस-पास के गाँवों के बच्चे भी आने लगे। आश्रम के एक कोने में, जहाँ घूरता हुआ संन्यासी बैठता था, उस जगह उसने छोटा-सा बगीचा बनाकर एक झूला लगवा लिया। उस बगीचे को वह अपने हाथों से संवारती। उस जगह पर कोई और नहीं जाता था। वह झूले पर बैठती और बैठकर महसूस करती, जैसे वह उस संन्यासी की गोद में बैठी हो। यह सोचकर एक पल उसका दिल तेज़ धड़कने लगता।

वल्ली के घर वाले उसकी बढ़ती उम्र देखकर परेशान होते। उसके लिए लड़का ढूँढ़ते, पर वल्ली न मानती। अब वह ज़बरदस्ती उसकी शादी करने पर उतारू थे। उन्होंने लड़का भी ढूँढ़ लिया। लड़का वल्ली को देखने आया। उसकी माँ ने वल्ली को तैयार होकर आने को कहा। वह अपने कमरे में गई, कुछ देर सोचने के बाद बाहर आकर कहने लगी— 'मैंने आपसे पहले ही कहा था, मुझे शादी नहीं करनी। आप मेरे साथ ज़बर्दस्ती नहीं कर सकते। इसलिए मैंने सोचा है कि मैं इस घर में नहीं रहूँगी।'

वल्ली की बात सुनकर उसके घर वाले बहुत भड़के हैं। उन्होंने वल्ली को रोकने की कोशिश की। प्यार से भी और गुस्से से भी। पर वह अपने फैसले पर रही। गुस्से से उसने गेरुए रंग से मिलते-जुलते रंग का सूट पहना और घर से निकल गई।

उसके छोटे से स्कूल की चर्चा दिन-ब-दिन बढ़ने लगी। बच्चों की संख्या भी बढ़ने लगी। किंतु इस सबकुछ के बावजूद वह अपने आप को अकेली ही महसूस करती।

रात वह जब सोती, उसे सपना आता— संन्यासी वापस लौट आया है और उसे अपनी बाहों में लिया हुआ है। उसकी आँख खुल जाती। कई बार वह इस सपने से डर जाती और कभी अच्छा-अच्छा लगता। कई-कई दिन और रातें संन्यासी के सपने की मिठास में डूबी रहती। समय अपनी

चाल से चलता रहा, पर उसका अपना समय जैसे ठहरा हुआ था। उसे लगता, वह बहुत अकेली है। उसका कोई नहीं, किंतु लोग उसे कितना सत्कार देने लगे हैं। यहाँ तक कि उसे संन्यासिन ही समझने लगे हैं।

वह अगर गेरुआ रंग पहनने लगी है तो केवल इसलिए कि संन्यासी यह रंग पहनता था। यह रंग जैसे उसके मन पर भी चढ़ा हुआ था—वह सोचती। पर लोगों को कौन समझाए। गेरुआ पहनने से कोई संन्यासी नहीं बन जाता! संन्यासी बनने के लिए बहुत कुछ त्याग करना पड़ता है। मन काबू करना पड़ता है। किंतु उसका मन तो बिलकुल भी काबू में नहीं है। कभी उसका मन ऊँची-ऊँची रोने को करता। मन हलका करने के लिए वह नहर की ओर चली जाती। वहाँ बैठकर रोना चाहती, पर उस जगह जाकर उसे रोना भी न आता। वहाँ जाकर उसे अपने आप में अजीब-सा बदलाव महसूस होता। आँखें बंद करके अरदास करती, एक बार ही सही, पर उसे भेजो। मेरी आत्मा को संतुष्टि मिले— 'रहम कर मुझ पर...।'

वह सोचती— यदि संन्यासी सचमुच आ गया, फिर क्या करेगी? कुछ कह भी पाएगी या नहीं या फिर बस देखती रहेगी। शायद गले लगाना चाहे, उसके शरीर की खुशबू महसूस करना चाहे। फिर वह अपनी सोच पर लज्जा जाती। 'क्या सोच रही हूँ। अगर वह आ भी गया, तो क्या ऐसा हो सकता है कि मैं उसे गले से लगा लूँ!' किंतु उसे लगता— जैसे वह उसकी बात को बिना कहे ही समझ जाया करता था। शायद उसके प्यार को भी पहले ही समझ गया हो। इसी लिए चला गया। शायद सोचता हो- उसका चले जाना ही वल्ली के लिए ठीक है। फिर सोचने लगती, 'उसे क्या पता, उसने मेरा क्या हाल कर दिया है? उसका घूरना मुझे अभी भी चैन से नहीं बैठने देता। छह साल बीत गए। कहने को केवल छह साल; कितना आसान है कहना, किंतु बिताना...'

वह रात को जब सितारों की ओर देखती तो सोचती, शायद वह भी सितारों को देख रहा हो। सितारों में उसकी शक्ल महसूस करती। बहती हवा में उसकी साँसें महसूस करती। उसकी ख़ुशबू का आनंद लेती।

एक दिन नहर के किनारे खड़ी पानी में अपनी परछाईं देखने लगी। उसने देखा- वह अब लड़की से एक औरत में तब्दील हो रही है। पहले पतली थी, अब थोड़ी भारी हो गई है। उसे अपना अक्स सुंदर-सुंदर लगा। उसने सोचा, जैसे इतना समय बीत गया है, बाकी की उम्र भी गुज़र जाएगी। संन्यासी के प्यार में, उसकी प्यास में, उसकी बाहों के कसाव की आस में...। फिर वह अपनी माँ के बारे में सोचने लगी, जो उसका गम दिल को लगाकर दुनिया से ही चली गई। उसके बाद वल्ली बिलकुल ही अकेली रह गई। अपने स्वार्थ के कारण, अपने एक तरफा प्यार के कारण। फिर सोचती— 'मैं अपने प्यार को एक तरफा क्यों सोचती है? शायद संन्यासी के मन में भी कुछ आया ही हो। शायद तभी चला गया हो? डर से... प्यार के डर से... या फिर अपने मन के डर से...?'

आज फिर बादल उमड़ रहे हैं। उसे नहर के किनारे खड़ी को महसूस हुआ, जैसे अभी वक्त अपनी धुरी के गिर्द उलटा चल पड़ेगा। उसके दिल को एक अजीब-सा आकर्षण खींचने लगा। उसे लगा, जैसे वही घूरने वाला संन्यासी कहीं नज़दीक ही है और उसी की ओर चला आ रहा है। उसे घबराहट-सी हुई। ठंड-सी महसूस हुई, काँपने भी लगी। किंतु इसके बावजूद वहाँ से जाने के बारे में न सोचा। तेज़ हवा से बचने के लिए वह वृक्ष से सटकर खड़ी हो गई। जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रही हो। एक बार तो उसे लगा, जैसे यह सारा कुछ वहम हो। भला ऐसा भी हो सकता है कि अगर उसका मन कह रहा है और वह सचमुच ही आ रहा हो। यह सोचकर उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। अपनी पीठ वृक्ष के तने से टिका ली। पुरानी यादों में गुम, संन्यासी को उसी रूप में सोचने लगी, जैसे पहली बार वर्षा में भीघे हुए को देखा था। उसे लगा, जेसे कोई उसे पुकार रहा है। उसने इधर-उधर देखा, कोई नहीं। वह फिर उसी तरह सोचने लगी।

उसने फिर आवाज़ सुनी। उसे लगा वहम है, पर किसी ने उसे जैसे झकझोड़कर जगाया। उसने आँखें खोली। उसे लगा वह जगती हुई सपना देख रही है। वही संन्यासी सामने था। साक्षात्। मंद-मंद मुस्कराता हुआ। बाल पहले से बढ़े हुए, दाढ़ी भी बढ़ी हुई। वह एकदम जैसे पत्थर की मूरत बन गई। जिस तरह सोचा था, उस तरह का उससे कुछ भी न हुआ। उसकी समझ में न आया, वह क्या कहे। बस देखे जा रही थी। आख़िर इस ख़ामोशी को संन्यासी ने ही तोड़ा— 'कैसी हो?'

'ठीक हूँ। बस जी रही हूँ।' वल्ली ने धीरे से जवाब दिया।

'शादी नहीं करवाई, यह क्या कपड़े पहने हैं? साधवी हो गई लगती हो।'

'नहीं...नहीं करवाई और संन्यासिन भी नहीं हुई। हो ही नहीं पाई। ना दुनियादारी के लिए रही, न दुनियादारी से बाहर हो पाई।'

'क्या मतलब? खुलकर कहो।'

'क्या बताऊँ। मोह-प्यार में फँस गई। निकल ही न पाई। अभी तक फँसी हुई हूँ। बहुत कोशिश की भूलने की, पर भूल न पाई या फिर मैं भूलना ही नहीं चाहती। आज तक समझ ही नहीं पाई। आप बताइए, आप कहाँ आए थे?'

'यहीं पास वाले गाँव में आना हुआ था। इधर से जा रहा था। आश्रम की ओर देखा, पता चला तुमने आश्रम को स्कूल में बदल दिया है। बहुत अच्छा लगा। किसी अच्छे काम में ही लगी हुई हो। फिर पता चला, तुम साधवी हो गई हो। बस फिर तुम्हें यहाँ खड़े देख रुक गया।'

'...भला गेरुआ कपड़े पहनने से कोई संन्यासी हो जाता है। मेरा मन तो हमेशा अशांत ही रहता है। कुछ हासिल करने की चाह में। पता नहीं यह ठीक है या नहीं, पर मैं क्या करूँ...?'

'प्यार करना कोई बुरी बात नहीं। पर मन पर काबू रखना चाहिए। मन पर भी और शरीर पर भी।'

'इसी लिए आप चले गए थे...'

'शायद, किंतु फिर भी मैं तुम्हें भी यही कहूँगा, मन को काबू करना चाहिए।'

'पता नहीं, कहने की बातें हैं सब। आप कर सकते होंगे मन पर काबू। मुझसे तो नहीं

होता।' कहकर वल्ली काँपने और रोने लगी।

संन्यासी खड़ा उसकी ओर देखता रहा। फिर उसे समझाने लगा— 'इस तरह नहीं करते। अब तुम बच्ची नहीं रही। इस तरह की बातें शोभा नहीं देतीं।'

'...नहीं होता। कहना ही आसान है। जिस पर बीतती है, वही जानता है।'

संन्यासी उसकी बातों से जैसे डर-सा गया, पर विचलित नहीं हुआ। एक बार तो उसने सोचा, वह रुका ही क्यों? पहले भी तो अनदेखा करता था। अब क्यों नहीं किया। उसने स्वयं को फंसा हुआ महसूस किया, किंतु उसे वल्ली पर तरस आ गया। उसे अपने जीवन में पहली बार लगा कि उसकी समझ में नहीं आ रहा कि क्या करे। उसे इस तरह खड़ी छोड़कर चला जाए या फिर समझाए। वल्ली लगातार रोए जा रही थी। रोते हुए कहने लगी है— 'आप यहाँ से चले जाओगे, मुझसे और नहीं सहा जाता। मुझसे न आपकी जुदाई बर्दाश्त होती है न आपका मिलना। जिस तरह जी रही थी अब तक, यादों में जी लूँगी। अपने मन की, प्यार की, अपने शरीर की प्यास को खुद ही सह लूँगी। मेरी आत्मा खुद ही तड़प-तड़पकर ठंडी हो जाएगी। शरीर ने भी तो एक दिन ठंडा हो जाना है। आप चले जाओ... चले जाओ...' मैं कहती हूँ बस चले जाओ...।' कहकर वह और ऊँची रोने लगी।

संन्यासी से उसका रोना बर्दाश्त नहीं हो रहा। उसने आसमान की ओर देखा। जैसे ऊपरवाले से पूछ रहा हो। चुप कराने के लिए उसने अपना हाथ वल्ली के सिर पर रखा, किंतु वल्ली ने संन्यासी को अपनी बाहों में ले लिया और ऊँची-ऊँची रोने लगी।

हवाओं ने अपना रुख बदल दिया। एक पल के लिए समय जैसे ठहर-सा गया। नहर के पानी में भी हलचल हुई। ज़मीन का रंग लाल होकर महकने लगा, किंतु वल्ली अब पहले से ज्यादा ऊँची-ऊँची रोने लगी। अपने आप में सहज भी महसूस नहीं कर रही। उसने संन्यासी की ओर देखा। वह अभी भी मंद-मंद मुस्कुरा रहा है।

'मैं कितनी पागल हूँ! यह...।'

***

लघु कथा

ये कौन सी डगर है

मार्टिन जॉन

बरसों बाद जब वह अपने गाँव आया तो सबसे पहले उस स्कूल को देखने पहुँच गया जहाँ उसने अपनी शुरूआती तालीम पाई थी। स्कूल के क़रीब पहुँचते ही उसके कानों में उसी गीत के बोल टकराए जिसे वह सांस्कृतिक कक्षा में प्रतिदिन हेडमास्टर के स्वर में स्वर मिलाकर समस्त छात्रों के साथ गाया करता था, 'इंसाफ़ की डगर पे बच्चों दिखाओ चल के, ये देश है तुम्हारा नेता तुम ही हो कल के ....'

उसे हैरत हुई, हेडमास्टर साहब अभी भी इस गीत का गायन बरकरार रखे हुए हैं। उसे हेडमास्टर से मिलने की तीव्र इच्छा हुई। समूहगीत का गायन ख़त्म होते ही वह जा पहुँचा उनके कार्यालय में। परिचय देते ही वह उसे पहचान गए। इजाज़त पाकर वह कुर्सी खींचकर बैठ गया। हाल -समाचार के बाद बातचीत का दौर शुरू हुआ और घर - परिवार, गाँव, समाज राजनीति से गुज़रते हुए बातचीत का सिलसिला देश पर जा टिका।

'सर, एक बात पूछूँ ?'

'हाँ, हाँ क्यों नहीं ...!'

'आप एक लम्बे अरसे से बच्चों को वही गीत गवा रहे हैं .....गीत गाने वाले कल के बच्चे आज बड़े हो गए होंगे।'

'हाँ, हाँ बिलकुल !...जैसे तुम।'

'तो सर, इस दौरान आपको कोई ऐसा बच्चा मिला जिसने इस गीत को अपने जीवन में उतारा हो ?...मेरा मतलब कोई ऐसा नेता, अफसर, देशभक्त ....।'

सवाल सुनकर उन्होंने अपना चश्मा उतारकर टेबुल पर रख दिया। एक लम्बी साँस खींचकर गर्दन पीछे कर ली। एक पल यथावत् रहने के बाद उन्होंने पहलू बदला। गर्दन सीधी कर उसकी आँखों में झाँका। कुछ कहने के लिए उनके होंठ अभी खुलते कि उन दोनों की नज़र उस व्यक्ति पर पड़ी जो तेज़ क़दमों से कार्यालय में दाख़िल हुआ और बड़े बेअदबी से कुर्सी खींचकर कर बैठ गया। बैठते ही शुरू हो गया, 'इम्तहान कब शुरू हो रहा है सर ?'

'अगले सप्ताह से।' हेडमास्टर ने धीमे स्वर में ज़वाब दिया।

'देखिए, इस मरतबा मेरा बेटवा सोनू को पास करवाना ही पड़ेगा।'

'अच्छा लिखेगा तो पास करेगा ही।'

'ऊ सब छोड़िए सर, दो साल तो अटका दिया उसको।...इस बार ऐसा नहीं होना चाहिए।'

'लेकिन ऐसा करने से उसकी नींव खराब हो जाएगी।'

'उसकी नींव-फिऊ का फिकर मत कीजिए सर। आप मेरा फिकर करें।'

'आपको क्या हुआ सूरजभानजी ?'

'सर, आप तो जानते हैं, जब हम इस स्कूल में पढ़ते थे तो गाँव-समाज का कितना ख़्याल रखते थे। अब मौका आया है कुछ बड़ा करने का।.....अगले महीने पंचायत का चुनाव होने वाला है, और आपको जानकार ख़ुशी होगी कि हम भी चुनाव लड़ रहे हैं।'

'लेकिन सोनू के पास फेल होने से इसका क्या संबंध ?'

सूरजभान की बातें उन दोनों को पहेली सी लग रही थीं।

'आप नहीं समझ रहे हैं सर.....देखिए हम समझाते हैं आपको। अगर सोनू फेल हो गया तो मेरी साख गिर जाएगी। गाँववाले यही समझेंगे कि अपने बेटवा को पास करवाने जैसा मामूली काम ई उम्मीदवार नहीं करा सका तो आगे चलकर हमारा काम क्या खाक करेगा .....हमरा इज़्ज़त और भविष्य का सवाल है सर। आपको हमरा मदद करना ही पड़ेगा।' कहकर वह झटके से उठा और तेज़ क़दमों से बाहर हो गया।

दफ़्तर में सन्नाटा पसर गया। तूफ़ान गुज़र जाने के बाद का सन्नाटा। कश्ती डूब जाने के बाद की मातमी ख़ामोशी। हेडमास्टर साहब ने बुझी आँखों से अपने पुराने छात्र को निहारा। आँखें जैसे कह रही हों, 'मिल गया न ज़वाब !'

***

लिप्यांतर

ज़ाहिदा हिना

ज़ाहिदा हिना का जन्म अविभाजित भारत के सासाराम बिहार में हुआ था। विभाजन के बाद आपके पिता कराची में जाकर बस गए। आप पाकिस्तान की सुप्रसिद्ध कहानीकार, पत्रकार तथा स्तंभ लेखिका हैं। आपकी कई कहानियाँ उर्दू से हिन्दी में लिप्यांतरित होकर प्रकाशित हुई हैं। आपकी कहानियों का हिन्दी, बंगाली, मराठी में अनुवाद हो चुका है। दो हिन्दी कहानी संग्रह भी आपके भारत में प्रकाशित हुई हैं, जिनका लिप्यांतरण ज़ेबा अल्वी जी ने किया है। आप पाकिस्तान की प्रमुख पत्रकार हैं तथा वहाँ से प्रकाशित होने वाले सभी समाचार पत्रों में आपके दो हज़ार से भी अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। भारत में प्रकाशित होने वाला उनका स्तंभ पाकिस्तान डायरी यहाँ पर काफी पसंद किया जाता है, इस स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित होने वाले लेखों का एक संकलन इसी नाम से पुस्तक रूप में भी प्रकाशित होकर आ चुका है। लोकतंत्र की आवाज़ को पत्रकारिता के माध्यम से मज़बूत करने हेतु 2006 में उन्हें पाकिस्तान का सर्वोच्च साहित्य सम्मान प्रदान किया गया।

संपर्क : बी-105, अफ़नान आर्केड, ब्लॉक-15, गुलिस्ताने जौहर, कराँची, पाकिस्तान -75290

कुमकुम बहुत आराम से है

उर्दू कहानी : ज़ाहिदा हिना

हिन्दी लिप्यांतरण : ज़ेबा अल्वी

मेरी दुलारी दादी माँ, नमस्कार!

कई सप्ताह बाद आज मैं काबुल वापस पहुँची हूँ तो डाक मिली। घर से आपके अतिरिक्त भी बहुत सी चिट्ठियाँ आई हैं। माताजी और भैय्या की, उमा दीदी की, सुषमा की। पर सबसे प्यारा पत्र आपका है; जिसमें आपने इतने दिनों से चिट्ठी न लिखने पर मुझे कोने में मुँह देकर खड़ा कर देने, कान मरोड़ने और मुरग़ा बनाने की धमकियाँ दी हैं। आपकी यह सारी डाँट फटकार पढ़कर मुझे लगा जैसे मैं छोटी सी हो गई हूँ और आपकी गोद में चढ़ी बैठी हूँ। आप अपनी झूला कुरसी में हिल रही हैं और आपके साथ मैं भी झूल रही हूँ। आप मुझे कहानियाँ सुना रही है। बराबर में रखी हुई तिपाई पर सफ़ेद चीनी का बड़ा सा प्याला धरा है, जिसका किनारा आपकी साड़ी की किनारी जैसा नीला है। प्याले में से आप अख़रोट, किशमिश, बादाम उठाकर मेरे मुँह में रख देती हैं। मैं शरारत से आपकी उँगलियाँ दाँतों में दबा लेती हूँ। आप मुझे घूरती हैं और फिर अपने बीते जन्मों की कहानियाँ सुनाने लगती हैं, जब आप हँसती थीं और उड़ती हुई कैलाश की चोटी पर जा उतरती थीं, जब आप मछली थीं और गंगा, यमुना, सरस्वती में तैरती फिरती थीं, जब आप हज़ार पत्तों वाला कमल थीं और एक तो बिलकुल सचमुच का क़िस्सा था। आपके बचपन की कहानी जो काबुल के बंजारे रहमत की थी। पहली बार आप उसे देखकर डर गई थीं और समझी थीं उसकी झोली में छोटे-छोटे बच्चे भरे हुए हैं, फिर आपकी उससे दोस्ती हो गई थी। वह आपकी बातें सुनता और आपका छोटा सा आँचल बादाम, किशमिश और अख़रोट से भर देता। एक दिन उसने आपसे कहा था कि उसकी छोटी सी झोली में बड़ा सा हाथी है। आपने बताया था कि जिस दिन रहमत बाबा आठ बरस की जेल काट कर आया उसी दिन आपके फेरे होने वाले थे वह किसी दूसरे बंजारे से आपके लिए मेवा माँग कर लाया था और आपको वही मेवा दान करके चला गया था। उसका क़िस्सा जब पहली बार आपने मुझे सुनाया और आपकी आँखों में आँसू आए तब मैंने जाना कि बड़े भी बच्चों की तरह रो सकते हैं। आपने बताया था कि रहमत बाबा की भी आपके बराबर एक बेटी थी। जो काबुल में रहती थी। उसके पास उसकी तस्वीर उतरवाने के लिए पैसे न थे या शायद उस समय फ़ोटोग्राफ़र काबुल में न होते हों, तो उसने अपनी बेटी के हाथ का रंगीन छापा एक काग़ज़ पर ले लिया था और उस काग़ज़ को सीने से लगाए फिरता था। बिलकुल इसी तरह जिस तरह पिताजी मेरी तस्वीर अपने बटुवे में रखते थे। पिताजी और मेरे बड़े नाना जी ने रहमत बाता को काबुल जाने और बेटी से मिलने के लिए कुछ रक़म भी दी थी जिस पर बड़ी नानी जी बहुत नाराज़ हुई थीं। आपने बताया था कि उसके बाद वह फिर कभी नहीं आया।

इन दिनों जब दर्द से चीख़ते हुए, खून में डूबे हुए घायल या दम तोड़ते हुए लोग मेरे पास लाए जाते हैं तो मैं सोचती हूँ कि अब से सत्तर बरस पहले अगर आपने रहमत बाबा की झोली के बादाम और पिश्ते न खाए होते, अगर मेरे बड़े नाना जी ने उसकी कहानी न लिखी होती तो क्या मैं यहाँ काबुल या कन्धार में हिरात या हिलमन्द में होती? शायद नहीं। बल्कि बिलकुल नहीं।

पिछले अक्तूबर के वह दिन मुझे अच्छी तरह याद हैं जब काबुल पर अमरीकी हवाई जहाज़ों ने बम गिराने शुरू किए थे और टी.वी. पर वह बमबारी दिखाई जाने लगी थी। आपने अपनी झूला कुरसी बरामदे से उठवाकर लाउंज में रखवा ली थी और सारा वक़्त टी.वी. के सामने बैठी रहती थीं। माताजी, सुषमा, भैय्या सभी नाराज़ होते थे कि आख़िर आप क्यों अपनी आँखों के पीछे पड़ी हैं। यह तो मैं थी जो असल बात जानती थी, आपकी दोस्ती तो मुझसे रही थी या शायद मैंने होश सँभालते ही आपको इस तरह जाना ही नहीं जैसे

मैं जानती हूँ। साठ बरस से पहले भी बड़े नाना जी ने रहमत काबुली वाले का जो क़िस्सा लिखा था, दुनिया वाले उस कहानी के आशिक हैं। पर हमारे घर में आपके और हमारे अलावा कोई उसकी बात नहीं करता। वह कहानी आपको इसलिए याद रही कि आप उसकी हीरोइन थीं और मुझे इसलिए कि मैंने कई बार आपकी गोद में बैठ कर वह क़िस्सा सुना था।

अमरीकी बमबारी के विरुद्ध कोल कट्टा, क्षमा कीजिएगा बम्बई, मद्रास के नए नाम सुन कर आपको गुस्सा आ जाता है, हाँ तो जब कलकत्ते की सड़कों पर लाखों लोगों का जुलूस निकला तो मैं भी उसमें गई थी, टेलीविज़न पर मेरी एक झलक देखकर आप बहुत खुश हुई थीं और जुलूस में न जाने पर आपने भैय्या और सुषमा को ताने दिए थे। फिर जब सहायता के लिए काबुल के इन्दिरा गाँधी इन्स्टीट्यूट ऑफ़ चाइल्ड डेल्टा की तरफ़ से डॉक्टरों की माँग आई और मैंने वालेन्टियर किया तो यह केवल आप थीं जिन्होंने मुझे आशीर्वाद दी, नहीं तो घर में सभी नाराज़ हुए थे। माताजी का गुस्से से बुरा हाल था, ''भला चलता हुआ अस्पताल छोड़ कर यूँ कुएँ में कूद जाना किस वेद, किस गीता में आया है?'' और आपकी ख़ुशी देख कर उन्होंने कहा था, ''तुम्हारी दादी माँ तो सठिया गई हैं मगर तुम्हें क्या हुआ है कि इस मारा-मारी में जा रही हो?''

मुझे इस बात का दुख होता है दादी माँ बड़े नानाजी और मेरी माताजी आपकी तरह आदर्शवादी नहीं हैं। वह एक सम्पूर्ण रूप से व्यापारिक महिला हैं, न होतीं तो पिताजी के चले जाने के बाद उनका इतना बड़ा व्यापार कैसे सँभालतीं। मैं आप पर और बड़े नानाजी पर गई हूँ, तभी जागती आँखों सपने देखती हूँ।

लीजिए दादी माँ मैं तो चिट्ठी लिखने की जगह किताब लिखने बैठ गई। शायद ऐसा है कि मैंने यहाँ आकर इतने दिनों में आपके नाम कोई चिट्ठी नहीं भेजी तो अब इसकी कमी पूरी कर रही हूँ।

मैं जानती हूँ कि काबुल आपको बिन देखे ही अच्छा लगता है। आपने मुझे बताया है कि बचपन में आपने रहमत बाबा की बेटी को अपनी अनदेखी गुइंय्याँ बना लिया था। ख़यालों में उसकी गुड़िया से अपने गुड्डे का ब्याह रचाती थीं। गुड्डा आपका और गुड़िया उसकी, सो गुड़िया ब्याह कर काबुल से कलकत्ते चली आती है। बड़े नानाजी कहानियाँ लिखते थे और आप उनकी इकलौती चहीती बेटी थीं, आपने अगर अपना अकेला जीवन कहानियों से बहलाया तो इसमें आश्चर्य क्या। लेकिन बड़ी नानीजी ने जब आपसे यह बातें सुनी थीं तो नाराज़ हो गई थीं। भला हिन्दू गुड्डे से मुसलमान गुड़िया का ब्याह कैसे हो सकता है। फेरे होंगे या निकाह? बड़े नानाजी ने यह बात सुनी तो बहुत ख़फा हुए थे, ''तुम औरतों को फ़साद फैलाने के सिवा कुछ आता है? कम से कम गुड्डे-गुड़िया को तो दीन धरम के चक्कर में मत डालो।'' उन्होंने माथे पर बल डाल कर कहा था और बड़ी नानी जी बड़बड़ाती हुई चली दीं। आपने यह बात मुझे हँस-हँस कर सुनाई थी, ''पिता जी का दिल बहुत बड़ा था, उसमें ईश्वर, अल्लाह, हिन्दू, मुसलमान सब रहते थे।'' आपने बड़े नाना को याद करते हुए कहा था और जब मैंने मेडीकल कॉलेज में पहली बार प्रेक्टिकल चीर-फाड़ किया तो उसमें एकदम न जाने क्यों अल्लाह, ईश्वर, हिन्दू, मुसलमान ढूँढ़ा था लेकिन वहाँ तो केवल वेन्ज़ और आर्ट्रीज थीं।

मैं जब काबुल के लिए चली हूँ तो आप प्रार्थना करने बिरला मंदिर गईं, फिर आप नाख़ुदा मसजिद भी हो आईं। घर में जब ड्राइवर ने बताया तो सब आश्चर्यचकित रह गए थे। ''यह मसजिद जाने का क्या तुक था?'' माताजी ने खीज कर कहा था। ''अरे मुझे ख़याल सूझा कि यह मुसलमानों के मुल्क जा रही है तो इसकी रक्षा के लिए हो आऊँ। अल्लाह से कह आऊँ कि मेरी पोती का ध्यान रखियो।'' माता जी का चेहरा आपकी बात सुनकर लाल हो गया था और आपने बहुत सादगी से पूछा था, ''लो बहू, इसमें बुराई क्या है। मेरे पिताजी तो बाउल फ़क़ीरों को घर बुलाते, उनके भक्ति गीत झूम-झूम कर सुनते थे। दान-पुन्न करते थे।'' आपकी यह बातें सुनकर माताजी तेज़-तेज़ क़दमों से चलती ड्राइंग रूम से निकल गई थीं और सबकी नज़रों में चारे बन गई थीं जिसके कारण यह सारी तनातनी हुई थी।

मेरी मोहब्बत में आप मंदिर गईं, मसजिद गईं जबकि आप ख़ुद कुछ-कुछ नास्तिक हैं, सुबह-शाम देवी-देवताओं से आपका झगड़ा चलता है, लोग कहते हैं कि बड़े नानाजी भी बिलकुल ऐसे ही थे। तभी तो मेरे साथ भी काफ़ी गड़बड़ हो गई है। मेरी सखियाँ, संगिनी शायद इसीलिए मुझे गड़बड़झाला कुमारी कहती हैं। आपने ईश्वर अल्लाह से सीधे संवाद करके बड़े इतमीनान से मुझे काबुल भेज दिया, शायद एक बार भी आप इस शहर को सपने में ही देख लेतीं तो मुझे कभी न आने देतीं। यहाँ हर घर की दीवार पर मौत का साया है, हर गली, हर बाज़ार में ख़ून की लकीरें हैं। रहमत बाबा तो न जाने कब का चला गया, उसकी बेटी भी अब कहीं नहीं रही होगी। उसकी औलाद जाने सोवियत टैंकों की गोली से छलनी हुई होगी या अमरीकी बमबारी से, या शायद भुखमरी से मर गई होगी। यहाँ चारों ओर तबाही का राज है, इस मुल्क का हर शहर खंडहर है। मैं घर से चली हूँ तो आपने मेरी हाथों पर प्यार करते हुए कहा था, ''इनसे सारे घाव सी देना।'' लेकिन दादी माँ यहाँ मैं घाव सीते-सीते थक गई पर घायल ख़त्म नहीं होते।

मैंने इन महीनों में आपको या किसी को भी कोई चिट्ठी नहीं भेजी तो इसलिए कि हमें तो निवाला खाने और नींद लेने का भी टाइम नहीं मिलता। हिन्दुस्तानी, जर्मन और जापानी डॉक्टरों की हमारी टीम शहर-शहर फिरती रही है। हम सुबह से शाम तक और रात को जेनेरेटरों की रौशनी में बच्चों, औरतों और मर्दों के बदन से किलस्टर बम के टुकड़े रेज़े चुनते रहे, बारूदी सुरंगों से उड़ जाने वाले हाथों और पैरों के घाव सीते रहे। ख़ून की बू मेरे अंदर बस गई है। पहले पहल मेरा जी चाहा कि इस बू से छुटकारे के लिए अपने कपड़ों और हाथों पर ख़ुशबू की आधी शीशी उंडेल लूँ, लेकिन फिर मुझे शरम आई। जिन्हें महीनों और बरसों से एक वक़्त भी पेट भर खाना न मिलता हो, जिनके नथुनों में सिर्फ़ ख़ून और बारूद की बू हो,

उनके बीच रहते हुए साफ़ पानी से गन्दे हाथ धोना भी नवाबी ठाठ लगता है।

एक समय था दादी माँ कि बामयान और बल्ख़ तक हमारे अशोक और कनिष्क का राज था। लेकिन धरती पर कब किसी एक राजा का राज रहा है। अरब आए, तुर्क आए, चंगेज़ ख़ाँ की फौजें आईं, उसने अपने पोते को बामयान विजय करने भेजा लेकिन वह लड़का लड़ाई में काम आया। चहीते पोते की मौत चंगेज़ ख़ाँ के लिए इतने बड़े सदमे की बात थी कि अपने बामयान की वादी में किसी एक जीवन को जीता न छोड़ने की सौगन्ध उठाई। सौ कोई बच्चा, बूढ़ा, मर्द, औरत जीता न छोड़ा गया। हद तो यह थी कि माँओं के पेट चीर कर उनके बच्चे निकाले गए और टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए। बामयान की गलियों में फिरने वाले कुत्ते-बिल्ली तक ज़िंदा नहीं छोड़े गए, और उसकी हवाओं में उड़ने वाले परिन्दे भी तीरों से बेध दिए गए।

हम बामयान गए तो कुछ देर के लिए वहाँ गए जहाँ पहाड़ों की ऊँची-ऊँची चट्टानों को तराश कर महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ बनाई गई थी। चंगेज़ ख़ाँ ने पोते के इन्तक़ाम में बामयान का कोई जानदार जीता नहीं छोड़ा था। तालिबान ने अपना गुस्सा पत्थर की मूर्तियों पर निकाला। मैंने एक जापानी डॉक्टर की आँखों में आँसू देखे, लेकिन मेरी आँखों में नमी भी नहीं आई। आप ख़ुद सोचें दादी माँ कि जिन्होंने अपने जीते-जागते लोग, अपनी पूरी नस्ल ख़ुद अपने हाथों तबाह कर दी, उनसे इस बात की क्या शिकायत कि उन्होंने महात्मा बुद्ध की वह मूर्तियाँ डाइनामइट से तोप के गोलों से क्यों उड़ा दीं।

चंगेज़ ख़ाँ और उस जैसे दूसरे बादशाहों, राजा, महाराजों का गुस्सा उन शहरों पर उतरता था जो उनके रास्ते में आते थे और उनकी फ़ौजों के ख़िलाफ़ हथियार उठाते थे लेकिन दादी माँ अमरीका का गुस्सा को क़न्धार से कंदोज़ और ख़ोस्त से क़िला-ए-जंगी तक फैला हुआ है। उसके लड़ाका हवाई जहाज़ तो तोरा-बोरा और तालिबान पर बमबारी करते हैं। यहाँ की धरती में बारूदी सुरंगें यूँ बोई गई हैं जैसे किसी खेत में बीज छिड़क दिए जाते हैं, मौत के बीज। बच्चे, बूढ़े, मर्द, औरतें सभी इनका निवाला बनते हैं। जिनके टुकड़े उड़ गए लोग उन्हें भाग्यवान् समझते हैं, नहीं तो यहाँ किसी का एक हाथ नहीं और कोई दोनों हाथ और दोनों पैर गायब हैं। यूँ समझें कि जीता-जागता इंसान गोश्त का ऐसा लोथड़ा बन गया है जिसे भूख लगती है, जो सोच सकता है और अपने होने का दुख भोगता है।

आपको याद होगा मुझे बरसात से कैसा इश्क़ था, जहाँ छींटा पड़ा और मैं बावली हुई। माता जी से कैसी झिड़कियाँ सुनती थी। बस नहीं चलता था कि बारिश के साथ मैं भी नदी-नालों में, दरिया में चल निकलूँ, हाथ-पाँव मिट्टी में सने हों, कपड़ों से पानी टपकता हो। आप साड़ी के पल्लू उड़से हुए मेरे पीछे आवाज़ देती फिरतीं, ''अरी कुमकुम चल अन्दर चल, स्नान करके कपड़े बदल, बीमार पड़ जाएगी।'' साथ ही आप हँसती जातीं, बड़बड़ाती जातीं, ''इस घर में बस एक कुमकुम है जिसका धरती से सच्चा नाता है, नहीं तो इस घर से सारे बच्चे विलायती हो गए हैं, खिड़कियों से झाँक कर मेंह का बरसता हुआ झाला देख लेते हैं, रसोइये ने दाल भरी कचौरियाँ तल दीं तो इन्हें मेज़ पर बैठकर खा लेते हैं, तो भैय्या बरसात के मज़े लूट लिए। अरे बच्चे भला कहाँ ऐसे होते हैं।''

हम दोनों जब पानी में भीगते हुए, छप-छप करते अन्दर आते और चमकती हुई टाइलों वाला फ़र्श हमारे पैरों से गन्दा होता तो माताजी चुपचाप हमें देखतीं। आप इनकी सासु माँ थीं और इससे भी बढ़कर यह कि ख़ुद भी ठकुराइन थीं। बड़े नानाजी दुकानें, मकान, बाग, बग़ीचे अपने देहान्त से पहले ही सब आपके नाम कर गए थे। भला किसी की मजाल थी कि आपसे कोई कुछ कहता। माताजी आपसे कुछ नहीं कह सकती थीं, इसलिए शामत रग्धू दा की आती जिन्हें वह चीख़-चीख़ कर फ़र्श साफ़ करने का हुक्म देतीं। ऐसे में आप चुपके से मेरे कान में कहतीं, ''देख कुमकुम, देख तेरी माँ के कान से धुवाँ निकल रहा है।'' मैं ठी-ठी करके हँसती और नीची आवाज़ में फ़ायर ब्रिगेड मँगाने को कहती। तब आप मेरा कान मरोड़तीं, ''मुँह बन्द रख तेरी माँ ने सुन लिया तो तुझे खाना नहीं मिलेगा।'' ''तो क्या हुआ, आप और मैं टालीगंज क्लब चलेंगे।'' ''टालीगंज क्लब चलेंगे।'' आप हमारी नक़ल उतारतीं, फिर धीमी आवाज़ में डाँटतीं, ''अरे वहाँ जाकर तून तीन दिन का खाना आधे घंटे में ठूँस लेगी, फिर पेट पकड़े फिरेगी। उसके बाद डॉक्टर बनर्जी को बुलाओ, अस्पताल लेकर भागो। ना बाबा तू भूखी ही भली।'' ''आप तो दादी माँ बिलकुल कंजूस मारवाड़ी हैं, अरे थोड़ा सा पिश्ता बादाम दे देंगी तो क्या हो जाएगा, क्या अकाल पड़ जाएगा?'' मैं फिर ठुनकती, फिर मुझे याद आ जाते भुने हुए ख़स्ता नमकीन काजू, बिलकुल सुनहरे रंग के लीजिए यह सब कुछ याद करते हुए मेरे मुँह में पानी आ गया है। ''हाय दादी माँ, मुझे काजू की भूख लगी है। आपकी अलमारी में शीशे का मरतबान भरा है।'' मेरी आँखें जुगनु की तरह चमकने लगीं। आप पहले मुझे घूरतीं, फिर मेरी पीठ पर एक हलका-सा धमक्का जड़तीं। ''मेरी अलमारी में क्या है, क्या-क्या नहीं तुझे कैसे मालूम? बड़ी शरलक होम्ज़ बनी फिरती है।'' ''मुझे सब मालूम है, आप मेरी दादी माँ हैं तो फिर मुझे कैसे नहीं मालूम होगा।'' मैं तीखी होकर कहती।

लीजिए दादी माँ, मैं भी न जाने कहाँ से कहाँ निकल गई। शायद घर मुझे याद आ रहा है, आपकी मसहरी पर औधे लेटने का, और आपसे बहुत सी बातें करने का जी चाह रहा है। इतने दिनों बाद आपसे बातें करने बैठी हूँ तो बरसात के परनाले की तरह बातें सरराटे से बहती चली जा रही हैं। मैं आपको यह बताना चाह रही थी कि जब मैं यहाँ आई तो मुझे बरसात से डर लगने लगा है। यहाँ के बच्चे बरसात में नहा नहीं सकते, काग़ज़ की नाव बनाकर पानी में बहा नहीं सकते, इसलिए कि बरसात का तेज़ पानी बारूदी सुरंगों की जगह बदल देता है, वह जगह जो पहले सुरक्षित थी वहाँ बारूद बिछा दी जाती है।

आपने मुझे बंगाल की भुखमरी के कैसे भयानक क़िस्से सुनाए थे, ऐसी भुखमरी कि जब माँओं ने दो निवाले भात के लिए अपने

बच्चे बेच दिए थे। बड़े नाना जी के सन्दूक़ को एक बार धूप दिखाते हुए आपने इस अकाल से मरने वालों की तस्वीरें भी दिखाई थीं। फुटपाथ पर मरते हुए बच्चों, औरतों और मरदों की तस्वीरें। यूँ जैसे शमशान घाट में मुरदे अंतिम संस्कार के लिए अपनी बारी का इन्तज़ार कर रहे हों। यहाँ भी दादी माँ भूख का राज है। मैंने एक शहर से दूसरे शहर जाते हुए ऐसे हज़ारों बच्चे और औरतें देखीं जिन्होंने सैकड़ों मील की यात्रा की और फिर रिलीफ़ कैम्पों से कुछ दूर पर गिर गईं। बच्चे अपनी हैरान आँखों और औरतें अपनी फटे, चीकट नीले बुरक़ों की जालियों से नीले आकाश को तकती थीं इस इंतज़ार में कि मौत आए और अपने साथ भूख, बीमारी और थकन से मुक्ति का नुस्ख़ा लाए। यहाँ औरतों के साथ जो कुछ हुआ और जो कुछ हो रहा है वह आपको लिखने बैठूँ तो जिस काग़ज़ पर लिखूँगी वह जल जाएगा।

आपकों याद होगा जगन्नाथ यात्रा के लिए कैसी तैयारियाँ हुई थीं। आप मेरे लिए लकड़ी का छोटा-सा रथ मँगवाती, साथ में जगन्नाथ जी की उनके बड़े भैय्या बलराम की और बहन सुभद्रा की मूर्तियों आतीं। आप सूई धागा लेकर उन मूर्तियों के लिए छोटे-छोटे कपड़े सीतीं, फिर उन पर गोटे किनारी से टँकाई होती। रथयात्रा वाले दिन मुँह अँधेरे बाग से फूल तोड़े जाते, हम दोनों मिलकर उसे सजाते और जब मैं नए कपड़े पहन कर अपना रथ लेकर निकलती तो पास-पड़ोस के बच्चों के रथों में मेरे रथ की शान ही निराली होती। शिवरात्रि और दीपावली पर मिट्टी के दिए आते, सफ़ेद बर्फ जैसी रुई के पैकेट आते, बत्तियाँ बनतीं, दिये जलते, शकर के खिलौने मुँह में डालो तो घुल जाएँ। लन्दन, पेरिस घूम आई, एक से एक चाकलेट खाई मगर वह स्वाद आज भी ज़बान पर है। मैंने जब कई तालिबान लड़कों की मरहम-पट्टी, कुछ के आपरेशन किए तो उन्हें ग़ौर से देखती रही, जिनके सिरों पर बचपन में किसी घर की छत न हो, जिन्हें अपनी गोद में बिठा कर कलेजे से लगाने वालियाँ और लोरियाँ सुनाने वालियाँ न हों, जिनके दाँतों ने रसगुल्ला और लड्डू खाते हुए शरारत से किसी माँ, नानी या दादी की उँगलियों पर काटा न हो, जिन्हें किसी ने चुपके से मुट्ठी भर बादाम और किशमिश न दिए हों, जिन्हें किसी दादी या नानी ने कहानियाँ न सुनाई हों, जिनके लिए किसी माँ ने कचौरियाँ न तली हों और मलीदा न बनाया हो वह बड़े होकर तो फिर दूसरों के गले ही काटते फिरेंगे। उनके मन में मिठास और दिलों में दुख समझने की बात कहाँ समा सकती है? दुनिया तालिबान को बुरा-भला कहती है, मैं भी यहाँ आई तो इनके लिए मेरे मन में गुस्सा और नफ़रत थी लेकिन यहाँ आकर वह मेरी समझ में आ गए। किसी ग़रीब और बंजर मुल्क के बच्चों से जब उनका बचपन छिन जाए। जिन्हें बड़ी बहनों ने उँगली थाम कर सहज-सहज चलाया न हो, उनसे आँख-मिचौली न खेली हो, फिर वहाँ तालिबान ही उठते हैं और नफ़रत करते हैं औरतों के नाम से।

इन दिनों मैं जहाँ जी रही हूँ वह अमरीका का वार-थिएटर है। चंगेज़ ख़ाँ का लश्कर औरतों, बच्चों को लहू पिलवाकर आगे बढ़ गया था लेकिन आज के चंगेज़ कहीं नहीं जाते, वह ड्रेकुला की तरह क़ौमों की गर्दन में अपने दाँत उतार देते हैं और ख़ून चूसते रहते हैं। अपने हवाई जहाज़ों से मौत और मक्खन की टिकियाँ, बिस्किट के पैकेट और बारूदी सुरंगें एक साथ फेंकते हैं।

एक बार बड़े नाना के सन्दूक का सामान जब आप धूप दिखा कर वापस रख रही थीं तो आपने मुझे वह मैला सा काग़ज़ दिखाया था जो आपके ब्याह के दिन रहमत बाबा की झोली से गिर गया था। बड़े नानाजी ने वह सँभाल कर रख लिया था कि रहमत अगर कभी आया तो उसे देंगे, लेकिन वह फिर कभी नहीं आया और उसकी बेटी के छोटे से हाथ का रंगीन छापा आज भी बड़े नाना जी के सन्दूक़ में रखा हुआ है।

काबुल की गलियों में दादी माँ मुझे आपके बचपन का हीरो तो क्या मिलता, उसकी बेटी, उसकी नवासियाँ और पोतियाँ भी नहीं मिलीं, मिलतीं भी तो कैसे कि वह सब घर की काल कोठरियों में ख़ाक हो गईं। उसकी किसी पड़पोती या पड़नवासी की हथेलियाँ भी न हों जिनके रंगीन छापे उनके चाहने वाले बाप अपने कलेजे से लगाए फिरें। मैंने उन लड़कियों की कलाइयों के घाव सिए हैं, जिनकी हथेलियाँ नहीं रहीं, जो अब कभी ईद पर मेहँदी नहीं लगाएँगी, चूड़ियाँ नहीं पहनेंगी। मेरी सहेली रज़िया तो आपको अब तक कैनेडा से कार्ड भेजती रहती है। हर ईद बक़रीद पर मेहँदी लगवाने वह आपके पास दौड़ी-दौड़ी आती थी, ''दादी माँ जैसी मेहँदी आपने होली पर कुमकुम के लगाई थी, वैसी ही मुझे भी लगाना।'' ''अरी बावली हुई है, मुझे भला क्या याद होगा कि कैसे फूल-बूटे बनाए थे। बस अब चुपकी बैठी रह, हाथ मत हिलाओ।'' आप उसे डाँटतीं और बारीक सींक से उसकी गुलाबी हथेलियों पर यूँ फूल-बूटे बनातीं जैसे कढ़ाई कर रही हों। यहाँ हज़ारों लड़कियाँ ऐसी हैं जिनकी हथेलियों के लिए ईद-बक़रीद अब कभी नहीं आएगी।

आपने मुझे सुनाया था कि प्लासी में सिराजुदौला जब कम्पनी बहादुर की फ़ौजों से हार गए और बंगाल पर कम्पनी का राज हुआ तो अंग्रेज़ों ने ढाका की मलमल बुनने वाले बुनकरों के अँगूठे कटवा दिए थे। सुनाते हुए आपकी आँखों में आँसू आ गए थे। मैंने आपके आँसू पोंछते हुए पूछा था कि ऐसा क्यों हुआ था, तब आपने बताया था कि ढाका की मलमल का थान अँगूठी के छल्ले में से गुज़र जाता था। हमारे बुनकरों की कारीगरी के आगे मनचेस्टर की मिलों में तैयार होने वाले कपड़े का चिराग़ नहीं जलता था सो उन्होंने हमारे बुनकरों के अँगूठे उड़ा दिए।

यहाँ जब मैं बारूदी सुरंगों से उड़ी हुई हथेलियाँ देखती हूँ, इनके घाव सीती हूँ तो छिप-छिपकर रोती हूँ। हमने तो अंग्रेज़ों को अपने देस से निकाल दिया था, अब दोबारा से उनके भाई-बन्धु हमारे पास-पड़ोस में कहाँ से आन बैठे? हमारे अँगूठों, हथेलियों, पैरों और सिरों की भेंट कब तक इनकी चौखट पर चढ़ती रहेगी?

कलिंग के मैदान में जीते हुए अशोक ने जब लाखों सिपाहियों की लाशें देखीं तो उसका दिल दुनिया से उठ गया था। उस रोज़ उसने केवल तलवार ही नहीं तोड़ी थी, उस दिन के बाद हज़ारों मील पर फैले हुए

उसके राजपात में हर सिपाही की तलवार को जंग लगता रहा था। आज के ये राजे-महाराजे राम जाने किस मिट्टी के बने हैं कि दूसरे मुल्कों को अपने क़ब्ज़े में करते जाते हैं और फिर भी धरती पर फैलते जाने की भूख किसी तरह नहीं मिटती? यह क़ौमों को, नस्लों को खाते हैं और फिर अगले मुल्क की ओर बढ़ जाते हैं? कुरुक्षेत्र का एक नया मैदान सजाते हैं। मैंने दादी माँ लाशों के ढेर देखे, वह खेलते हुए बच्चे जिन्हें हवाई जहाज़ों से होने वाली गोलियों की बौछार ने सुला दिया था, वह औरतें तो अपनी जान बचाने के लिए भागी थीं और जिनके बुरक़े और बदन एक साथ छलनी हुए थे। मैंने उन दूल्हों और दुल्हिनों के बदन से गोलियाँ निकाली हैं जिनकी बरातों को दहशतगर्दों का टोला कहकर उन पर गोलियाँ बरसाई गईं, बम मारे गए।

फिर दादी माँ एक रात मुझ पर अजीब गुज़री। हम बामयान और शबरग़ान से होते हुए दशत-ए-लैला में कैम्प कर रहे थे; जहाँ टेलीविज़न चैनलों के और अख़बारों के लोगों की डार उतरी थी। तालिबान की उन गुप्त गुफाओं की ख़बरों और तस्वीरों की तलाश में जिन्हें कनटेनरों में मज़ारे शरीफ़ से शबरग़ान लाया गया और वह सब दम घुटने से मर गए थे तो उन्हें ख़न्दक़ें खोद कर दशत-ए-लैला में दफ़न कर दिया गया। बरसों पहले जब तालिबान ने इस इलाक़े पर विजय पाई तो यहाँ के लोगों का क़त्ल-ए-आम किया और उसे छिपाने के लिए गुप्त गुफाओं में दफ़न किया, अब समय उनके लिए लट्टू की तरह घूम गया, तो उनका बिस्तर भी दशत-ए-लैला की ख़ंदक़ों में लगा। दशत-ए-लैला को यूँ समझें दादी माँ जैसे हमारे राजपूताने के रेतीले मैदानों की छोटी सी आबादी। कच्चे घरों की इस बस्ती पर बमबारी हुई थी। सो लोगों के पास न खाने को कुछ न सिर छिपाने को। हम एक दिन के लिए वहाँ कुछ ज़ख़्मियों की देखरेख के लिए रुके थे। शाम हुई और काम ख़तम हुआ तो मैं थकन से निढाल अपने ख़ेमे में पहुँची और बिस्तर पर लेटते ही सो गई। अचानक किसी आवाज़ से मेरी आँख खुली तो ख़ेमे में अँधेरा था। यूँ लगा जैसे कोई जानवर ख़ेमे को अपने नाख़ूनों से खुरच रहा हो। मैं कुछ सोचे-समझे बिना हड़बड़ा कर अपने ख़ेमे से बाहर आ गई। आकाश पर माघ का चाँद, ज़मीन पर दशत-ए-लैला की रेत, कुछ दूरी पर गहरी ख़ंदकें थीं और मेरी निगाहों के सामने मेरे ख़ेमे से टेक लगाए हुए रेत पर एक लड़का। कमीज़ पर ख़ून के सूखे और ताज़ा धब्बे, आँखों में भय, सारे बदन से काँपता हुआ, वह किसी अमरीकी गोली का शिकार था, और अब गिरता-पड़ता, छिपता-छिपाता हमारे कैम्प तक आ पहुँचा था। जाने कब ज़ख़्मी हुआ था। यह सोच कर ही मेरे होश उड़ गए कि कहीं वह हथियारबन्द न हो। पहले मैंने सोचा किसी गार्ड को आवाज़ दी जाए। लेकिन फिर दादी माँ ऐसी अनहोनी हुई कि उसे लिखते हुए इस समय भी मेरे रोंगटे खड़े हो गए हैं। देखते ही देखते उस लड़के का चेहरा कुछ से कुछ हो गया। उसने पैरों के पास पड़ी हुई झोली से कुछ निकाला और मेरी ओर बढ़ाया। मैंने उसके हाथ की ओर देखा, उसमें बादाम, किशमिश और अख़रोट थे। वह आपको आवाज़ दे रहा था। मैंने घबरा कर उसके चेहरे पर नज़र की, ईश्वर की सौगन्ध उठाती हूँ माघ के चाँद की रोशनी में वहाँ रहमत बाबा था, उसकी क़मीज पर ख़ून के धब्बे थे, बड़े नानाजी ने लिखा था कि माघ के महीने में घर लौट जाता था। मेरी आँखों से आँसू आ गए। आपके बचपन, नानाजी की कहानी को मैं कैसे गिरफ़्तार कराती? मैं उसे अपने ख़ेमे में ले आई। दादी माँ उस रात को मैंने मौत अपनी आँखों से देखी, अपने हाथों से छुआ। उस रात मैंने जाना कि गोली दोस्त की हँसली में लगे या दुश्मन की पसली में उसे निकालना मेरा मुकद्दर है। उस रात उस लड़के के घाव सीते हुए मैं न उसकी सुन सकी न अपनी कह सकी। इसलिए दादी माँ कि हम दोनों एक-दूसरे की ज़बान नहीं जानते थे। उस समय मुझे आपका ध्यान आता रहा और उन लोगों के क़िस्से याद आते रहे जो आपने मुझे सुनाए थे। टीपू सुल्तान, सिराजुदौला, बाबू कुँवर सिंह, लक्ष्मी बाई, बेगम हज़रत महल...

उस रात जब पौ फटने वाली थी, मैंने उसे एक थैले में कुछ दवाएँ, खाने के डिब्बे और कम्बल दिया, और जाने का इशारा किया। वह मुझे देखता रहा फिर लड़खड़ाता हुआ उठा, वह थैला और कम्बल कन्धे पर डाल रहा था कि मुझे ख़याल आया, मैंने सिरहाने पड़े हुए पर्स से कुछ पैसे निकाले, उसने सिर हिला कर लेने से इनकार किया। उसकी आँखों में आँसू थे, मैंने दादी माँ नोट उसके हाथ में रखकर मुट्ठी बन्द कर दी। वह कुछ क्षणों तक मुझे देखता रहा, फिर उसने वही हाथ माथे पर ले जाकर मुझे सलाम किया, थैला और कम्बल कन्धे पर डाला और ख़ेमे से निकल गया, मैं उसे जाते हुए देखती रही। कोहरे और चाँदनी की धुन्ध में लिपटा हुआ अकेला उदास। थोड़ी दूर चलकर वह पलटा और मेरी ओर देखा। वह हारे हुए क़बीले की आँखें थीं। फिर उन सब आँखों ने मेरी ओर से मुँह फेर लिया और चलती चली गई। इतिहास और एकान्त की अंधी गुफाओं की ओर। तराई के जंगलों और दशत-ए-लैला में फैली हुई गुमनाम क़ब्रों की ओर। उस पल समय मुझ पर से सन सन करता गुज़र गया। मेरी उम्र पर लगा कर उड़ गई। अब मैं हज़ार बरस की हूँ। आप भाग्यवान् हैं दादी माँ कि आपने इतिहास से हार जाने वालों का क़िस्सा पढ़ा है, उनकी आँखों में उतरा हुआ तनहाई का ज़हर नहीं देखा।

रहमत काबुली वाला आपके बचपन की सुन्दर सुहानी याद थी लेकिन उस रात वह आपकी कुमकुम को दर्द का दोशाला उड़ा गया। अच्छा हुआ कि बड़े नानाजी गुज़र गए। वह इस जमाने में होते तो प्रताप सिंह और कंचन माला की कहानी लिखने की जगह धरती के घाव लिखते, उनकी खोई हुई हथेलियों का क़िस्सा लिखते जिन पर अब कभी मेहँदी नहीं लगेगी।

यहाँ कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा है, जेनेरेटर से निकलने वाली गरमी के होते भी मेरे अन्दर ठंड फैल रही है। और क्या लिखूँ? सब कुछ तो मैंने आपको लिख दिया है। माता जी को या घर में किसी और को कुछ मत बताइएगा। यही कहिएगा कि काबुल में कुमकुम बहुत आराम से है।

– आपकी कुमकुम

***

आख़िरकार विकास मिल गया

मोहन लाल मौर्य

विकास के बारे में बचपन से सुनता आया हूँ, पर कभी देखा नहीं। अक्सर दादा-दादी, नाना-नानी विकास की बातें करते रहते थे। विकास ऐसा है। विकास ऐसा होगा। देखना एक दिन विकास अपना ही नहीं समूचे देश का नाम रोशन करेगा। विकासशील देश कहेंगे, देखो! भारत का विकास कितना विकसित हो गया है और हम वहीं की वहीं हैं। हमें भी भारत के विकास से प्रेरणा लेने चाहिए। जब वे विकास से प्रेरणा लेने भारत आएँगे तो हमारी अर्थव्यवस्था मज़बूत होगी। ऐसा दादा-दादी और नाना-नानी ही नहीं, बल्कि मेरे अड़ोसी-पड़ोसी भी सोचते थे। उस वक्त मैं सोचता था कि आख़िरकार विकास किस चिड़िया का नाम है, जिसको होते हुए भी मैंने देखा नहीं। जब समझ आई तो विकास गायब हो गया।

दादा-दादी और नाना-नानी को विकास से बहुत अपेक्षाएँ थीं। पर एकाएक जबसे विकास गायब हुआ है। वे बहुत दुखी हैं। वे ही नहीं अड़ोसी-पड़ोसी सब दुखी हैं। विकास का इस तरह से गायब होना, मुझे भी अच्छा नहीं लगा। वह खुद गायब हुआ है या फिर किसी ने उसका अपहरण किया है। यह भी तो पता नहीं। किसी को कुछ बताकर भी नहीं गया और ना ही कोई चिट्ठी-पत्र लिखकर गया। जिसमें लिखा हो कि मैं अमुख जगह जा रहा हूँ, जल्दी ही लौटकर आ आऊँगा, मेरी चिंता मत करना। मैंने भी उसकी तलाश में गाँव की गलियाँ और शहर के नगर के नगर छान मारे, पर वह मिल नहीं रहा है। चाय की थड़ी से लेकर मॉल तक और सड़क से लेकर संसद तक खोज लिया। लगता है किसी ने अपहरण कर लिया है। फिरौती मिली नहीं होगी। इसलिए बीहड़ों में कहीं छुपा कर रख रखा होगा। फिरौती मिलते ही छोड़ देंगे। पर मेरा मन कहता है उसने किसी का क्या बिगाड़ा है? जो उसका अपहरण करेंगे। वह तो सबसे मिल-जुलकर रहता है। नहीं...नहीं...ऐसा नहीं हो सकता। हो क्यों नहीं सकता? अधुनातन में कुछ भी हो सकता है। फिर विकास का तो नेताओं से ताल्लुक रहा है। जो माँगेगे वहीं हाज़िर हो जाएगा। यह सोचकर किसी ने अपहरण कर लिया होगा। खैर, जो भी हुआ हो। मुझे तो विकास को ढूँढ़ना है। आप सोच रहे होंगे। मैं विकास को क्यूँ ढूँढ़ रहा हूँ? मैं विकास को इसलिए ढूँढ़ रहा हूँ, क्योंकि विकास के बगैर विकास अधूरा है और मैंने उसे देखा भी नहीं।

जब मैं विकास को ढूँढ़ रहा था तो एक महाशय ने राय दी कि विकास का अपहरण हुआ होगा तो गुमशुदगी की रिपोर्ट अवश्य दर्ज हुई होगी और रिपोट दर्ज नहीं हुई हो तो तुम करवा देना। गुमशुदगी रिपोर्ट की जानकारी लेने मैं नज़दीकी थाने में जा पहुँचा। वहाँ जाकर सीधे ही थानेदार साहब से पूछा-' साहब! आपके यहाँ पर विकास नाम से कोई गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज हुई है क्या?' यह सुनकर थानेदार साहब बोले-'आप बैठिए बताते हैं।' उन्होंने एक सिपाही को बुलाया और उससे कुछ कहा जो मैं नहीं सुन पाया। शायद रिकॉर्ड में देखकर बताने के लिए कहा होगा। जाओ जाकर रिकॉर्ड में देखकर आओ। विकास नाम से रिपोर्ट दर्ज हुई है क्या? ऐसा मुझे उनके हाव-भाव से प्रतीत हुआ। थोड़ी देर बाद वह सिपाही दो-तीन फ़ाइल लेकर आया और थानेदार साहब को सौंप दिया। थानेदार साहब उन्हें देखकर इनकार करते हुए बोले-'यहाँ तो विकास नाम से गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज नहीं हुई है।' मैंने एक बार फिर से निवेदन किया-'साहब अच्छी तरह से देखकर बताए। शायद रिपोर्ट दर्ज हुई होगी। विकास का इस तरह से लापता होना। आमजन के लिए चिंता का विषय है। इसके बगैर आमजन परेशान है।' यह सुनकर थानेदार साहब आश्चर्य चकित होते हुए बोले-'भाई! आप किस विकास की बात कर रहे हो। आख़िर यह विकास क्या बला है? मैं समझा नहीं।' मैंने कहा-'साहब! विकास के बिना विकास अधूरा है।' यह सुनकर

संपर्क: ग्राम पोस्ट चतरपुरा, तहसील बानूसर,जिला अलवर (राज.)पिनकोड़ 301024, मोबाइल: 9636155555
ईमेल:
mohanlalmourya@gmail.com

थानेदार साहब चौंके और बोले-' अच्छा-अच्छा तो आप उस विकास की बात कर रहे हो। अरे, भाई! उस विकास के संदर्भ में तो भला मैं क्या बता सकता हूँ ? बलात्कार, चोरी, डकैती, लूट-पाट, मारपीट की कोई बात हुई हो तो बताओ, हम ढूँढ़ कर ला देंगे।'

'साहब ! रिपोर्ट दर्ज नहीं हुई है, तो अब कर लीजिए।' थानेदार साहब बोले-' जिसका कोई अता-पता ही नहीं। उसकी भला मैं रिपोर्ट कैसे दर्ज करों? तुम्हीं बताओ!' मैं क्या बताता ? मैं चुपचाप चला आया।

थाने से सीधा चम्बल के बीहड़ में गया। डाकूओं के भय से भयभीत था। भय था कहीं कोई डाकू आकर कनपटी में बंदूक नहीं तान दे। कुछ कह पाऊँ उससे पहले टपका नहीं दे। बीहड़ इलाके में जाना हथेली पर जान रखकर जाना होता है। पर मुझे विकास को ढूँढ़ना था। बड़ी मुश्किल से डरता-डरता गया। एक-एक डाकू से पूछा विकास तुम्हारे पास है क्या? पर सबने इनकार कर दिया। एक डाकू ने अवश्य पूछा-'ज़रा विकास का हुलिया तो बताओं। उसकी कद-काठी, रंग-रूप, उम्र, क्या है? दिखता कैसा है?' दरअसल मैंने भी कभी विकास को देखा ही नहीं। मैं क्या बताता? दिखा होता तो थानेदार साहब को ही बताकर रिपोर्ट दर्ज करवा देता। मैं बोला-'विकास को देखा तो मैंने भी नहीं।' इस पर पहले तो वह शोले के गब्बर की तरह हँसा। फिर बोला-'जब तुमने विकास को देखा नहीं तो ढूँढ़ने क्यूँ चले आए। विकास से तुम्हारा रिश्ता क्या है?' मैंने कहा-'खून का रिश्ता तो नहीं है, पर दिल का रिश्ता है। वह सबका प्रिय है, तो मेरा भी प्रिय हुआ।' यह सुनकर डाकू बोला-'मैं कुछ समझा नहीं। सीधे-सीधे कहो। कहना क्या चाहते हो? तुम किस विकास की बात कर रहे हो।' मैंने कहा-'मैं किसी विकास नाम के व्यक्ति को नहीं। बल्कि उस विकास को ढूँढ़ रहा हूँ, जिसके संदर्भ में लोग अक्सर वार्ता करते रहते हैं। नेताजी चुनाव के वक्त विकास-विकास पुकारते रहते हैं।' यह सुनकर डाकू ज़ोर-ज़ोर से डरवानी सी हँसी हँसने लगा और बोला-'वह विकास यहाँ बीहड़ों में नहीं। इस वक्त जहाँ चुनाव हो रहे है वहाँ मिलेगा।'

मैं वहाँ पहुँचा, जहाँ चुनाव हो रहे थे। वहाँ किसी नेताजी की रैली निकल रही थी तो किसी का भाषण चल रहा था। जिधर देखों उधर ही माहौल चुनावी रंग में रंगा हुआ था। चुनावी रंग-बिरंगे माहौल में विकास को ढूँढ़ना घास में सुई ढूँढ़ना था। कई नेताओं से भी पूछताछ की विकास कहाँ मिलेगा? पर किसी ने भी संतोषजनक जवाब नहीं दिया। बड़ी मुश्किल से एक नेताजी ने मुँह खोला और बोला-'विकास उन सड़कों पर मिलेगा। जिनका मैंने निर्माण करवाया है और उद्घाटन किया है। वहाँ नहीं मिले तो उस गाँव में मिलेगा। जिसको मैंने गोद लिया है। अगर वहाँ भी नहीं मिले तो विकास सामुदायक भवन में मिलेगा। मैंने गत दिनों ही उद्घाटन किया है।' नेताजी ने जहाँ-जहाँ बताया, वहीं जाकर देखा पर कहीं भी नहीं मिला। एकाएक एक चुनावी घोषणा पत्र पर मेरी नज़र पड़ी। मैंने देखा कि घोषणा पत्र में लोक लुभावनी योजनाओं के साथ विकास भी था। दुबला-पतला, तीखे नैन नक्ष, हिरण सी आँखें, घने काले बाल, पर उसके चेहरे पर चमक थी। मैंने पहली बार विकास को देखा था। मैं भागकर उसके पास गया और उससे पूछा-'क्यान तुम्हींक विकास हो।' उसने पहले तो मेरे को निहारा फिर बोला-'हाँ, मैं ही विकास हूँ।' मैंने कहा-'तुम्हें कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढ़ा और तुम हो कि यहाँ दुबके पड़े हो।' वह बोला-'मैं यहीं ठीक हूँ। तुम जाओ, किसी को बताना मत। मैं यहाँ पर हूँ।' मैंने उसको समझाते हुए कहा-'तुम्हारी जगह यहाँ नहीं है, वहाँ है, जहाँ तुम्हें होना चाहिए।' यह सुनकर वह बोला-'वहाँ जाकर क्या करूँगा? जहाँ हर कोई ताना मारता है। यहाँ विविध योजनाओं और वादों के साथ खुश तो हूँ।' मैंने विकास को बहुत समझाने की कोशिश की पर वह नहीं माना। मैं उसको घोषणा पत्र में देखकर इसलिए चला आया। चलो! आख़िरकार विकास मिल तो गया। अन्यथा पाँच साल तक ढूँढ़ना पड़ता।

* * *

ग़ज़लें

डॉ. 'कुमार' प्रजापति

मैं अगर दरम्याँ नहीं होता
ऐसा हिन्दुस्ताँ नहीं होता
प्यार लोगों में बाँटकर देखा
प्यास में कुछ जियाँ नहीं होता
उसका इज़हार आँख करती है
जो ज़बाँ से बयाँ नहीं होता
नाव नहीं लगती किनारे से
तू अगर बादबाँ नहीं होता
उड़ने वाला जमीं पे आएगा
वो सरे-आसमाँ नहीं होता
तन के क़ातिल से बात करता है
हौसला बेज़बाँ नहीं होता
आँख रोए तो अश्क बहते हैं
दिल जले तो धुआँ नहीं होता
उसका सिक्का 'कुमार' चलता है
ज़िक्र उनका कहाँ नहीं होता

* * *

आदमी की आँख क्या है
दिल का सीधा रास्ता है
किसके रोके से रुका है
वक़्त तो इक बेवफ़ा है
जिस जगह वो बरहना है
आइना ही आइना है
सीना ताने घूमता है
ये उसी का हौसला है
फेर कर मुँह चलने वाला
वो मिरा ही आश्ना है
हाथ में कुछ भी नहीं है
आपकी औक़ात क्या है?
हाथ खूँ से रँगने वाला
वो 'कुमार' अब देखता है

* * *

संपर्क : प्रजापति भवन, मेन रोड,
राउरकेला-769001 (ओड़िशा)
मोबाइल : 09437044680
krishnaprajapati2007@gmail.com

कुत्ता लाओ, हुकुम बचाओ!

अशोक गौतम

हे मेरे देशवासियो ! आपको यह जानकर अति दु:ख होगा कि हमारे जिला हुकुम का वफ़दार कुत्ता पिछले चार दिन से कहीं लापता हो गया है। कुत्ते के गुम होने के बाद पूरे जिले में रेड अलर्ट जारी कर दिया गया है। जिले में जिलाई शोक घोषित करने के साथ- साथ यह भी घोषणा कर दी गई है कि, जिले के हर खास एवं आम नागरिक को ध्यान रहे- जिला हुकुम का कुत्ता न मिलने तक जो कोई भी, कहीं भी, हँसता हुआ पाया जाएगा, कोई जश्न मनाता हुआ पाया जाएगा, उसे आईपीसी की किसी भी धारा के अंतर्गत अरेस्ट किया जा सकता है। कुत्ता न मिलने तक जिले के सारे समारोह बिना आदेश ही कुत्ता मिलने तक स्थगित किए जाते हैं।

हे मेरे देशवासियो! कल तक जिस जिला हुकुम के ऑफिस में मर्दानगी का नंगा नाच होता था, चार दिन से वहाँ मुर्दानगी छाई है। जिस कोने में भी देखो सन्नाटा पसरा है। जिस कर्मचारी को भी देखो चेहरे पर चिकनगुनिया -खसरा है।

आज चार दिन हो गए जिला हुकुम के कुत्ते को गुम हुए। दुखद, उसका अभी तक कोई सुराग नहीं लग पाया है। घर में मेम हुकुम का रो- रोकर बुरा हाल तो ऑफिस में हुकुम का। दोनों की रो- रोकर आँखें सूज गई हैं। परंतु दु:ख की बात है, चुस्त- दुरूस्त प्रशासन को उसका कहीं अता पता नहीं चल रहा। पुलिस वालों ने दूसरे सब काज बंद कर धरती - पाताल सब एक कर दिए हैं, आकाश में हवाई जहाज़ की व्यवस्था हो तो आकाश में भी ढूँढ़ आएँ, पर कुत्ता तो कुत्ता, कुत्ते की पूँछ का बाल तक नहीं ढूँढ़ पाए हैं अभी तक बेचारे। सारे खबरिए फेल हो गए हैं। हे कुत्ते! तुमसे अधिक तुम्हें न ढूँढ़ पाने के चलते पुलिस वाले शर्मिंदा हैं। तू ही बता, तुम्हें न ढूँढ़ पाने के चलते भी हम अब तक क्यों ज़िंदा हैं?

विश्वस्त सूत्रों का कहना है कि चार दिन पहले कुत्ता सरकारी खजाने पर पलते नौकर के साथ मार्निंग वॉक करने निकला था। अचानक पता नहीं कैसे वह अपने नौकर को गच्चा दे गायब हो गया। समझ में नहीं आ रहा, इसे नौकर की लापरवाही कहा जाए या कुत्ते की चालाकी? पहले तो नौकर ने सोचा कि वह इधर-उधर झाड़ियों में मस्ती कर रहा होगा, पर जब वह कहीं नहीं दिखा तो नौकर के पसीने छूटे। हुकुम को डरते हुए कुत्ते के गुम होने की खबर दी तो हुकुम ने उसे वहीं से सीधे उसके विभाग भेज दिया गया।

कहने वाले तो ये भी कह रहे हैं कि कुत्ता जवान हो गया था। उसे जबरदस्ती जंज़ीरों में बाँध कर रखा जा रहा था। पड़ोस वालों का तो यहाँ तक कहना है कि कुत्ता कुछ दिनों से अपसेट सा था। वह अजीब सी हरकतें कर रहा था।

प्रत्यक्षदर्शियों का दबी जुबान में कहना है कि उसे प्रेम करने का मौका नहीं दिया जा रहा था। उसके दिल में प्रेम हिलोरें लेने लगा था। प्रेम तो सभी को अंधा करके रख देता है। चाहे

संपर्क:
गौतम निवास, अप्पर सेरी रोड़
नज़दीक मेन वाटर टैंक, सोलन-173212
हि.प्र. मो 9418070089

कुत्ता ही क्यों न हो। जिसके पास भी दिल होता है, वह प्रेम में एक न एक दिन अंधा हो ही जाता है, आँखें उसके पास हों या न। इसलिए संभव है मौका पाकर अमीरी ग़रीबी की दीवारें तोड़ किसी के साथ हो लिया हो।

और वह ऐसा किसी के साथ गया कि आज चार दिन हो गए, लौट कर नहीं आया। शायद उसे पता चल गया हो कि प्रशासन की देखरेख में और तो सब कुछ हो सकता है, पर प्यार नहीं।

असल में वे ही उसे प्रेम-प्यार के चक्कर में नहीं पड़ने देना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि कोई उसे भी प्यार में दगा दे जाए। प्रेम में दगा खाने के बाद दिल की क्या स्थिति होती है वे भली भाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने यह तय कर लिया था कि वे कुत्ते को और तो सबकुछ करने देंगे, पर प्रेम नहीं। लिव इन में चलना हो तो चलता रहे। उन्होंने इस बारे में कुत्ते से शपथ पत्र भी ले रखा था।

दोस्तो! हुकुम को कुत्ते के बिना हुकुम का घर ही नहीं पूरा जिला खाली- खाली लग रहा है। किसी को भी विश्वास ही नहीं हो रहा है कि विदेशी कुत्ता भी ऐसा कर सकता है। अपने रिश्तेदारों से अधिक उन्हें इस कुत्ते पर भरोसा था। स्वर्ग से भगवान् ने उनके मन में अपने जिला की जनता से अधिक अपने कुत्ते के प्रति प्रेम देखा तो उनकी आँखें भी भर आईं और वे स्वर्ग से ही उनके कुत्ते की सलमाती की दुआ करने लगे।

जनता के ध्यानार्थ! कुत्ते के गुम होते ही सारी सरकारी मशीनरी जनता की ओर से हटाकर हुकुम के कुत्ते को ढूँढ़ने में तैनात कर दी गई है। जिला ऑफिस अनिश्चितकाल के लिए बंद हो चुका है। उनके एक खास भक्त ने जिला में जिला शोक घोषित करते हुए राष्ट्रीय ध्वज आधा झुका दिया है।

उनके ऑफिस के सारे कर्मचारी दिन में भी सरकारी फंड में से खरीदी टार्चें लिए हुकुम के कुत्ते को अपनी सूँघने की शक्ति को तेज़ कर खोजने इधर -उधर निकल पड़े हैं। उनमें से कुछ तो कुत्ता ढूँढ़ने के बहाने अपने घर में लेटे पड़ें हैं तो कुछ अपनी प्रेमिकाओं के साथ फिल्म देखने में व्यस्त हैं।

अख़बार वालों और टीवी वालों को प्रेस नोट कुत्ते की फोटो सहित जारी किए जा चुके हैं। अख़बार वालों ने प्रमुखता से हुकुम के कुत्ते के गुम होने की ख़बर को बॉक्स में कुत्ते के फोटो सहित इस उम्मीद में प्रकाशित किया है कि भविष्य में उन्हें कम कमीशन पर जिला हुकुम अधिक से अधिक सरकारी विज्ञापन देंगे।

हे अपनी गुमशुदा संतानों को ढूँढ़ते माँ-बापो! शौचालय से लेकर पुस्तकालय की दीवारों तक पर कुत्ते के गुमशुदगी के रंगीन पोस्टर तुम्हारे बच्चों की गुमशुदगी के पोस्टरों पर लगाए जा चुके हैं, जिसमें कुत्ते की उम्र, कद, रंग, स्वभाव, रुचियों, अभिरुचियों का विशेष रूप से जिक्र किया गया है। कुत्ते की गुमशुदगी के पोस्टर के अंत में कुत्ते से घर आने की भावपूर्ण अपील इस ढंग से की गई है कि जो उसे गधा भी पढ़े तो वह भी अपने मालिक के पास आने को बेताब हो उठे। पोस्टर में सबसे नीचे जिला हुकुम के ऑफिस के सारे नंबर हेल्पलाइन नंबर के रूप में दिए गए हैं। कुत्ते को ढूँढ़ कर लाने वाले, उसका पता बताने वाले को सरकारी नौकरी इनाम में देने की घोषणा भी लिखी गई है। अंत में हुकुम और उनकी बीवी की ओर से कुत्ते के आगे दोनों हाथ जोड़ भावभीनी अपील सुनहरे रंग में छापी गई है- हे डियर टॉमी! तुम जहाँ भी हो, यह पोस्टर पढ़कर तुरंत घर चले आओ प्लीज़! हम तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे। तुम्हारे बिना पूरा जिला ही सूना- सूना हो गया है। देख लेना, हुकम को कुछ हो गया तो उनकी आत्मा तुम्हें कभी माफ नहीं करेगी। उन्होंने सरकारी फंड में से तुम्हें क्या- क्या नहीं खिलाया!

कुत्ते के बिना दिन प्रति दिन व्यवस्था की हालत नाज़ुक होती जा रही है। पर दुखद, न तो कुत्ता अभी तक किसी को कहीं दिखा है, और न ही पोस्टर पढ़ लौट कर आया है। खोजबीन जारी है। धन की तंगी नहीं, कर्मचारी से लेकर लारी तक सब सरकारी है।

***

ग़ज़लें

प्रदीप कांत

अपनी ही परछाई से खुश
लोग रहे तन्हाई से खुश
दर्प गगन का है ऊँचाई
सागर है गहराई से खुश
जनता को भरमा रक्खा है
राजा इस दानाई से खुश
ख़ुद से आगे दिखे न कोई
वो हैं इसी ख़ुदाई से खुश
फिर तारीख़ मिली है अगली
मुलज़िम है सुनवाई से खुश
एक उन्हें लाखों भी कम हैं
हम हैं इधर दहाई से खुश

***

और कहें सच्चाई क्या जी
हमने आँख चुराई क्या जी
साथ साथ चलती रहती है
और करे परछाई क्या जी
जितना याद रहा, लौटा दो
गिनना पाई पाई क्या जी
नदी उफनती पार करा दें
दोगे पर उतराई क्या जी
आप हुए खुश मिलकर हमसे
अपनी और कमाई क्या जी
उसने अगर लगा भी दी थी
तुमने आग बुझाई क्या जी

***

संपर्क : डी-8, सेक्टर-3, केट कॉलोनी,
इन्दौर - 452 013, मध्य प्रदेश
मोबाइल : 94074 23354
इमेल: kant1008@rediffmail.com,
kant1008@yahoo.co.in

अरब देश की औरतें
हव्वा का पर्दानशीन चेहरा

प्रस्तुति एवं अनुवाद: सुधा अरोड़ा

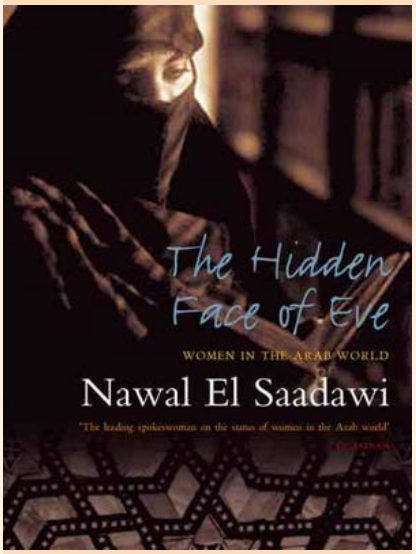

सामाजिक कार्यकर्ता और रचनाकार डॉक्टर नवल अल सादवी ने अपनी पुस्तक 'द हिडेन फेस ऑफ ईव: वीमेन इन द अरब वर्ल्ड' में सुन्नत की क्रिया का दिल दहला देने वाला वर्णन प्रस्तुत किया है।

सुन्नत की अमानवीय प्रथा को समाप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कोशिशें की गई हैं। 1994 में काइरो में संपन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में यह स्वीकार किया गया कि महिला सुन्नत मानवाधिकार का उल्लंघन है और इससे महिलाओं के स्वास्थ्य और जीवन को खतरा है। कई देशों में इस प्रथा पर रोक लगाने के लिए कानून बनाए गए हैं !

गाँव कप्र तहला में जन्मी लेखिका डॉ. नवल अल सादवी अपनी डॉक्टरी की शुरूआत गाँव की अनपढ़ औरतों के बीच ही की, उसके बाद वह काइरो अस्पताल और फिर पलिक हेल्थ की निदेशक रहीं। 1972 में अपनी पहली विवादास्पद पुस्तक 'वीमेन एंड सेक्स' के प्रकाशन के तहत उन्हें अपनी निदेशक के ओहदे से हटना पड़ा और 'हेल्थ पत्रिका' के संपादन से भी उन्हें हटा दिया गया। इसके बावजूद नवल अल सादवी का लेखन जारी रहा और उन्होंने औरतों की सामाजिक स्थिति, मनोविज्ञान और यौन संबंधी प्रश्नों पर लिखना जारी रखा। उनकी लिखी सभी पुस्तकों पर मिस्र, सऊदी अरब, सूडान और लीबिया में प्रतिबंध लगाया जा चुका है। लेबनान, बेरुत से उनकी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है।

'द हिडेन फेस ऑफ ईव' सादवी की अंग्रेज़ी में अनूदित पहली पुस्तक है। आयरीन. एल. गेंजियर ने इस किताब की भूमिका में लिखा है, 'कुछ किताबों की यह नियति होती है कि वे पढ़ते हुए आपको आनंद नहीं देती, उन्हें पढ़कर आप खुश नहीं हो सकते। इन किताबों की सार्थकता इसी में है कि उन्हें पढ़ते वक्त आपके भीतर पैदा हुआ घृणा, शर्म या गुस्से का भाव आपको बहुत बेचैन कर देता है।'

सुन्नत की प्रथा: अरब देश की औरतें...

नवल-अल-सादवी

उस रात मैं छह साल की थी और अपने नर्म बिस्तर पर शांत और सुकून भरी नींद की उस खुमारी में थी, जब जागने और सोने के बीच बचपन के गुलाबी सपने और खूबसूरत परियाँ पलकों पर तारी रहती हैं। उस नींद की खुमारी में मुझे लगा जैसे मेरे कम्बल के नीचे अचानक कोई बड़ा-सा हाथ-ठंडा और रूखा-मेरे जिस्म पर कुछ टटोलता सा घूम गया है जैसे वह कुछ ढूँढ़ रहा हो। उसके साथ ही उतने ही बड़े और खुश्क हाथ ने मेरे मुँह को ढक लिया, होंठों से निकलती चीख को रोकने के लिए।

वे मुझे उठाकर बाथरूम में ले गए। मुझे पता नहीं, वे सब गिनती में कितने थे, आदमी थे या औरतें, मुझे उनके चेहरे भी याद नहीं। मेरे सामने की पूरी दुनिया एक स्याह अँधेरे में कैद थी, जो मुझे देखने से रोक रही थी। मुझे बस इतना याद है कि मैं बेतरह डर गई थी और वे एक नहीं कई थे और मेरी हथेलियों, बाँहों और मेरी जाँघों पर उनकी पकड़ लोहे सी सख्त थी, जिसकी वजह से मैं हिल भी नहीं पा रही थी। मुझे अपने जिस्म के नीचे बाथरूम

संपर्क:
1702 सॉलिटेयर
हीरानंदानी गार्डन
पवई, मुम्बई 400076
ईमेल: sudhaarora@gmail.com

की ठंडी टाइलों का स्पर्श याद है, जिसके इर्द-गिर्द कई सारी फुसफुसाती आवाज़ें थीं, जिसे बीच-बीच में सान पर चढ़ाई जाती छुरी का स्वर तोड़ रहा था। मेरी बंद आँखों के सामने ईद का दिन कौंध गया, जब बकरे को जिबह करने से पहले कसाई अपने छुरे की धार तेज़ करता था।

मेरा खून मेरी पसलियों में जम गया था। मुझे लगा, मेरे घर में कुछ चोर घुस आए थे, जो मुझे मेरे बिस्तर से उठा लाए थे और अब मेरा गला काटने के लिए तैयार हो रहे थे। किस्सों-कहानियों में सुनी हुई बिल्कुल अपने जैसी उस बागी लड़की की तरह, जिनके किस्से मेरी गाँवठी दादी माँ बड़े प्यार से मुझे सुनाया करती थी। उस लोहे के औज़ार की घिसघिसाहट सुनने के लिए मैंने अपने कानों पर ज़ोर डाला। जैसे ही वह आवाज़ रुकी, मेरे दिल ने उसके साथ ही धड़कना बंद कर दिया था। मैं देख नहीं पा रही थी और मेरी साँस भी उसके साथ ही थम गई थी, लेकिन मैं महसूस कर रही थी कि लोहे का वह औज़ार धीरे-धीरे मेरे बहुत नज़दीक आ रहा था। उन सख्त हाथों का दबाव ज़रा भी ढीला नहीं पड़ रहा था और मुझे लगा अब वह तेज़ किया हुआ छुरा सीधे मेरे गले की ओर बढ़ रहा है, लेकिन वह मेरी गर्दन की ओर नहीं, पेट पर नीचे की ओर मेरी जाँघों के बीच जैसे कुछ ढूँढ़ता सा बढ़ रहा था। उसी पल मैंने महसूस किया कि मेरे दोनों पैरों को, जाँघों को और निचले हिस्से को जितना चौड़ा खींचा जा सकता था, खींच दिया गया था, फिर अचानक छुरे की तेज़ धार मेरी जाँघों के बीच गिरी और मेरे शरीर से माँस का एक टुकड़ा अलग होकर जा पड़ा।

अपने मुँह पर पड़ी हथेली के सख्त दबाव के बावजूद मैं दर्द से बेइंतहा चीखी, क्योंकि वह दर्द सिर्फ दर्द नहीं था, जैसे आग की एक तीखी लपट मेरे पूरे शरीर को चीरती हुई मेरे भीतर से गुज़र रही थी। कुछ पलों के बाद मैंने देखा, मेरे कूल्हों के आसपास खून का तालाब बन रहा था।

मुझे नहीं मालूम था, मेरे शरीर में से उन्होंने क्या काट डाला था। मैंने इसे जानने की कोशिश भी नहीं की। मैं सिर्फ रो रही थी और अपनी माँ को मदद के लिए चीख-चीख कर पुकार रही थी और मुझे सबसे गहरा सदमा पहुँचा, जब मैंने अपने आसपास देखा और पाया कि माँ मेरी बगल में खड़ी थी। हाँ, यह मेरा वहम नहीं था, वह मेरी माँ ही थी, अपने हाड़-माँस के साथ, उन अजनबी औरतों के ठीक बीचोंबीच, उनसे बतियाती और मुस्कुराती जैसे अभी कुछ मिनटों पहले उनकी बेटी को जिबह करने में उनकी कोई हिस्सेदारी न रही हो।

वे मुझे उठाकर बिस्तर तक ले गए। मैंने देखा, अब वे मेरी बहन को, जो मुझसे दो साल छोटी थी, बिल्कुल उसी तरह उठाकर ले जा रहे थे, जैसे वे मुझे ले गए थे। मैं अपनी पूरी ताकत के साथ चिल्लाई - नहीं, नहीं। मैं उन बड़े-बड़े सख्त हाथों के बीच अपनी बहन का मासूम चेहरा देख रही थी। एक क्षण के लिए मेरी आँखों उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखों में जमी दहशत से टकराई। उसकी आँखों का वह भयावह खौफ मैं कभी भूल नहीं सकती। दूसरे ही पल बाथरूम के उसी दरवाज़े के पीछे वह बंद हो गई थी, जहाँ से मैं अभी-अभी होकर आई थी।

मेरा परिवार एक अशिक्षित परिवार नहीं था। उस समय के स्तर से मेरे माता-पिता पढ़े-लिखे थे। पिता अपने प्रांत के ग्रेजुएट थे और शिक्षा नियंत्रक के औहदे पर थे। मेरी माँ की शिक्षा फ्रेंच स्कूल में हुई थी और उनके पिता सेना में थे, लेकिन गाँव हो या शहर, उच्च वर्ग हो, मध्य या निम्न मध्यवर्ग, सुन्नत की प्रथा का प्रचलन हर क्षेत्र में कायम था। कोई भी लड़की अपनी योनि के ऊपरी हिस्से (clitoris) को कटवाए जाने से बच नहीं सकती थी। जब मैंने स्कूल में अपनी साथिनों से अपने अनुभव को बाँटा तो मुझे पता चला कि बिना किसी अपवाद के हर एक लड़की इस मर्मांतक अनुभव का शिकार हो चुकी थी।

इस हादसे की याद बहुत बाद में भी एक दु:स्वप्न की तरह मुझे पीछे धकेलती रही। मुझमें एक असुरक्षा की भावना ने घर कर लिया था कि मेरे साथ कुछ भी घट सकता है। जिस दिन मैंने ज़िन्दगी में आँखें खोलीं, समाज ने मुझे बता दिया था कि मैं लड़की हूँ और कि 'बिंत' (लड़की) शब्द का जब भी उच्चारण किया जाएगा, माथे पर सलवटों के साथ ही किया जाएगा।

1955 में जब मैं डॉक्टर बनी, मैं कभी वह दर्दनाक घटना भूल नहीं पाई, जिसने एकबारगी मेरा बचपन छीन लिया था और शादी के बाद भी जिसने मुझे ज़िन्दगी की पूर्णता और यौन के आनंद से मरहूम रखा, जो अंतत: एक मनोवैज्ञानिक संतुलन से ही हासिल किया जा सकता है। जब मैं गाँव में प्रैक्टिस कर रही थी, मुझे अपने दु:स्वप्न से कई-कई बार फिर से गुज़रना पड़ा। अक्सर मुझे उन लड़कियों का इलाज करना पड़ता था, जो सुन्नत के बाद खून से तरबतर वहाँ आती थीं। सुन्नत करने वाली दाइयाँ अप्रशिक्षित होती हैं, जो आमतौर पर काँच के टुकड़े या विशेष किस्म के चाकू का इस्तेमाल करती हैं। सुन्नत करने के दौरान न तो एनस्थीसिया दिया जाता है, न किसी तरह का एंटीसेप्टिक लगाया जाता है। रक्तस्राव रोकने के लिए तरह-तरह की चीजें रगड़ दी जाती हैं, जिनसे संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। इस किस्म के अमानवीय और आदिम तरीके की वजह से बहुत सी लड़कियाँ सुन्नत के दौरान अपनी जान से भी हाथ धो बैठती थीं। कइयों को गंभीर किस्म का इंफेक्शन और सेप्टिक हो जाता था। और उनमें से अधिकांश इस बर्बर अनुभव की यातना के कारण मानसिक और यौन विक्षिप्ति का शिकार हो जाती थीं।

मुझे अपने डॉक्टरी पेशे के कारण एक बार अरब देश के अलग-अलग हिस्सों से आई औरतों का परीक्षण करने का मौका मिला। इनमें सूडान की औरतें भी थीं। मैं उन्हें देखते हुए दहशत से भर गई कि सूडानी लड़की को सुन्नत की जिस प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है, वह मिस्र की सुन्नत प्रथा से दस गुना ज़्यादा क्रूर और बर्बर है। इस ऑपरेशन में जननेन्द्रिय के सभी बाहरी हिस्सों को निकाल दिया जाता है। योनि का ऊपरी हिस्सा तो वे काट ही देते हैं, साथ ही बाहरी पटल (labia majora) और भीतरी पटल (labia minora) को भी काट दिया जाता है। फिर उस घाव को सिला जाता है। इस दौरान सिर्फ योनि का छिद्र ही छोड़

दिया जाता है, जो घाव की मरम्मत के दौरान कुछ अतिरिक्त टाँकों से छोटा कर दिया जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि आमतौर पर शादी की रात उस संकुचित जगह को दोनों ओर से काट कर कुछ चौड़ा करना पड़ता है ताकि पुरुष का लिंग उसमें प्रवेश कर सके। जब किसी सूडानी औरत का तलाक होता है तो इस बाहरी खोल को फिर से कुछ टाँकों द्वारा छोटा किया जाता है ताकि वह किसी से शारीरिक संबंध स्थापित न कर सके और अगर वह फिर से शादी करती है तो फिर से टाँकों को खोला जाता है।

जब मैंने 1969 में सूडान की यात्रा की तो वहाँ की औरतों से बात कर और यह देखकर कि वहाँ गाँव, कस्बे और बड़े शहरों की शत-प्रतिशत लड़कियाँ इस प्रथा की शिकार थीं और इस प्रथा की जड़ें गहरे धंसी हुई थीं, मुझमें गुस्से और विद्रोह का भाव कई गुना बढ़ गया। अपनी सारी डॉक्टरी पढ़ाई और अपने अपेक्षाकृत खुले माहौल में बड़े होने के बावजूद मैं यह समझ पाने में असमर्थ थी कि लड़कियों को इस बर्बर प्रक्रिया से क्यों गुज़रना पड़ता है। मैं हमेशा अपने आप से सवाल करती, क्यों? आख़िर क्यों? मुझे इसका कोई जवाब नहीं मिलता। और यह सवाल मेरे दिमाग में उसी दिन पैदा हो गया था, जब मुझे और मेरी छोटी बहन का सुन्नत किया गया था।

बाद में अपने शोध के दौरान मैंने पाया कि मिस्र के अशिक्षित परिवारों में 97.5 प्रतिशत लड़कियाँ इस प्रथा का शिकार होती हैं, लेकिन शिक्षित परिवारों में यह प्रतिशत घटकर 66.2 प्रतिशत रह गया है। जब-जब मैंने इस बारे में उन लड़कियों से बात की तो पाया कि उन्हें इसका कतई इलहाम ही नहीं था कि सुन्नत से उनके शरीर को कितना नुकसान पहुँचता है, बल्कि कुछ तो यह समझती थीं कि यह उनकी सेहत के लिए मुफीद है और उनके शरीर को पाक साफ रखने के लिए निहायत ज़रूरी है। सुन्नत की प्रक्रिया से गुज़री पढ़ी-लिखी औरतें भी इस तथ्य से अनजान थीं कि योनि के ऊपरी हिस्से को काट फेंकने का उनके मनोवैज्ञानिक और यौन संबंधों पर नकारात्मक असर पड़ता है। इन औरतों के बीच और मेरे बीच आमतौर पर इस तरह का एक औसत संवाद चलता था –

'सुन्नत के समय तुम्हारी उम्र क्या थी?'

'मैं बच्ची थी तब। यही कोई सात-आठ साल।'

'तुम्हें ऑपरेशन की सारी बातें याद हैं?'

'बिल्कुल! भला उन्हें कैसे भूला जा सकता है!'

'क्या तुम्हें डर लगा था?'

'बेहद! मैं जाकर अल्मारी के ऊपर छिप गई थी (कोई कहती पलंग के नीचे, कोई पड़ोसियों के घर) लेकिन उन्होंने मुझे पकड़ ही लिया और उनके हाथों में मेरा पूरा शरीर काँप रहा था।'

'दर्द महसूस हुआ?'

'बेहद! मैं चीखी थी। मेरी माँ ने मेरा सिर पकड़ रखा था ताकि मैं हिल भी न सकूँ। मेरी चाची ने मेरा बायाँ हाथ पकड़ा था और दादी ने दायाँ। दो अजनबी औरतें, जिन्हें मैंने पहले कभी देखा नहीं था, मेरी दोनों जाँघों को एक दूसरे से जितनी दूर तक अलग खींच सकती थीं, खींच रही थीं ताकि मेरे ज़रा भी हिलने की गुंजाइश न रहे। इन दोनों चेहरों के बीच हाथ में तेज़ धार वाला चाकू लिए दाई बैठी थी। जैसे ही उसने मेरे एक हिस्से को काटा, मेरे पूरे शरीर में आग की लपटें दौड़ रही थीं और मैं तेज़ दर्द से बेहोश हो गई थी।

'ऑपरेशन के बाद क्या हुआ?'

'मेरे पूरे शरीर में भयंकर दर्द था और मैं हिल भी नहीं सकती थी। कई दिन मैं बिस्तर पर ही रही। हर बार जब मैं पेशाब करने जाती तो कटी हुई जगह पर असहनीय जलन होती थी। घाव में से खून बहता रहता था और मेरी माँ दिन में दो बार उस जगह की ड्रेसिंग बदलती थी। कितने ही दिन तक मैं पानी पीने से डरती थी ताकि पेशाब करने न जाना पड़े।'

'जब तुम्हें पता चला कि तुम्हारे शरीर का एक छोटा-सा हिस्सा काट दिया गया है तो तुम्हें कैसा महसूस हुआ?'

'मुझे सिर्फ यह बताया गया था कि यह एक मामूली सा आपरेशन है जो हर लड़की को पाक-साफ रखने के लिए किया जाता है और इससे उसकी इज़्ज़त बची रहती है। जिस लड़की का आपरेशन नहीं किया जाता, उसका बर्ताब खराब होता है, वह लड़कों के पीछे भागने लगती है और उसके बारे में लोग-बाग बातें बनाने लगते हैं, जिसकी वजह से शादी की उम्र आने पर उससे कोई शादी करने को राजी नहीं होता। मेरी दादी ने बताया कि जाँघों के बीच उस छोटे से हिस्से का बना रहना मुझे नापाक बना देगा और शादी के बाद मेरा शौहर मुझसे नफरत करने लगेगा।'

'क्या तुम्हें इन दलीलों पर भरोसा हुआ?'

'हाँ, हुआ। ऑपरेशन के बाद जब मैं बिल्कुल ठीक हो गई तो मुझे खुशी हुई कि मैंने उस चीज़ से छुटकारा पा लिया जो मुझे गंदा और नापाक बना सकती थी।'

मुझे कमोबेश सबसे यही जवाब मिलते थे। वहाँ ऐन शम्स स्कूल ऑफ मेडिसन के आख़िरी साल की एक छात्रा थी। जब उससे मैंने यह सवाल किया कि क्या वह इसे मानती है कि औरत की योनि का ऊपरी हिस्सा काट दिया जाना एक सेहतमंद क्रिया है या कम से कम हानिकारक नहीं है?

'मुझे तो सबने यही बताया है', उसने कहा, 'हमारे परिवार में सभी लड़कियाँ इस क्रिया से गुज़री हैं। मैंने डॉक्टरी पढ़ी है पर मुझे आज तक किसी प्रोफ़ेसर ने नहीं बताया कि एक औरत के शरीर में उसकी योनि के ऊपरी हिस्से (clitoris) की कोई अहमियत है, न ही हमारी मेडिकल किताबों में इसका कोई ज़िक्र है।'

'यह सच है! आज तक चिकित्सा विज्ञान में औरत के जिन अंगों पर अलग से चर्चा की जाती है, वे उसकी जननेन्द्रियों से सीधे ताल्लुक रखते हैं जैसे योनि (vagina), गर्भाशय (uterus) और अंडकोश (ovaries)। चिकित्सा शास्त्र में योनि के ऊपरी हिस्से को उपेक्षित रखा गया है, उसी तरह जैसे वह समाज द्वारा उपेक्षित और तिरस्कृत है।'

'दरअसल, एक बार एक छात्रा ने प्रोफ़ेसर से क्लिटोरिस के बारे में पूछ लिया तो प्रोफ़ेसर का मुँह तमतमा गया और उन्होंने रूखा-सा जवाब दिया कि आगे से

कोई इस बारे में सवाल न पूछे क्योंकि औरत के जिस्म में इसकी कोई अहमियत नहीं है।'

यहीं से मेरी शोध शुरू हुई। मुझे यह जानना था कि सुन्नत की प्रथा का लड़की पर मानसिक रूप से और उसके सेक्स जीवन पर क्या असर होता है। पर मैंने जिनसे भी पूछा – सबने आँखें झुकाकर मेरी ओर देखे बिना यही उत्तर दिया कि उन पर कोई असर नहीं पड़ा। दरअसल, मिस्र की औरतें जिस तरह के सख्त और घुटे हुए माहौल में बड़ी होती हैं, वहाँ उनके लिए शादी के बाद शौहर के हाथ का पहला स्पर्श पाने से पहले किसी भी तरह के यौन सुख या अनुभव की बात करना भी गुनाह समझा जाता है। बहुत कोंचने पर शादीशुदा औरतों ने स्वीकार किया कि अपने पति के साथ सहवास के दौरान भी उन्होंने कभी रत्ती भर भी आनंद महसूस नहीं किया।

अपने शोध में 651 औरतों से सुन्नत के बारे में लंबी बातचीत करने के बाद जो नतीजे हाथ लगे, ये हैं –

1.सुन्नत एक ऐसा ऑपरेशन है, जो औरत के शरीर पर हानिकारक असर छोड़ता है। इससे उसकी कामवासना मंद पड़ जाती है और इससे औरत की यौन संबंध के चरम सुख तक पहुँचने की क्षमता कम हो जाती है। अरब समाज में औरतों का सेक्स संबंधी ठंड़ापन (frigidity) मुख्यत: इसी कारण से है।

2.अशिक्षित परिवार आज भी परंपरा के तहत इसी धारणा को मानते हैं कि लड़की की कामेच्छा के दमन का एकमात्र तरीका सुन्नत ही है और सुन्नत द्वारा ही उसके कौमार्य और इज़्ज़त को शादी से पहले बरकरार रखा जा सकता है।

3.यह धारणा भ्रामक है कि सुन्नत द्वारा औरत के प्रजनन अंगों में कैंसर की सँभावना कम हो जाती है। सच्चाई यह है कि सुन्नत – वह किसी भी रूप में और पहली, दूसरी किसी भी डिग्री का हो (खासतौर पर सूडानी, जो चौथी डिग्री का माना जाता है और सुन्नत का सबसे बर्बर स्वरूप है) अपने साथ इंफेशन, सेप्टिक या हेमरेज और मूत्रनली में गाँठ (cyst) या सूजन लेकर ही आता है, साथ ही इससे योनि का द्वार संकुचित होता है और पेशाब के बहाव में काफी समय तक रुकावट महसूस होती है।

4.सुन्नत की गई लड़कियों में हस्तमैथुन की क्रिया बहुत कम पाई जाती है बजाय उन लड़कियों के, जिनका ऑपरेशन नहीं किया गया है।

5.इसमें कोई शक नहीं कि सुन्नत लड़की के यौन जीवन के लिए एक सदमा साबित होता है और मनोवैज्ञानिक विकास में बाधा पहुँचाता है। अंतत: यह लड़की को उसके माहौल के अनुरूप यौन संबंधी ठंडेपन (sexual frigidity) की ओर ही धकेलता है। शिक्षा ही एकमात्र रास्ता है जिसमें पढ़े-लिखे माँ-बाप अपनी बेटियों को इस अमानवीय प्रथा से

गुज़रने से इनकार कर सकते हैं। आज के शिक्षित माँ-बाप यह समझ गए हैं कि यह ऑपरेशन किसी भी रूप में लाभदायक नहीं है और इसलिए इसका बहिष्कार किया जाना चाहिए।

आइन शम्स यूनिवर्सिटी में 'वीमेन एंड न्यूरोसिस' पर अपना शोध शुरू करने से पहले काइरो यूनिवर्सिटी के कस्त्र अल आइनी मेडिकल कॉलेज से इसे करने की मैंने बहुत कोशिश की पर हर बार मुझे कई मुश्किलों का सामना करना पड़ा। हमारी सबसे बड़ी रुकावट सत्तारूढ़ दकियानूसी मानसिकता वाले प्रोफ़ेसरों से ही थी; जिन्होंने 'सेक्स' को हमेशा 'शर्म' के साथ जोड़कर ही देखा है। उनके अनुसार 'प्रतिष्ठित' शोध सेक्स जैसे विषय पर नहीं हो सकती थी। मैंने अपने शोध के आलेख का शीर्षक दिया था 'मिस्र की आधुनिक औरत के यौन जीवन में आने वाली समस्याएँ।' (Problems that confront the sexual life of modern Eypytian women) लेकिन लंबी चर्चा और बातचीत के बाद आख़िर मुझे शीर्षक से 'यौन' शब्द को हटाकर उसके स्थान पर 'मनोवैज्ञानिक' (Psychological) शब्द डालना पड़ा।

('द हिडन फेस आफ ईव' के पहले भाग 'द म्यूटिलेटेड हाफ' के पहले और छठे अध्याय के कुछ चुने हुए अंश)

* * *

ग़ज़लें

प्रदीप कांत

इतनी ज़िम्मेदारी रख
अपनी पहली बारी रख
जाने वार कहाँ से हो
तलवारें दोधारी रख
तुझमें तेरा बचा रहे
इतनी पर्दादारी रख
पीठ सभी ने दिखला दी
तू तो मत लाचारी रख
अपनापा ले डूबेगा
थोड़ी दुनियादारी रख
एक बहाना आने को
थोड़ी बहुत उधारी रख
चाहत जैसी है उसकी
मिलने की तैयारी रख

* * *

सरल सरल लिक्खा है बस
मगर असल लिक्खा है बस
अमृत कुण्ड पहुँच देखा
वहाँ गरल लिक्खा है बस
हाथ सने कीचड़ में तब
एक कमल लिक्खा है बस
निश्छल का था दोष यही
छल को छल लिक्खा है बस
दिखता कैसे दूरी तक
अगल बगल लिक्खा है बस
प्यासे को तो क्या कहते
जल को जल लिक्खा है बस
ख़्वाबों को ताबीर मिलेगी
हमने कल लिक्खा है बस

* * *

संपर्क : डी-8, सेक्टर-3, केट कॉलोनी,
इन्दौर – 452 013, मध्य प्रदेश
मोबाइल : 94074 23354
इमेल : kant1008@rediffmail.com,
kant1008@yahoo.co.in

प्रवासी हिन्दी कथा साहित्य: वृद्ध एवं स्त्रियाँ

सुबोध शर्मा

समकालीन दौर में देश-विदेश में कहानी लेखन में अनेक कहानीकार सक्रिय हैं। वर्तमान समय में जबकि विमर्शों का दौर चल रहा है फिर भी विमर्शों की परिधि से बाहर मानव मात्र की बात करने वाले बहुत कम कहानीकार हैं। उनमें डॉ. सुधा ओम ढींगरा का नाम लिया जा सकता है। यह कहा जाता है कि ''कथा को सभ्यता और संस्कृति के 'फैक्ट' और 'फिक्शन' को साथ लेकर चलना होता है।'' इस सूत्र पर प्रवासी कहानीकारों की कहानियों को देखा जा सकता है। प्रवासी महिला कथाकारों में बहुत सी स्थापित हो चुकी लेखिकाओं में डॉ. सुधा का नामोलेख किया जाता है। अपने समय की सामाजिक सच्चाइयों को सुधा ओम ढींगरा यथार्थवादी शिल्प मे रचती हैं। इनके तीन कहानी-संग्रह हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं। इनमें कमरा नंबर 103, कौन-सी ज़मीन अपनी, दस प्रतिनिधि कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। दस प्रतिनिधि कहानियाँ 2015 में शिवना प्रकाशन से प्रकाशित कहानी संग्रह है। इस कहानी संग्रह में कुल दस कहानियाँ है। जिनमें क्रमश: बेघर सच, कमरा नंबर 103, आग में गर्मी कम क्यों है?, सूरज क्यों निकलता है?, क्षितिज से परे, विष-बीज़, कौन-सी ज़मीन अपनी ?, टॉरनेडो, वह कोई और थी और पासवर्ड है। सुधा की कहानियों में विषयों की विविधता है। प्रवासी जीवन, स्त्री की समस्या, वृद्धों की समस्या, कुमारी माताओं की समस्या आदि विषयों पर कलम चलाई हैं। यूँ तो इन सबके अलावा अन्य विषयों पर भी लेखिका ने ध्यान दिया है। दस प्रतिनिधि कहानी संग्रह थोड़ी भिन्न भावभूमि पर आधारित है। कथाकार सुधा की यह कहानी संग्रह देशवासी-प्रवासी सापेक्ष की समस्यायों को व्यक्त करती है। इनकी कहानियाँ कल्पना के साथ-साथ ज़मीन के बहुत अन्दर तक जुड़ी हैं। अमेरिकी ज़मीन की सच्चाइओं को अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करती इनकी कहानियाँ पश्चिम से पूरब को जोड़ने का काम करती हैं। दूर से सुन्दर दिखने वाली हर सुन्दर चीज़ वास्तव में सुन्दर ही नहीं होती है। उसमें खुबियों के साथ-साथ खामियाँ भी होती हैं। अपनी कथा के माध्यम से उसी स्वरूप की वास्तविकता को व्यक्त करती हैं।

नारीवादी लेखन आज के समय की ज़रूरत है। आधुनिकता और उदार सोच के तमाम दावों के बावजूद स्त्री की सामाजिक स्थिति या उत्थान में कोई बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया है। आज भी वे समझौतों और दोहरे कार्यभार के बीच पिस रही हैं। पुरुष सत्ता की

संपर्क:
मोहल्ला पंचशील नगर, बाराह, जिला पटना, बिहार-803213
मो.8102102905
ईमेल:subodh.sharma2013@gmail.com

नीवें हमारे समाज में बहुत गहरे तक धँसी हुई हैं। इसे तोड़ना, बदलना या सँवारना एक लम्बी लड़ाई है। साहित्य और शिक्षा हो या सामाजिक संगठन, हर क्षेत्र में स्त्रियाँ अपनी-अपनी तरह से अपनी लड़ाई लड़ रही हैं और स्त्रियों की पारम्परिक दासता में बदलाव लाने की कोशिश में रत हैं।

कथा-साहित्य में भी स्त्री चेतना ने अपनी उपस्थिति पूरी गहराई और शिद्दत से दर्ज करवाई है पर हिन्दी साहित्य में तथाकथित स्त्री विमर्श और विचार इतने बौद्धिक स्तर पर है कि आम औरतों तक या उन औरतों तक, जिन्हें सचमुच जागरूक बनाने की ज़रूरत है, यह पहुँच ही नहीं पाता। यह काम साहित्य के स्त्री विमर्शकारों से कहीं अधिक महिला संगठन और ज़मीनी तौर पर उनसे जुड़ी कार्यकर्ता कर रही हैं। संबंधित जानकारी वापसी, अकेली, कमरा न. 103, टॉरनेडो, धूप जैसी कहानियों में व्यक्त अकेलापन, संत्रास आदि को दिखाया गया है।

भारतीय साहित्य की कुछ आधारभूत विशेषताएँ रही हैं। परिवार भाव उनमें से एक है। मध्यकालीन काव्य 'रामायण' और उससे पहले 'महाभारत' और समस्त पौराणिक वाङ्मय में एक भरा-पूरा परिवार देखते हैं। उस समय लोग सुख या दुख का भोग परिवार के साथ करते थे। तब व्यक्ति अपने परिवार का एक अटूट अंग था। आधुनिक युग के महान उपन्यास 'गोदान' में भी होरी का एक परिवार देखते है। इस अत्याधुनिक काल में आकर यह पारिवारिक चेतना विलुप्त हो गई है। अब मनुष्य व्यक्तिवादी बन गया है। ऐसी अवस्था में वृद्ध आयु-वर्ग के नर और नारी परिवार के लिए समान उत्तरदायित्व होते थे। आज यह भाव विलुप्त हो चुका है। मनुष्य नितांत अकेला हो गया है। अकेलेपन की यह त्रासदी वृद्ध आयु-वर्ग के नर-नारी भोगते दिखाई दे रहे हैं। अब वृद्ध नर-नारी वृद्धाश्रम भेज दिए जाते हैं। घर में उनकी उपस्थिति पहले सुख का विषय माना जाता था अब वे बोझ हो गए हैं। उनकी उपस्थिति से परिवार के दूसरे लोग अपनी स्वतंत्रता में बाधा समझते हैं। समाज की इस अवस्था का प्रभाव साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था। इस परिवर्तित पारिवारिक विखंडता को इन कहानियाँ, 'उषा प्रियंवदा' कृत 'वापसी', 'मन्नू भंडारी' कृत 'अकेली' डॉ. सुदर्शन कृत 'धूप' और सुधा ओम ढींगरा कृत कमरा न.103 बहुत ही संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करती है। इन सभी रचनाकारों की कहानियों में अकेलेपन की ऐसी दास्ताँ है, जिसे पढ़कर पाठक वर्ग कहानी के पात्रों के प्रति एक तीव्र पीड़ा अनुभव करता है।

यद्यपि इन कथाकारों की कथाओं में अकेलेपन की अलग-अलग परिस्थितियाँ हैं। अकेलेपन की अपनी अलग-अलग वजह है। फिर भी, इन कहानियों के मुख्य पात्रों में एक समानता है, वह हैं जो वृद्ध हैं और अपने- अपने परिवार से दूर हैं। इन कहानियों के वृद्ध पात्रों को अपनों ने अपने से दूर कर दिया है। गजाधर बाबू जो कि 35 साल की नौकरी के बाद यह सोचकर घर लौटते हैं कि अब वे अपने परिवार के साथ खुशी से दिन गुज़ारेंगे, पर घर जाते ही उनकी उपस्थिति से घर के लोगों का उनके प्रति अजीब व्यवहार होता है। जैसे कि वे लोग उनके आने से खुश नहीं है। जैसे कि वे लोग यह समझते हो कि बाबू जी उनके हँसी-मज़ाक के कारण उनसे नाखुश हो! इसी तरह अकेली बुआ यही सोचकर अपनी सगे-संबंधियों के घर में शादी में मदद करती है कि वह भी तो उन्हीं लोगों के परिवार का एक हिस्सा है। शादी के दिन तक वह काम-काज सँभालती है पर शादी में उसे कोई भी आमंत्रित तक नहीं करता है। बुआ खुद ही सारे काम सँभालती है। अकेली है, बेटा भी जीवित नहीं जो इस वृद्धावस्था में सहारा बने, पति भी पुत्र शोक से घर छोड़कर संन्यासी बनकर घूम रहे हैं। बस आस-पड़ोस की कुछ जान-पहचान वाली स्त्रियाँ है जो उनसे हँसी-ठठ्टा करती हैं। बुआ बड़े अरमानों से राह देखती है कि कोई तो उन्हें बुलाने आएगा पर कोई भी नहीं आता है। वह अपने घर की छत पर अकेली राह तकती रहती है।

गजाधर बाबू का भी यही हाल है। वे सोचते है कि सब लोग उनके आने से खुश है, वे उनकी बात मानेंगे और अपने दिल की बात कहेंगे। पर गजाधर बाबू के लिए यह एक कोरी कल्पना साबित हुई। न तो कोई उनसे बात करना चाहता है न ही किसी के पास समय है। यहाँ तक कि उनकी पत्नी के पास भी। गजाधर बाबू क्या चाहते हैं,क्या कहना चाहते है, घर में वह एक अभिभावक की हैसियत से है, इन बातों का घर के लोगों के लिए कोई मतलब नहीं। सब बस अपने ही धुन में मगन होकर चले जा रहे है। यहाँ तक कि गजाधर बाबू की छोटी बेटी, तक उनसे किसी भी बात की इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं समझती।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'कमरा नंबर 103' में वृद्धों की समस्या को आधार बनाया गया है। अतिमहत्त्वाकांक्षी होने के कारण नष्ट होती मानवता का चित्रण इस कहानी में किया गया है। बड़े बनने की मानसिकता को लेकर अमेरिका भेजे गए भारतीय बच्चे जब अपना भविष्य वहीं देखने लगते हैं, अपने वृद्ध माता-पिता को वहाँ ले जाकर जो पीड़ा देते हैं, उन पर लिखी गई मार्मिक कहानी है। प्रवास में रहते भारतीय अपने माँ-बाप को अपने बच्चों की देख-रेख के लिए बुलाते हैं '...डे केयर और बेबी सिटर का पैसा बचाते हैं।' जब तक वे स्वस्थ्य होते हैं अपने ममत्व के कारण बच्चों की देख-रेख और घर का काम भी कर देते हैं, लेकिन माँ-बाप जैसे ही बीमार पड़ते हैं, उन्हें सरकारी अस्पताल में भर्ती कर देते है और फिर देखने तक नहीं आते हैं। इस कहानी में वृद्धों की समस्या को दिखाया गया है। वे अपनी कहानी में सामांजस्य-विघटन, संघर्ष, मान अभिमान जैसे जीवन को पूर्णता देने वाले तत्त्व को समाहित करती हैं। जिसके कारण जीवन के शुभ और अशुभ दोनों पक्ष उनकी कहानियों में दीखते हैं। इनकी कहानियाँ इंसान के अन्दर की इंसानियत और मार्मिकता को कुरेदते हुए अपना तादम्य स्थापित कर लेती हैं। प्रवास में अकेलापन, कुंठा, हताशा, वृद्धों के साथ अमानवीय व्यवहार आदि अनेकानेक समस्याओं को लेखिका ने उठाया है।

'कौन सी ज़मीन अपनी' प्रवास के दर्द को व्यक्त करने वाली वृद्धों की कहानी है।

पराई धरती पर वास करते हुए अपनी धरती के सुख को भोगने की इच्छा रखने वाला मनजीत दिन-रात मेहनत करता है, एक-एक अमेरिकन डॉलर जोड़कर अपने भाइयों को भेजता है ताकि इतनी ज़मीन खरीदी जा सके, जिससे बाकी बची ज़िन्दगी को सम्मानपूर्वक जी सके। अपनी पत्नी मनविंदर को रोमांचित होकर कहता है-''मनविंदर कौर,जाटों की पहचान ज़मीनों से होती है।'' यह कहते हुए मनजीत की छाती गर्व से चौड़ी हो जाती है। मनजीत के इस व्यवहार से मनविंदर खुश नहीं हैं, वे कई बार मना भी कर चुकी हैं। पर मनजीत का जुनून थमने का नाम ही नहीं ले रहा है। मनजीत के इस व्यवहार से परिवार के लोगों की आवश्यक्ता को टाला भी जाता रहा है। दुखी मन से चिढ़ते हुए मनविंदर कहती भी हैं ''पर कितनी पहचान सरदार जी, कहीं तो अन्त हो। वर्षो से आपके घर वाले ज़मीन ही तो खरीद रहे हैं।...किल्ले पर किल्ले इकट्ठे करते जा रहे हैं।'' यह संवाद मध्यवर्गीय भारतीय समाज की सोच को व्यक्त कर देती हैं। यह हाल केवल मनजीत का नहीं है। इस संवाद के माध्यम से लेखिका उन तमाम प्रवासी के मनोभावों को व्यक्त करने में सफल रहीं हैं। प्रवास में रहते हुए व्यक्ति एक ही साथ बहुत सारे जीवन को जीता है। यहाँ भी मनजीत प्रवास करते हुए वर्तमान में कम जीता है। भविष्य को सुरक्षित करने की चिंता ज़्यादा दिखती है। आपसी संवाद जब विवाद का रूप धारण करने लगता ''मनविंदर का पारा चढ़ते देख मनजीत घर से बाहर दौड़ लगाने चला जाता है।...'' मनजीत का दौड़ लगाना प्रतीकात्मक रूप से उन भारतवंशियों की दौड़ है जो अपना कल को सुधारने के लिए दिन-रात एक जगह से दूसरे जगह एकवतन से दूसरे वतन में प्रवास करते हैं ताकि उनके परिवार को अच्छी सुख-सुविधा प्राप्त हो सके।

कहानी का मुख्य कथ्य इस प्रश्न से जुड़ा है कि क्या जीवन भर बाहर रहने वाले व्यक्ति पूरी मेहनत के साथ पाई-पाई जोड़कर पैसा सिर्फ इसलिए भेजता है ताकि अपने वतन में अपनी बुढ़ापा व्यतीत कर सके। यह इच्छा रखना अपने आप में कोई मूल्य रखता है? जीवन भर अपने वतन से आसक्त रहने वाले प्रवासी और जीवन भर वतन को उपभोग करने वाले देशवासी क्या प्रवास करने वालों की तुलना में तुच्छ होते हैं?क्या वतन में रहने वाले त्याग का मूल्य नहीं जानते? ऐसे कई प्रश्न हैं जो इस कहानी में उठाए गए हैं, जिनकी प्रासंगिकता से इनकार नहीं किया जा सकता। इस कहानी की त्रासदी तो तब उभरती है जब अपने ही उन्हें मारने की योजना बनाते हैं ताकि उनकी ख़रीदी ज़मीने हथिया सकें। 'कौन-सी ज़मीन अपनी' प्रवासी परिवेश और भिन्न सरोकार की कहानी है। इस कहानी में वृद्धों की समस्या को भी चिह्नित किया गया है। वैचारिक धरातल पर वह आधुनिक मूल्यों का वाहक है।

कौन-सी ज़मीन अपनी कहानी संग्रह में लेखिका उच्चवर्गीय समाज के खोखले संबंधों, अवसरवादिता और मानवीय मूल्यों की गिरावट पर व्यंग्यात्मक प्रहार करती हैं। इस कहानी में उत्तर आधुनिकता के चकाचौंध में व्यक्ति किस हद तक अमानवीय, असहिष्णु हो सकता है, का बड़ा ही आत्मिक वर्णन किया है। पात्रों के माध्यम से अपनी स्वानुभूति को व्यक्त करती हैं। सामाजिक व्यवस्था की तमाम बातों को बड़े ही सहजता के साथ पाठकों के सामने खोलकर रख देती हैं। डॉ. सुधा अपनी कहानियों में पाश्चात्य एवं भारतीय मान्यताओं को भरपूर जगह देती हैं, जिसके कारण यथार्थ और मानवीयता का महत्त्व अधिक मुखर होकर सामने आता है। वे जीवन की आधुनिकता को स्वीकार करते हुए भी मानवता, बंधुत्व एवं रिश्तों की गहराई को अधिक तरजीह देती हैं। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से जीवन की संपूर्णता को बनाए रखने के लिए, जिन मानवीय मूल्यों की आवश्यकता होती है, उसका उल्लेख ज़रूर करती हैं। आज हिन्दी साहित्य अपनी क्षेत्रीय संकीर्णता, रूढ़िवादिता एवं राष्ट्रीय सीमाओं को पारकर अंतर्राष्ट्रीय जगत् में अपनी पहचान बना चुका है। विश्व पटल पर आज हिन्दी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। परन्तु बुजुर्गों की समस्या कम होते नज़र नहीं आ रही है।

इस प्रकार इन कथाकारों ने दिखाया कि किस प्रकार अपनों को ही अपनों के प्रति उपेक्षा का भाव उनके अकेलेपन का कारण बन जाता है। यह अकेलापन वह भी उस उम्र में जिसमें सबसे ज़्यादा अपने जीवनसाथी के साथ की ज़रूरत होती है अगर न मिले तो इन्सान टूट सा जाता है। तभी तो अकेली बुआ अपने मन की बात को मन में ही दबाकर अकेले जी रही है, रोती भी है तो मन के भीतर क्योंकि उनके रोने को कोई भी नहीं समझ सकता है। अपनी अकेलेपन की इस दुनिया में जी रही है, किसी तरह से दिन और वक्त को गिनकर। यही हाल गजाधर बाबू का है जो कि अपनों की उपेक्षा पाकर वापस उसी ज़िन्दगी में चले जाते है, जहाँ से लौटते हैं। उन्हें कितनी मानसिक और आत्मिक पीड़ा का अनुभव होता है जब वह अपनी पत्नी को साथ चलने को कहते हैं तो वह मना कर देती है। उनके बच्चे भी केवल उनके जैसे जाने की प्रतीक्षा में थे कि कब वे जाएँ और वे सिनेमा देखने चले। ऐसा अकेलापन और जब उसे दूर करने की आस लेकर अपनों के पास जाना और उनसे केवल उपेक्षा पाना इन्सान को दुःख और केवल दुःख के सिवा कुछ नहीं दे सकता है यह बात दोनों कहानियों से स्पष्ट होती है।

प्रवासी कहानी और 'नई कहानी' दोनों नीजी अनुभव का ताप लेकर आई है। इस दौर के कहानीकार अपने कहानियों में नीजी अनुभव को चित्रित करते हैं। यहाँ फार्मूलाबद्ध जीवन नहीं, बल्कि जीता-जागता मनुष्य चित्रित हुआ है। इस दौर के कहानी का चरित्र नायक न तो महामानव है और न ही देवत्व के गुणों से विभूषित कोई व्यक्ति। वह कहानी के पटल पर समान्य मनुष्य के रूप में अवतरित होता है- अपनी तमाम अच्छाइयों और बुराइयों के साथ। प्रवासी कहानी और नई कहानी दो पीढ़ियों के संघर्ष को चित्रित करती है। निर्मल वर्मा की कहानी 'बीच बहस में' पिता-पुत्र का संघर्ष और दोनों के अहं की टकराहट को दिखाया है। वहीं ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' में पिता, पुत्रों द्वारा अपने लिए किया गया कोई सेवा स्वीकार नहीं करते हैं। पिता

का मानना है कि 'पिता का कर्तव्य है पालन करना पलना नहीं..।'

सन् 1956 में श्रीपत राय ने अपने 'कहानी' विशेषांक में भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' को प्रकाशित किया था। 'नई कहानी' जिस शहरी मध्यवर्ग के जिए, भोगे जीवन को चरितार्थ करने में लगी थी, उसके केन्द्रीय विषय मध्यवर्ग को ही 'चीफ की दावत' में भीष्म साहनी ने कठघरे में खड़ा कर दिया। मध्यवर्गीय मानसिकता को दर्शाती यह कहानी मध्यवर्ग पर व्यंग्यात्मक प्रहार है और मध्यवर्गीय मानसिकता क्या है? इसका बड़े ही सहज ढंग से रेखांकन करती है- पुरानी पीढ़ी को अप्रासंगिक ही नहीं, भौतिक प्रगति में बाधक समझाना, असंवेदनशीलता, दावत जैसे उत्सवधर्मी आयोजन में भी वैयक्तिक फायदे की चिंता अर्थात् बाज़ारवाद की मानसिकता के साथ जीवन को जीने वाले मध्यवर्गीय समाज को रेखांकित करती यह कहानी वृद्धों की समस्या को उजागर करती है। नई कहानी और प्रवासी कहानी दोनों में जीता-जागते आदमी की आवाज़ सुनाई देती है। इस समय के कहानियों में बाबा, दादी-दादा, नाना-नानी को केन्द्रित कर अनेक कहानियाँ लिखी गई है। इन कहानियों के माध्यम से तत्कालीन समाज में बुज़ुर्गों स्थित को देखा जा सकता है।

'चीफ की दावत' कहानी की शुरूआत एक अड़चन से होती है। चीफ को दी जाने वाली दावत में बूढ़ी माँ की उपस्थिति ही सबसे बड़ी अड़चन है। जिस तरह से घर के पुराने समानों को आलमारियों के पीछे और पलंगों नीचे छुपाकर घर को साफ-सुथरा करने की कोशिश की जाती है, उसी प्रकार से बूढ़ी माँ को भी फटी-पुरानी वस्तु समझ कर शामनाथ छुपाने की कोशिश करता है। एक पुत्र को चीफ का आदर-सत्कार से इतना मोह कि माँ तक को छुपाना पड़े ! जन्म देने वाले माँ-बाप कब अपने बच्चों के लिए बोझ बन जाते हैं, शायद इसका अंदाज़ा वे नहीं लगा पाते! शायद इसीलिए तो शामनाथ को लग रहा था कि बूढ़ी, निरक्षर और कुरूप माँ का दावत के समय घर में होना ही रंग में भंग करने के लिए काफी है। आख़िर पुरानी-पीढ़ी नई पीढ़ी के लिए समस्या क्यों है? इसलिए न कि पुरानी-पीढ़ी आधुनिक अँग्रेज़ी शिक्षा एवं तहजीब में ढल नहीं पाई हैं। क्या माँ का अशिक्षित होना चीफ की नज़र में शामनाथ को गिरा देता ? यदि हैंड शेक करना, हाउ डू यू डू बोलना, शराब पीना और गैरों से माँ को हीन समझना ही आधुनिकता है, तो इससे लाख गुना बेहतर है माँ की अशिक्षा, जिसने उपेक्षा और अवहेलना पाकर भी पुत्र के भले के लिए सब कुछ सहने का कलेजा पाया है।

चीफ की दावत कहानी 'बूढ़ी काकी' की याद दिलाती है। बूढ़ी काकी और चीफ की दावत की 'माँ' पुरानी पीढ़ी से हैं। दोनों भोज या दावत के दिन ही भूखी रह जाती हैं। प्रेमचंद की बूढ़ी काकी जहाँ भतीजे की उपेक्षा का शिकार होती हैं वहीं 'चीफ की दावत की माँ' बेटे की। अर्थात् परिवार में पुरानी पीढ़ी के प्रति नई पीढ़ी और अधिक संवेदनाशून्य हुई है। बूढ़ी काकी का जूठा पत्तल चाटना भतीजे को द्रवित कर देता है, लेकिन चीफ की दावत में माँ की उपयोगिता बेटे को श्रद्धावनत बना देती है। प्रेमचन्द के यहाँ पुरानी पीढ़ी जो दया के पात्र दीखते हैं,नई कहानी में पुरानी पीढ़ी अपनी उपयोगिता से नई पीढ़ी के लिए उपयोगी हो जाते हैं। इस कहानी के माध्यम से भीष्म साहनी ने यह दर्शाया है की पुरानी पीढ़ी अभी अप्रासंगिक नहीं हुई है। जब उदय प्रकाश की कहानी 'छप्पन तोले का करधन' को पढ़ते हैं तो आज के समाज की नग्न तस्वीर से रू-ब-रू होते हैं। बेटे और बहू अपनी बूढ़ी माँ से करधन प्राप्त करने के लिए '' ...दादी को बीमारी में भी बहुत डराया धमकाया। छुरा चमकाती रही, दादी का गला दबाया और नाक-मुँह बन्द करके उनकी साँस भी देर तक रोकी। साँस रुकने से दादी का शरीर गुब्बारे की तरह फूल गया, लेकिन उन्होंने तब भी नहीं बताया की करधन कहाँ हैं।'' आज के समाज में वृद्धों के प्रति संवेदनहीनता कितनी अधिक बढ़ गई है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने बता दिया है।

'पिता' ज्ञानरंजन की महत्त्वपूर्ण कहानियों में से एक है। इस कहानी में रूढ़ियों से पिता के ज़िद्दी रूप को व्यक्त किया गया है। संयुक्त परिवार के टूटने और नई पीढ़ी का रुझान शहरों की तरफ होने के कारण वृद्धों की समस्याएँ बढ़ती ही जा रहीं हैं। 'पिता' कहानी के पिता असहाय नहीं है। वे परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढाल लेते हैं। वे स्वाभिमानी हैं। किसी का एहसान नहीं लेना चाहते, यहाँ तक कि अपने बेटों का भी नहीं। बच्चे जब अपने पिता के लिए सुख-सुविधा का प्रबंध करते हैं और पिता इसे नकार देता है, तो पुत्रों को लगता है कि पिता के बुलंद दरवाज़ा नुमा व्यक्तित्व से टकराकर वे भावनात्मक रूप से लहुलुहान हो गए हैं, लेकिन उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' के पिता अपने परिवार से उपेक्षित होकर अकेले जीवन जीने को विवश होते नज़र आते हैं। परिवार के सभी सदस्य स्वयं में सिमटे हुए हैं और एक दूसरे से अलग और कटे-हुए से हैं। वे अपने ही घर में एक मेहमान बनकर रह गए हैं। आज की वास्तविकता यही है कि परम्परा द्वारा मान्य संबंधों पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है और एक हद तक इन्हें निरर्थक बना दिया है।

सुधा ओम ढींगरा और उषा प्रियंवदा प्रवासी लेखिकाओं में विशेष स्थान रखती हैं। इनकी रचनाओं में यह प्राय: देखा जाता है कि वे अपनी कथ्यों के प्रति सचेत रहतीं हैं, उनके लेखन में समाया प्रवासियों का दर्द उन्हें अन्यों से विशेष बनाता है। अन्यों की अपेक्षा उषा प्रियंवदा और सुधा ओम ढींगरा प्रवासी भारतीयों के मानस की अच्छी जानकार हैं। प्रवासी भारतीयों की सोच भारत में हो रहीं गतिविधियों से भी संचालित होती है, और यह संचालित सोच प्रवासी लेखन में बखूबी दिखाई भी देती हैं, फिर चाहे वो कोई भी विधा हो। प्रवासी कथा साहित्य जिसका रंग-रूप भारत के पाठकों के लिए एक नएपन का बोध देता है, कारण है, प्रवासी कथा साहित्य में अपने अपनाए हुए देश के परिवेश, संघर्ष, विशिष्टताओं, रिश्तों और उपलब्धियों पर जानी -मानें प्रवासी कथाकारों ने अपने लेखन के द्वारा एक भिन्न समाज से परिचय करवाया है। विषय समाज की ठोस

समस्याओं से जुड़े होते हैं और नारी चरित्रों एवं परिवेश के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों और अन्याय का अनावरण भी किया जाता है। प्रवासी के लिए यह आसान नहीं होता कि वह अपने अपनाए हुए देश की संस्कृति, सभ्यता और रीति-रिवाज़ से पूरी तरह जुड़ पाए। उनकी जड़ें अपनी मातृभूमि, संस्कारों एवं भाषा से जुड़ी होती हैं। और जहाँ तक स्त्री की बात आती है तो सभी धर्मों और देशों में नारी का रुतबा हमेशा से दोयम दर्जे का रहा है। जो प्रवासी रचनाकारों की कथाओं में भी झलकता है।

प्रवासी कथा-साहित्यकारों में ऐसे बहुत से नाम है, जिनकी रचनाओं को पढ़कर आप बखूबी अनुमान लगा लेंगे कि आज भी विदेशों में रहते हुए वे दुनिया को भारतीय चश्में से देखते हैं, इसीलिए उनका लेखन नएपन के बावजूद भी पाठक के दिल के करीब होता है और मन को छू जाता है। अमरीका में विगत 25 वर्षों से रह रहीं जानी-मानी कथाकार सुधा ओम ढींगरा के कहानी संग्रह, 'कौन सी ज़मीन अपनी', में यह कहानी 'क्षितिज से परे', पाठक को वाकई सोचने पर मजबूर कर देती है कि, औरत ही हमेशा त्याग की मूरत बनी रहे,पुरुष चाहे भारत की जमीं पर रहता हो या विदेशी जमीं पर कहानी की नायिका, सारंगी जो सिर्फ सत्रह साल की उम्र में अपने पति सुलभ के साथ अमेरिका के एयरपोर्ट पर डरी -सहमी -सी उतरी थी और अमेरिका में पहले ही दिन उसके पीएॅच.डी उम्मीदवार पति ने उसे 'बेवकूफ़' कह कर पुकारा था और चार पढ़े -लिखे और अच्छे कैरियर वाले बच्चों की माँ होने के बावजूद चालीस साल तक उसका पति उसे बेवकूफ़ कह कर पुकारता रहा, सारंगी त्याग और सहिष्णुता की देवी बनी सारे कर्त्तव्य चुपचाप निभाती रही। अंत में वह फैसला करती है कि उसे अपने पति को तलाक देना होगा, उसका पति अभी भी चालीस साल पहले की मानसिकता में जी रहा है। दसवीं पास सारंगी, जिसने हर रोज़ पराए देश में संघर्ष किया, सोच और समझ दोनों में बहुत आगे निकल गई है। वह अब और अपने पति से जुड़ी नहीं रह सकती। उसकी प्राथमिकताएँ बदल गई हैं। सारी ज़िम्मेदारी का निर्वाह करने के बाद आज वो आख़िर कार हिम्मत जुटा पाई है...कि अपने आसमान की तलाश उसे करनी ही होगी, जहाँ वो उम्र के पड़ाव को भी पछाड़ सकती है। चूँकि कोई भी कहानी रिश्तों और समस्याओं की तर्कसम्मत प्रस्तुति होती है, इसी कारण कहानी में समस्याओं का हल प्रस्तुत करने के लिए लेखिका ने विदेशों में रह रहे भारतीयों ख़ास कर महिलाओं के बारे में एक ग़लतफहमी को दूर करने का सफल प्रयास किया है। अमरीका की लेखिका रचना श्रीवास्तव को विदेश जाकर जो माहौल दिखा, उसमें वो कहती है कि, हम स्त्रियों की दशा थोड़ी कष्टप्रद होती है। भारतीय संस्कार और यहाँ के वातावरण में तालमेल बैठाना कठिन होता है। बहुत समय लगता है अपने आपको इस माहौल में ढालने के लिए, कभी किसी महिला का दर्द शब्दों में ढल कर कविता या कहानी का रूप ले लेता हैं। भारतीय समाज और विदेशी समाज की धारणाएँ अलग होते हुए भी.....पुरुष यहाँ पर भी सिर्फ अपने लिए ही जीता है.....इसकी मिसाल उनकी एक कहानी 'पार्किंग' है ...जिसमें नारी पात्रों के जरिये रचना श्रीवास्तव ने विदेशी समाज और भारतीय समाज की नारी के रिश्तों के प्रति सोच और त्याग को एक जैसा ही दर्शाया है, और पुरुष की स्वार्थी मानसिकता को भी। नायिका जूलिया का रूखा व्यवहार स्नेह को तब समझ आता है जब जूलिया उसे अपनी आपबीती सुनाती है कि, किस तरह वो पति के हाथों छली गई है और बेटे के एक्सिडेंट ने उसे और भी तोड़ दिया है पर वो फिर भी जीती है बेटे की ख़ातिर..... परिवेश कोई भी हो आज भी नारी ही चुपचाप सहती है परिवार और बच्चों की ख़ातिर।

अमरीका में चालीस वर्षों से प्रवासी होते हुए भी सुषम बेदी जी भारतीय समाज की संस्कृति और रीति रिवाज़ों को भुला नहीं पाई, जहाँ आज भी स्त्री हर रस्मों-रिवाज़ को निभाने में पूरा सहयोग करती है। चूँकि इस कहानी में स्त्री विदेशी मूल की है, तो उसका एक अलग ही रूप दर्शाया गया है, जो भारतीय स्त्री से कहीं भी मेल नहीं खाता, और उसकी पीड़ा नायक सहता है। सुषम बेदी जी की कहानी 'अवसान' में नायक शंकर अपने दोस्त दिवाकर का अंतिम संस्कार हिंदू रीति से करना चाहता है; परंतु उसकी अमेरिकी पत्नी हेलन चर्च में ही सारी औपचारिकताएँ पूरी करना चाहती है। यहाँ नारी का दूसरा रूप दर्शाया है जो 'पार्किंग' कहानी की नायिका के बिलकुल विपरीत है, जबकि दोनों नायिकाएँ अमरीकी मूल की हैं। हेलन शंकर का साथ न देकर ज़िद पर अड़ी हैं,जिसके चलते शंकर, पादरी की क्रिया खत्म होते ही गीता के श्लोकोच्चारण से अपने मित्र के अंतिम संस्कार की क्रिया को पूर्ण करता है और फिर वो कैसे बहुत संयत तथा हल्का महसूस करता है।

ब्रिटेन की शैल अग्रवाल की कहानी 'वापसी' में परम्परा तथा आधुनिकता के अंतर्द्वंद्व में फंसी नायिका पम्मी अपने घर-परिवार की मान-मर्यादा के लिए अपनी खुशियों तथा आकांक्षाओं का गला घोंट देती है। नारी को फिर त्याग की मूर्ति दिखाया है। उसके हिसाब से हित के लिए लिया गया निर्णय सौदा नहीं, त्याग होता है और वह कहती है कि मैं ही क्या हमारे यहाँ तो हज़ारों पम्मियाँ सदियों से ही करती आ रही हैं। नारी-हित की बातें करने वाले इस देश में बस यही होता आया है। पहले राधा-कृष्ण अलग किए जाते हैं फिर उनके मंदिर बना दिए जाते हैं 'आदत डाल लो तो समंदर में तैरती मछली भी खुशी-खुशी काँच के बॉल में तैरने लग जाती है।' परम्परा तथा आधुनिकता के अंतर्द्वंद्व में फँसी पम्मी अंततः हेमंत के साथ जाने को तैयार हो जाती है और खास बात तो यह कि उसकी दादी भी उसकी वापसी के लिए अपनी सहर्ष सहमति देती है। कहानी के अंत को पढ़कर पुरानी पीढ़ी की नारी (दादी) को नए परिवेश में ढलते दिखाना कहीं न कहीं बदलते समाज का रूप है ...चाहे धीरे-धीरे ही सही। नारी का एक विश्व प्रसिद्ध रूप कर्मठता का भी है, चाहे वह देशी है या विदेशी महिला, अपनी मेहनत और लगन से कुछ भी हासिल कर सकती है और लंदन

की उषा राजे सक्सेना अपनी कहानी, 'बीमा बीस्माट' में एक बिल्कुल नए कथानक से पाठकों को परिचित कराती हैं। कहानी एक शिक्षिका द्वारा एक अर्धविक्षिप्त बालक बीमा बीस्माट को एक ज़िम्मेवार ब्रिटिश नागरिक बनाने की कड़ी मेहनत, लगन और समर्पण को प्रस्तुत करती है। गौतम सचदेव की कहानी 'आकाश की बेटी' साधना नाम की स्त्री के त्यागपूर्ण तथा संघर्षमय जीवन की कथा है। घर-परिवार के सारे रिश्तों को तोड़कर व तमाम सुख-सुविधाओं को छोड़कर जिस देविंदर के प्यार के लिए साधना झूठ बोलकर इंग्लैंड चली जाती है, वहाँ जाने पर देविंदर द्वारा छली जाती है। देविंदर का रूखा व्यवहार तथा एक अन्य ब्रिटिश मेम शाइला से प्यार उसे तलाक के लिए मजबूर कर देता है। दूसरी शादी में भी उसे इसी प्रकार की समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है। वह अपनी बेटी बबली को भी गँवा देती है। अपने घर के दालान में कबूतरों को दाना चुगाती साधना के जीवन में आई एक नई कबूतरी, जिसकी शरारतें कुछ-कुछ बबली से मिलती-जुलती हैं। अब साधना उसी के इंतज़ार में रहती है और उसी को जीने का सहारा मानकर खुश रहती है।

प्रवासी कथाकारों ने अपने साहित्य के द्वारा स्त्री के हर रूप को शब्दों में बाँध बारीकी से दर्शाने की बहुत ईमानदारी से कोशिश की है। अमरीका की ही एक और कहानीकार पुष्पा सक्सेना की कहानी 'विकल्प कोई नहीं', में माँ को बेटे के चले जाने के बाद, दर्द को छिपाकर सिर्फ बहू की आने वाली लंबी ज़िन्दगी के बारे में सोच कर, बहू का बेटी की तरह कन्यादान करना और बहू का अतीत से बाहर न आ सकना, बारीकी से दिखाया है। और औरत का यह रूप जहाँ, वो सास से माँ बन कर फिर एक मार्गदर्शक के नाते बहू सौम्या को समझाना कि, 'दूसरा पति,पहले का विकल्प नहीं हो सकता', नारी की बुद्धिमत्ता का द्योतक है। और दूसरी तरफ बिलकुल इसके विपरीत लंदन के सुप्रसिद्ध कथाकार तेजेन्द्र शर्मा की कहानी 'देह की कीमत', में अपने पति हरदीप को, जिसके साथ पम्मी ने सिर्फ 4-5 माह ही व्यतीत किए थे, जिसे वह विदेशी धरती जापान में खो चुकी है, उसके दुखों और भविष्य की परवाह न करते हुए, बीजी (सास) ऐसे विषम क्षणों में भी तिजारत और व्यावहारिक फायदे नहीं भूलती। बेटे की मौत के बाद मित्रों द्वारा चंदे के भेजे पैसे बहू को न मिल पाएँ, बल्कि घर में ही रहे, यह सोचकर वो अपने दूसरे बेटे से विधवा बहू पर चादर ओढ़ाने की बात करती है। औरत के ऐसे स्वार्थी चेहरे को तेजेन्द्र शर्मा ने बड़ी ही कुशलता से उकेरा है। एक और प्रवासी कथा लेखिका उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' में औरत का बिलकुल अलग रूप देखने को मिलता है, जो घर-गृहस्थी और बच्चों के कारण वर्षों पति से अलग रहती है और जब सेवानिवृत्त हो कर पति साथ रहने आता है तो सब कुछ बदला हुआ पाता है। यहाँ तक कि पत्नी भी साथ नहीं रह पाती, अंतराल प्यार खतम कर चुका होता है।

अमेरिका की जानी मानी कथा लेखिका सुदर्शन प्रियदर्शिनी ने अपनी कहानी 'धूप' के माध्यम से नारी के मन के अंतर्द्वंद्व को उकेरा है। जिसमें नायिका रेखा अमरीका की धरती पर कदम रखते हुई खुश है। समय के साथ उसे महसूस होता है कि उसका पति बिलकुल अमेरिकन बन चुका है और स्वार्थी भी। जैसे दूसरों की स्कीमों पर बने घरों में उम्र कट रही है। उसे अपनी मनपसंद की चौखट कभी मिल ही नहीं पाएगी, इसलिए दूसरों के बनाए हुए साँचों में ढल और अपना नापतौल भूलने से पहले वह किस तरह से समझदारी और हिम्मत से फैसला लेती है। क़ाबिले तारीफ है। कुल मिला कर प्रवासी-साहित्य में कथाकारों ने अपनी पारखी नज़रों और पैनी कलम से स्त्री के संघर्ष,त्याग, साहस और बुद्धिमता का ऐसा ख़ाका खींचने का प्रयास किया है, जिसमें देशी और विदेशी धरातल पर पाठकों को लाकर एक सवालिया निशान बना, उन्हें समाज में बदलाव लाने का न्योता देने का काम किया है।

* * *

संदर्भ: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, कौन सी ज़मीन अपनी, अभिव्यक्ति, साहित्य-शिल्पी, सृजन गाथा, शोध-दिशा

ग़ज़लें

प्रदीप कांत

बचती कब तक नाव मियाँ
कातिल रहा बहाव मियाँ
हाल शहर के बुरे अगर
आकर देखो गाँव मियाँ
ऊन वही पर सर्दी में
बढ़ जाता है भाव मियाँ
आप वहाँ थे फिर कैसे
लगता अपना दाव मियाँ
बेबस हम तुम दोनों हैं-
तुमसे कौन दुराव मियाँ
तब की तब ही देखेंगे
होगा जब बदलाव मियाँ
आज कुरेदो मत फिर से
भरा बमुश्किल घाव मियाँ

* * *

नज़र बचा कर बोली आँखें
करती आँख मिचोली आँखें
ख़बर सुबह की दी चिड़िया ने
हमने अपनी धो ली आँखें
उन्हें संदेसा पहुँचाना था
आँखों ने फिर तोली आँखें
आँखें ही जब फेरी तुमने
किस से करें ठिठोली आँखें
भूल गईं सब आगा पीछा
आज हुई बड़बोली आँखें
मेरा नाम न पढ़ ले कोई
बन्द करो ये भोली आँखें
होठ भिंचे रह भी सकते हैं
रहती नहीं अबोली आँखे

* * *

संपर्क : डी-8, सेक्टर-3, केट कॉलोनी,
इन्दौर - 452 013, मध्य प्रदेश
मोबाइल : 94074 23354
इमेल : kant1008@rediffmail.com,
kant1008@yahoo.co.in

आवरण चित्र कथा

एक दिन बन सकूँ चिड़िया

पल्लवी त्रिवेदी

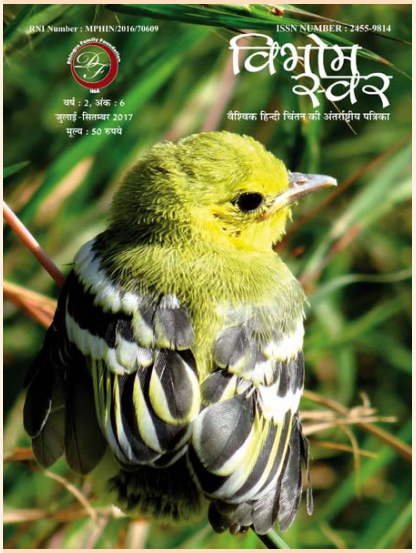

संपर्क : एफ़ 6/17, चार इमली, भोपाल मप्र, 462001
trivedipallavi2k@gmail.com

वह 30 सितम्बर 2012 की एक खूबसूरत सुबह थी। कोई छुट्टी का दिन था और मैं हर इतवार की तरह वन विहार जा पहुँची थी अपना कैमरा उठाकर। उन दिनों चिड़ियों की फ़ोटोग्राफ़ी शुरू ही की थी और सही मायनों में वह वक्त चिड़ियों की दुनिया से परिचित होने का था, उनसे दोस्ती बढ़ाने का था, उन्हें जानने का था। कैमरा सिर्फ एक पुल का काम कर रहा था मेरी और परिंदों की दुनिया के बीच। वह वक्त था जब हर तीसरी चिड़िया मेरे लिए नई होती थी। उनके नीले, पीले, कत्थई रंग मोह-मोह लेते थे। हर नई चिड़िया को देखते ही पागलों की तरह कैमरा उठाकर उसके पीछे भागती थी। अगर क्लिक मिल जाता था तब घर आकर सबसे पहले उसका नाम देखती थी और इस तरह वह चिड़िया मेरी स्मृति का अटूट हिस्सा बन जाया करती थी।

उस सुबह भी ऐसा ही हुआ था। पूरा जंगल चिड़ियों की चहक से गूँज रहा था। बहुत से पक्षियों की फ़ोटो मैं ले चुकी थी मगर एक भी नई चिड़िया नहीं मिली थी उस रोज़। गाड़ी एक किनारे खड़ी कर मैं कैमरा थामे पैदल ही घूम रही थी। अचानक पीले रंग की एक नन्हीं-सी बेहद खूबसूरत चिड़िया मेरे सामने से एक बार उड़कर गुज़री और झाड़ियों में कहीं ओझल हो गई! उसकी एक झलक देखकर ही मैं बेचैन हो उठी और उसे ढूँढ़ने के लिए पागलों की तरह झाड़ियों में घुस गई। मगर वह नहीं मिली। निराश-सी मैं बाहर निकलकर गाड़ी के पास जा खड़ी हुई। कितनी खूबसूरत नन्हीं चिड़िया थी! पता नहीं क्या नाम था ? ठीक से देख भी न पाई कि घर जाकर किताब में नाम खोज सकूँ। मैं इन्ही सब ख़यालों में खोयी हुई थी कि अचानक वही नन्हीं चिड़िया मेरे कैमरे पर आकर बैठ गई।

ओह गॉड.. क्या ये यकीन करने वाली बात है ? वही पीली नाज़ुक चिड़िया मेरे कैमरे पर बैठी लेंस पर चोंच मार रही थी। इतने करीब से मैंने पहली बार किसी चिड़िया को देखा। वह वयस्क चिड़िया नहीं बल्कि चिड़िया का छोटा बच्चा था जिसके पंख भी ठीक से अब तक नहीं आए थे और शायद उड़ना सीख ही रही थी। सिर्फ बच्चे ही मनुष्य से नहीं डरते। उनकी मासूमियत उन्हें सब पर भरोसा करना सिखाती है।

एक नन्हीं बेतरह खूबसूरत पीली चिड़िया मेरे कैमरे पर बैठी थी। मैं बिना हिले बस उसे निहार रही थी। अचानक उसने फिर एक नन्हीं उड़ान भरी और अब के सीधे कार की खुली खिड़की से कार के भीतर। मैं हँस पड़ी ! कार में जाकर बैठी और जी भर कर उसके फ़ोटो लिए। जी भर कर लाड़ से उसको निहारा ! फिर जब देखा कि यह छुटकी तो निकलने के मूड में नज़र नहीं आती तब उसे धीरे से अपनी हथेली पर लेकर एक शाख पर बैठा दिया। उसकी माँ इंतज़ार करती होगी। मैं खुश थी कि इसने मुझे अपना दोस्त समझा, मुझे अपने करीब आने दिया। बहुत बड़ी बात है यह किसी भी इंसान के लिए कि एक नन्हा परिंदा उस पर भरोसा करता है ।

यह पीली चिड़िया कॉमन आयोरा का बच्चा है और इसके साथ एक सुंदर वक्त बिताने के बाद इसे जिस शाख पर बैठाया था, उसी शाख का ये चित्र है। इसे विदा लेने के ठीक पहले का चित्र जो जितना स्पष्ट और खूबसूरत कैमरे में है, उससे कहीं ज़्यादा खूबसूरत और क्लियर मेरी स्मृति में। इसे एक बर्ड फ़ोटोग्राफर से ज़्यादा एक पक्षी प्रेमी के तौर पर याद रखती हूँ हमेशा। मैं हमेशा शुक्रगुज़ार रहूँगी इस बच्ची की। इस चिड़िया ने मेरे और परिंदों के बीच के फासले को थोड़ा और कम किया था। कभी चिड़ियों को शुक्रिया कहते हुए एक कविता में लिखा था कि-

''मनुष्य अगर पूरा मनुष्य बन जाए
तो चिड़िया और मनुष्य में
कोई फर्क नहीं होता
मैं थोड़ा और मनुष्य होने की कोशिश में हूँ
कि एक दिन बन सकूँ चिड़िया''

मैं कह सकती हूँ-

इसने मुझे थोड़ा सा चिड़िया बनाया था उस दिन ।

***

जो ख़ौफ़ आँधी से खाते तो.....

संतोष श्रीवास्तव

अंडमान के सबसे बड़े द्वीप रंगत में एक यादगार दिन और रात गुज़ार कर अब बाराटाँग द्वीप के लिए हम निकल पड़े। हमारी वैन में आदिवासियों के विशेषज्ञ वर्मा जी,मानव विज्ञानी बेंजामिन जी और पुरातत्वविद् डॉ. डेनियल भी थे। जो हमारे खास अनुरोध पर अंडमान निकोबार के आदिवासियों के बारे में जानकारी देने के लिए साथ आए थे। सबसे पहले पोलिस आऊट पोस्ट पारलोब्जिक नंबर 15 कदमतल मिडिल अंडमान पर हमारी वैन रुकी। जहाँ पुलिस चेकिंग होती है। यहीं से जारवा आदिवासियों का क्षेत्र शुरू होता है। यहाँ के एग्जीक्यूटिव सेक्रेटरी के ऑर्डर पर जारवाओ के लिए कुछ हिदायतें सड़क के दोनों ओर बोर्ड पर लिखी हैं। उनकी तस्वीरें लेना मना है, उनका हमारे वाहन के अंदर प्रवेश मना है, आप दरवाज़ा खिड़कियाँ बंद रखें, खाने पीने की कोई भी चीज़ उन्हें ना दें, उनके नज़दीक वाहन ना रोके, उन्हें कपड़े आदि ना दें। पर ऐसा क्यों ?....मेरे मन में बड़ी देर से सवाल कुलबुला रहा था। जवाब दिया वर्मा जी ने...''यहाँ की सरकार उनके प्रति बहुत सतर्क है। शुरू में ये पर्यटकों द्वारा कुछ नहीं दिए जाने पर ज़हर बुझे तीर से उन पर हमला करते थे। क्योंकि पर्यटकों ने खाने पीने की चीज़ें कपड़े आदि दे देकर उनकी आदत बिगाड़ दी थी। इन के तीर चलाने से अगर कोई पर्यटक मर जाता था तो उसे कंधे पर लादकर अपने ठिकाने पर ले जाते थे।''

अभी तक मेरे मन को माकूल उत्तर नहीं मिला था।आदिवासियों के बारे में सरकार के ऐसे रवैय्ये से मैं हैरान थी पर बहुत जल्दी सब कुछ पता नहीं चल पाएगा सोच कर मैंने वैन के स्टार्ट होते ही खिड़की पर निगाहें टिका दीं।

रास्ते में एक आदिवासी अस्पताल पहाड़ की ऊँचाई पर बना देखा। चढ़ाई पर तीन बीमार

संपर्क: सी-1/1, शासकीय आवास, इंजीनियरिंग कॉलेज के सामने, औरंगाबाद, 431005, महाराष्ट्र
ईमेल: kalamkar.santosh@gmail.com
मो:09769023188

आदिवासी बैठे थे। चट्टान जैसे काले और नग्न। इनका उपचार सरकार द्वारा किया जाता है। इनकी घटती आबादी के कारण सरकार इन्हें बचाने का भरसक प्रयास कर रही है। रास्ते में बालुडेरा बीच देखने का आग्रह डेनियल का था। वैन रुकते ही सड़क के किनारे से ही शरू श्वेत बालू पर हम दौड़ पड़े। निर्जन, शांत बीच क्योंकि इलाका दलदली था अत: पेड़ के तने का पुल बनाया गया था ताकि बीच का आनंद लिया जा सके। समुद्र अपनी निर्जनता में भी सौंदर्य बिखेरने में जुटा था। फेनिल लहरों की झालर जब तट से टकराती तो लगता चाँदनी के सफेद फूल बिखर गए हो।

''यही पास में एक पेड़ है जो रात को पानी बरसाता है''

वैन का ड्राइवर राजा बेचैन था हमें उस पेड़ तक ले जाने के लिए; लेकिन यह तो वनस्पति शास्त्र का फॉर्मूला है कि जो पेड़ ज़रूरत से ज़्यादा पानी अपनी जड़ों और तने में जमा कर लेते हैं रात में अपनी पत्तियों के जरिए उस पानी को टपका देते हैं, फिर भी राजा के जोश ने हमें पेड़ देखने पर मजबूर कर दिया। अब हम गाँधी जेट्टी की ओर थे। जहाँ से छोटे जहाज़ में बैठकर हमें उत्तरा जेट्टी जाना था। अब इसे बाराटाँग जेट्टी कहते हैं। गाँधी जेट्टी पर दूर-दूर तक घना जंगल और इक्का-दुक्का मकान है। सड़क के दोनों ओर चाय नाश्ते के स्टॉल।

जब हम चाय पी रहे थे तो चाय वाले ने बताया ''जारवाओं को पता है कि दूब पूजा के काम आती है तो वह बहुत सारी दूब लेकर आते हैं। और उसके बदले में हमसे चाय बिस्किट माँगते हैं। लेकिन यहाँ की पुलिस उन्हें जीप में बैठा कर वापस जंगल में छोड़ आती है। इन्हें खाने की चीज़ें नहीं देने देती। हमारा मन तो बहुत होता है कि दें पर ये चटपटा मसालेदार नाश्ता हजम नहीं कर पाते। बीमार पड़ जाते हैं। बीमार व्यक्ति को जंगल से सड़क पर ला कर लिटा देते हैं। और पुलिस,वन विभाग को परेशानी में डाल देते हैं।'' चाय वाले से आदिवासियों की इतनी महत्त्वपूर्ण जानकारी ने मेरे मन को थोड़ा तो शांत किया। एक और चाय का गिलास ले मैं थोड़ी दूर जंगल की ओर जाती

पगडंडी को निहारने लगी। इस जंगल में कहाँ होंगे जारवा? हम वैन सहित जहाज़ में बैठकर बाराटाँग आ गए, जहाँ से हमें प्रकृति के अद्भुत करिश्मे लाइमस्टोन गुफा जाने के लिए एक नाव लेनी थी। नाव में हम छै .....धूप ऐन सिर पर..... सागर में उमस सी लगी, शायद धूप हो वजह। मैंने और प्रमिला ने अपने-अपने छाते खोल लिए पर हवा में छाते को सँभालना मुश्किल हो रहा था। नाव जब सागर के बीचों-बीच आई तो मैंग्रोव्ज़ के झुरमुट शुरू हो गए। उनकी उभरी जड़ों ने सागर को दो भागों में बाँट दिया था। हमारी नाव बीच से गुज़र रही थी। तभी एक विशाल मगरमच्छ मैंग्रोव के झुरमुट से प्रगट हो हमारी नाव की ओर लपका। हमने आँखें बंद कर ली ''हे प्रभु रक्षा करो ''

तभी राजा की आवाज़'' मैडम आँखें खोल लीजिए वो चला गया'' डरते-डरते सब ओर गर्दन घुमाई। मगरमच्छ कहीं नहीं था। समुद्र की सतह पर कुछ जल पक्षी तैर रहे थे। सफेद पंख, गुलाबी चौच .....अब मैंग्रोव्ज़ के झुरमुट और नज़दीक आ गए। कभी नौका बाएँ उनकी उभरी जड़ों से टकराती तो कभी दाएँ।

केवट घुटने-घुटने पानी में उतर कर नाव का संतुलन सँभाल रहा था। किनारा दलदली था। किनारे से थोड़ी ऊँचाई पर डालियाँ बिछा कर रास्ता बनाया गया था।इस हिलते और लचीले रास्ते पर चलना जोखिम भरा था। ज़रा सा पैर फिसला कि डालियों के बीच से सीधे दलदल में। दलदली इलाका खत्म होते ही पुल भी खत्म हो गया। एक वनकर्मी हमें रास्ता बताने साथ साथ चलने लगा। अपार सुंदरता से भरे जंगल में लगभग बीस मिनट का पैदल रास्ता.... अद्भुत .....जैसे मैं हॉलीवुड की फिल्म का कोई पात्र हूँ और घने जंगल में शूटिंग चल रही हो। बीस मिनट के बाद वनकर्मी एक गुफा के सामने रुक गया। अंदर प्रवेश करते ही जैसे खज़ाना खुल गया हो। सामने तेज़ सर्च लाइट की रोशनी में नुकीली कैल्शियम कार्बोनेट की ठोस चित्रकारी..... नहीं, नहीं शिल्प में आँखें चौधिया सी गईं। कलकत्ते से आए विद्यार्थी विद्युत सेन ने जो कि पिछले 3 महीने से इन गुफाओं का अध्ययन कर रहा है और अंडमान प्रशासन द्वारा मार्गदर्शक के रूप में नियुक्त किया गया है गुफाओं में अंदर जाने से पहले हमें पूरी जानकारी दी। बताया....'' ये गुफाएँ यहाँ 70 से ऊपर की संख्या में है। लेकिन अभी इन की खोज खत्म नहीं हुई है। टूरिस्ट के लिए बस यही एक गुफा खुली है। इन गुफाओं का जब कुछ शिकारियों को पता चला तो उन्होंने इसकी खबर नौसेना को दी। नौसेना ने जंगल विभाग को विस्तृत जानकारी दी। अब पूरा इलाका जंगल विभाग के मातहत है। गुफाओं का पता 3 साल पहले चल गया था। 2 साल से पर्यटक आने लगे हैं। पहले आप देख ले कि सर्च लाइट ऑफ करने पर यहाँ कितना अंधेरा है।''

सर्च लाइट ऑफ़ होते ही जैसे मैं अँधेरे के भयावह गर्त में डूब गई। हाथ को हाथ सुझाई नहीं दे रहा था आख़िर कैसे खोजी होंगी उन शिकारियों ने ये गुफाएँ। सर्च लाइट जलते ही विद्युत आगे-आगे धीरे-धीरे चलिए मैडम और दीवार को ज़रा भी टच ना करें। रिक्वेस्ट है। छूने से उनकी सुंदरता मैली होने का डर है। कैल्शियम के पेरेंट रॉक्स है इनके अंदर। इसके ऊपर मिट्टी,पेड़ पौधे, हर्ब,शर्ब हैं। यानी जंगल। कैल्शियम को लेकर पानी नीचे की ओर बहता है। कैल्शियम इकठ्ठा होता जाता है। पानी बहता रहता है। बूँदों के रूप में। बूँदे रिस-रिस कर इकट्ठा होती जाती है। और ठोस होने की प्रक्रिया चलती रहती है। जो ऊपर झाड़ फानूस जैसी चट्टानें लटकी हैं उन्हें रूफ पेंडेंट्स कहते हैं। मुझे लगा नुकीले शिखरों वाला पर्वत किसी ने ओन्धा लटका दिया है। कैल्शियम रॉक्स में अद्भुत दृश्य दिखते हैं। किसी को गणेश, किसी को भीम की गदा

''मैडम आप को ?''

विद्युत पूछता है। उसके साँवले सलोने चेहरे पर कितनी चमक है। जैसे इन गुफाओं का निर्माण उसी ने किया हो।

''शिव जी का नंदी आपको मैंने ए प्लस दिया। वाह,क्या कल्पना है आप की। अद्भुत।''

सभी फोटो खींचने में तल्लीन थे। लौटते हुए जंगल की दूरी अधिक लंबी लगी। मैं जल्दी-जल्दी नाव तक आई। अब आदिवासियों के इलाके से जो गुज़रना है।

वहाँ से जहाज़ लेकर हम मिडिल स्ट्रीट आए। यहाँ से डिगलीपुर तक की 290 किलोमीटर की दूरी जारवा आरक्षित क्षेत्र घोषित की गई है। लगभग डेढ़ घंटे का आदिवासियों का इलाका.... सड़क के दोनों ओर हज़ारों साल पहले का वन्यजीवन.....आदिम सभ्यता के दर्शन इसी मार्ग से गुज़रते हुए किए। यहाँ वाहनों की सुरक्षा के लिए सुरक्षागार्ड और पुलिस साथ चलती है। सारे वाहन एक कतार में आगे बढ़ते हैं और पहले और आख़िरी वाहन में पुलिस बंदोबस्त रहता है। दोनों ओर घने जंगलों के बीच ऊँची नीची सड़क से गुज़रता हमारा कारवाँ... मै खिड़की से नज़रें एक पल को भी नहीं हटा रही थी। न जाने कब कहाँ जारवा दिख जाएँ कि डेनियल कान के पास मुँह ला कर फुसफुसाए ''वो देखिए''

मैंने देखा सड़क से जंगल की ओर उतरते झुरमुट से दो आदिवासी लड़के प्रगट हुए। कोलतार जैसे काले चेहरे पर लाल पीली धारियाँ चित्रित थीं। कमर के नीचे कपड़े का टुकड़ा लटक रहा था। वे मेरे सामने आकर वाहन में झाँक कर देखने लगे। राजा वैन मंथर गति से चला रहा था। कतार के सारे ही वाहन धीमी गति से चल रहे थे। सामने दो आदिवासी औरतें पीठ पर बैंत की टोकरी में बच्चे लिए खड़ी थीं। ऊपर से एकदम निर्वस्त्र लेकिन कमर पर पत्तों की झालर बाँधे जो जाँघो को ढक रही थी।

''देख रही है ना मैडम जारवाओ को। विश्व में संभवत: यही ऐसे आदिवासी है जो सबसे सादा जीवन बिताते हैं। दक्षिण मध्य अंडमान के पश्चिमी किनारों पर 765 किलोमीटर फैले वनों में इनका निवास है। पहले तो यहाँ से गुज़रना मुश्किल था। हालाँकि यह जंगली शिकार से अपना जीवन यापन करते हैं। परंतु लोगों के संपर्क में आने से इन्हें परहेज है बल्कि उन्हें देख ए ज़हर बुझे तीरों से उन पर हमला कर देते थे। वो घटना सुनाइए न वर्मा जी''

बेंजामिन बेताब थे लेकिन वर्मा जी की पान तंबाकू की आदत। पहले डिबिया खुली। पान मुँह में रखा गया। चुटकी में तंबाकू ले कर खुले मुँह में भूरकी तब कहीं जाकर बात का सिरा पकड़ में आया।

''1998 की घटना है। जारवा समूह का 20 वर्षीय लड़का नारियल के पेड़ से नारियल तोड़ते हुए गिर पड़ा। उसका पैर टूट गया। हड्डी तोड़ दर्द की असहनीय पीड़ा में वह छटपटा रहा था कि तभी सुरक्षा गार्ड की नज़र उस पर पड़ी। पुलिस की मदद से उसे अस्पताल लाया गया और फौरन इलाज शुरू कर दिया गया। जब उसे होश आया तो वह पलंग पर छटपटाने लगा। अपनी भाषा में शायद अपने कबीले में लौट जाने की ज़िद कर रहा हो। उसे जो कपड़े पहनाए गए थे उन्हे पकड़-पकड़ कर खींचने लगा। लेकिन नर्सों और डॉक्टरों के सहयोग से वह धीरे-धीरे शांत हो गया। उसे दर्द में आराम मिला। वह अस्पताल के कर्मचारियों से घुल मिल गया। 3 महीने अस्पताल में रहा। जिस प्रकार का खाना खाया,जिस प्रकार के कपड़े पहने और जिस प्रकार की भाषा (हिंदी) सीखी उसने मानों उसे नई दुनिया की सैर करा दी। स्वस्थ होने पर पुलिस उसे वहीं छोड़ आई जहाँ से लाई थी। वह बाकायदा कपड़े पहने अस्पताल के कर्मचारियों, नर्सो, डॉक्टरों द्वारा दिए गए उपहार लिए जब अपने कबीले में लौटा और बताया कि बाहर की दुनिया कैसी है, तब

जाकर जारवा हमारे संपर्क में आए।

असल में इन्हें अंग्रेजो ने बहुत सताया था।18 वीं सदी में जब अंग्रेज़ों का यहाँ कब्ज़ा हुआ तो उन्होंने इन्हें जंगलों में खूब भीतर तक जाकर निवास करने पर मजबूर कर दिया था। उनके पास बंदूकें थी। जब तक जारवाओ के ज़हर बुझे तीर उन तक पहुँचते उन की गोली जारवाओं के सीने के पार होती। रक्त रंजित लाश कंधे पर डाल जारवा कबीला जंगलों में भागता। उन्हें लगता कि उनका शत्रु अभी भी उनका पीछा कर रहा है। यही वजह है कि वे सब लोगों को अपना शत्रु मानने लगे। जापानियों ने भी आदिवासियों की बड़ी संख्या को मौत के घाट उतार दिया था। ऐसी बर्बरता के रहते कौन सभी लोगों पर यकीन करेगा। ये आदिवासी हमारी धरोहर है। प्रकृति की गोद में पले-बढ़े। अपनी ही दुनिया में मस्त। कठोर जीवन जीते हुए लेकिन ये अंडमान में कब आए ? कहाँ से आए ?मेरे दिमाग में कौंधा था और मैंने अपनी नज़रें बेंजामिन और डैनियल पर टिका दीं।

डेनियल की हँसी मनमोहक थी और हिंदी लाजवाब।

''जैसे मैं कैनेडियन फिर भी इंडिया में। वैसे ही ये संसार की सबसे पुरानी पाषाण कालीन नीग्रिटो मूल की जनजाति है। इनके पूर्वज सदियों पहले दक्षिण मध्य अंडमान के जंगलों में आकर बस गए थे। 1991 में उनकी जनसंख्या 266 थी अब घट रही है। जब इन्हें पता चला कि इन्हें हमसे कोई खतरा नहीं है। तो जंगल में खाने-पीने की कमी होते ही ये सड़कों पर उतर आते हैं और वाहनों के गुज़रने का इंतजार करते हैं। हालाँकि इन्हें कुछ भी खाने-पीने की चीजें देने की प्रशासन से मनाही है। पर फिर भी मौज मस्ती के लिए आए पर्यटक इन्हें बिस्किट, नमकीन,मिठाईयाँ, चॉकलेट दे ही देते हैं; जिससे इनका स्वाभाविक जीवन छिन्न-भिन्न हुआ जा रहा है और इनका अस्तित्व खतरे में है।'' और तभी सामने वाली जीप से खाने की चीज़ों से भरा पैकेट सड़क पर आकर गिरा। जाने कहाँ से दो लड़के प्रकट हुए और पैकेट की ओर लपके। ब्रेक कर्कश ध्वनि करता झटके से

लगा। वे जीप के नीचे आते-आते बचे।

''कई इस तरह दुर्घटना में मर चुके हैं या घायल हुए हैं। तली भुनी चीज़ें इन्हें बीमार कर देती हैं। इनके लिए अस्पताल है पर वह सारी प्रक्रिया बड़ी कठिन है। हालाँकि यह इलाज के लिए जड़ी बूटियों और लाल मिट्टी के लेप पर निर्भर रहते हैं। ऐसी जड़ी बूटी खाते हैं जिससे इन्हें कभी मलेरिया नहीं होता। उनके समूह में बुज़ुर्ग तो नाम मात्र के बचे हैं। इसलिए इन्हें अपने रीति-रिवाजों की जानकारी नहीं है। देशी विदेशी पर्यटकों के लिए तो ये मात्र शोपीस बनकर रह गए हैं। जारवा घुमंतू जनजाति है। ये कहीं एक जगह स्थाई नहीं रहते। अपना ठिकाना बदलते रहते हैं। समुद्र में ये जहाज़ से भी तेज़ गति से तैरते हैं। यह निर्वस्त्र रहते हैं। औरतें पेड़ की छाल,पत्तों से अपना तन ढकती है। पीठ पर बेत से बनी चाय बागानों में इस्तेमाल की जाने वाली जैसी ही टोकरी बँधी होती है। जिसमें या तो बच्चा होता है या कंदमूल फल। प्रशासन ने मैत्री दल के जरिए इन्हें कपड़े बाँटे हैं। इन्हें लाल रंग के कपड़े बहुत पसंद है। मैत्री दल के संपर्क में आने के बाद इनके खाने-पीने का ढंग भी बदला है। पहले सब कुछ कच्चा खाते थे। केकड़ा तो ज़िंदा ही चबा जाते थे। मछली,केकड़ा, कछुआ उबालकर खाने लगे हैं।

मुंडन की परंपरा भी है इनमें। सिर के बाल भी मिलिट्री वालों की तरह छोटे-छोटे रखते हैं। कंधे पर तीर कमान होता है। कमर,गले और कलाइयों पर जंगली फूलों या नारियल के रेशो से बानी माला होती है। सारे जश्न आधी रात को मनाए जाते हैं।

दुनिया में कितना कुछ एक ही क्षण में घटित होता रहता है।

समुद्र में लहरें बनती बिगड़ती है,तारे उगते ढलते हैं,फूल खिलते मुरझा जाते हैं, हवा ठहरती बहती है।

मैं अपनी मुंबई में जब सूर्य दर्शन कर रही होती हूँ तब जंगलों के छतनारे वृक्षों से छन कर आती किरणों के सिंदूरी उजास में ये आदिवासी अपने दिन की शुरूआत कर रहे होते हैं। ज़िन्दगी इसी तरह चलती है कि जैसे पूरी सृष्टि एक मुसाफिर है। चलो

...चलो.... चलते रहो। उसी में सौंदर्य है। गति के सौन्दर्य में ही दृष्टि का उत्सव है।

वैन अब समतल रास्ते पर थी। घने दरख्त के साए में एक तमिल औरत नारियल बेच रही थी। साथ में खूब बड़े-बड़े कठहल भी। राजा ने वैन रोकी। तमिल भाषा में उस औरत को हम सब के लिए नारियल का आर्डर दिया। जब मैं मुंबई से अंडमान निकोबार द्वीपों की सैर के लिए रवाना हुई थी तो इन द्वीपों पर रहने वाली आदिम जनजातियों के बारे में मुझे पता चला था कि 19 वीं सदी के मध्य में अंडमान द्वीपसमूह में 10 आदिम जनजातियाँ रहती थीं। उनके कई समूह थे। सात हज़ार के लगभग जनसंख्या थी। लेकिन जैसे ही अंडमान द्वीपसमूह उपनिवेशकों ने बसाने शुरू किए ये जनजातियाँ संक्रामक रोगों का शिकार हो गईं। अब तो उनमें से बस 6 ही जनजातियाँ बची हैं। जावा, सेंटिनल, ग्रेट अंडमानी, ओंगी, कार निकोबारी और शोपेन। बेंजामिन मानव विज्ञानी है। साथ ही आदिम जनजातियों के कल्याण कार्यों में लगातार सक्रिय भी है। ''एक मुट्ठी आसमान, आँचल भर हरियाली, प्राकृतिक भोजन, और शरीर के नाप बराबर धरती का बिछौना। बस इतनी सी चाहत लिए सेंटिनल आदिवासियों ने अपने आप को एक छोटे से द्वीप नॉर्थ सेंटीनेल के जंगलों तक ही सीमित रखा है। उनकी आबादी सौ है। इस एकांतवासी अलग-थलग रहने वाले समूह को बाहर की दुनिया से मिलना कतई पसन्द नहीं है।''

मेरा मन बुझ गया। तो मैं सेंटिनल को नहीं देख पाऊँगी। न ही ओगी, शोंपेन् और कार निकोबारी को?''प्रशासन ने इन जगहों पर पर्यटकों को जाने की परमीशन नहीं दी है। आप तो जानती है मैडम'' शब्दों में बहुत ताकत होती है।

वे ऐसा संसार रच देते हैं जो हुबहू दिखाई दे।

सबके नारियल खत्म हो चुके थे। दोपहर ढल रही थी। 4 बजे का समय था और हम पोर्ट ब्लेयर की राह पर। मैंने आँखें मूँदकर सिर पीछे टिका लिया।

''ओङ्गियो के ठिकाने की सैर नहीं करेंगी मैडम ?''

मैंने चौक कर आँखें खोलीं तो सभी हँस पड़े लेकिन राजा चिंतित दिखा। अँधेरा होने से पहले पोर्ट ब्लेयर पहुँच जाएँ तो अच्छा है। रात को इस इलाके में ड्राइविंग करना रिस्की है। उसने स्पीड तेज़ कर दी। ठंडी हवा के झोंके वैन में घुस आए। बेंजामिन ओङ्गियो के जीवन में जैसे खो से गए। वैसे भी वे ओङ्गियो की जीवन शैली के प्रामाणिक जानकार है। वे उनके संपर्क में 3 महीने रहे हैं। और उन्होंने उनकी भाषा भी सीख ली है।

''जानती है मैडम .....घुमंतू जनजाति के औगी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कितने जूझ रहे हैं। सौ साल पहले ये एक हज़ार थे अब 92 ही रह गए हैं। इतने शांत और सीधे स्वभाव के होते हैं ये। जारवाओ की तरह देखते ही हमला नहीं करते। इनका कोई मुखिया नहीं होता। सभी अपने मन के राजा होते हैं। ये लिटिल अंडमान द्वीप में डूगाँग ग्रीक नामक जगह पर रहते हैं। महिलाएँ पत्तों से बनी पोशाक पहनती थीं। लेकिन अब लुंगी ब्लाउज़ पहनने लगी हैं। पुरुष कोपीन पहनते हैं। मज़े की बात यह है कि उनके दाढ़ी मूँछ उगती ही नहीं।''

''यह कैसे संभव है?''

मेरी आँखें विस्मय से भर उठी। अपने जीवन साथी के जीवित रहते दूसरा विवाह नहीं करते इन में तलाक जैसी कोई प्रथा नहीं है, बड़े भाई के मरने पर भाभी से देवर का विवाह हो जाता है। इन के झोंपड़े सामूहिक होते हैं। पेड़ पर से शहद के छत्ते तोड़ना इन के बाएँ हाथ का खेल है। जंगल में उगने वाली एक खास जड़ी बूटी के पत्ते मसलकर यह बदन पर मल लेते हैं फिर मधुमक्खी इन के नज़दीक तक नहीं आ सकती और यह बेहतरीन किस्म का सुनहरा शहद इकट्ठा

कर लेते हैं। ओङ्गियो को कल्याण समिति ने बर्तन भी बाँटे हैं। अब ये खाना उबालकर खाने लगे हैं। चावल और रोटी से भी परिचित हो गए हैं। उनके गाँव के निकट आदिवासियों का अस्पताल है, जहाँ ये गाहे-बगाहे इलाज के लिए चले जाते हैं। मृत्यु होने पर लाश को मृतक की चारपाई के नीचे गाड़ कर तब तक शोक मनाते हैं जब तक लाश नष्ट नहीं हो जाती फिर हड्डियाँ खोद कर निकाल लेते हैं और उनके आभूषण बना कर पहनते हैं। मान्यता है इससे परिवार भूत प्रेत के साए से बचा रहता है। मैं सिहर उठी हूँ कैसी अद्भुत मान्यता है। कार निकोबारी आदिवासी तो भूत-प्रेत हटाने के लिए लकड़ी और घास फूस के आदमकद पुतले बनाकर घरों में रखते हैं यानी कलाकार हैं।भले ही अपनी कला भूत भगाने में इस्तेमाल करते हो।

मुझे चाय की तलब लगी थी। सड़क किनारे एक मामूली सी चाय की दुकान देख राजा ने वैन रोकी। हम बैंचों पर बैठकर काँच के गिलास में निहायत मीठी चाय पीने लगे। दिन ढल चुका था और संध्या मानों धीरे-धीरे कदम बढ़ाते उन वनों में भी प्रवेश कर रही थी, जहाँ मुट्ठीभर आदिवासी अभी भी आदिम सभ्यता का जीवन्त दस्तावेज हैं।

राजा वापस चलने के लिए वैन में बैठा हॉर्न बजा रहा था।

वैन चल पड़ी है। सड़क की बत्तियाँ जगमगा उठी है। वर्मा जी तंबाकू मल रहे थे। पान की डिबिया टटोल रहे थे। बेंजामिन जी चाय,सिगरेट के पेट्रोल के बाद एकदम स्पीड में थे।

''कार निकोबारी तो अब सरकारी नौकरियों,पुलिस, सचिवालय,जहाज़रानी आदि में कार्यरत हैं। पर शोंपेन आदिवासी आधे बंजारे हैं। वे यायावर कबीले के हैं। बार-बार अपना ठिकाना बदलते रहते हैं।वे जंगलों और समुद्री तटों पर फल और शिकार की तलाश में घूमते हैं। ये जहर बुझे नुकीले तीर से शिकार करते हैं। जहाँ झरना देखते हैं वही निकट के वृक्ष को खंभा बना कर उस पर झोपड़ा बना लेते हैं। इन्हें केवड़ा बहुत प्रिय है। केवड़े के झुरमुट उनके झोपड़े के पास होते हैं। सुगंधित बयार में यह अपनी दिनचर्या निपटाते रहते हैं। इनका परंपरागत सामाजिक जीवन है।आज भी लकड़ी रगड़कर आग पैदा करते हैं। माचिस के ज्ञान से अनजान.... परिवार महत्त्वपूर्ण सामाजिक इकाई है। पुरुष परिवार का मुखिया होता है। और औरत को गुलाम बना कर रखता है। औरत का बस्ती से बाहर जाना मना है। ये बच्चों के जन्म पर खुशी नहीं मनाते। शादी भी चुनाव या आपसी बातचीत से तय होती है। अब तो कपड़े पहनने लगे हैं। पहले वृक्ष की छाल और पत्तों से तन ढकते थे।'' ''इनके लिए प्रशासन ने कुछ नहीं किया ?''

''किया है ना।एल्युमीनियम के बर्तन, दाल,चावल,चीनी, कपड़े इन्हें प्रशासन की ओर से दिए जाते हैं।''

फिर भी तो इनकी संख्या तेज़ी से घट रही है। अब तो केवल 250 शोंपेन ही बचे हैं। सोचती हूँ ये आदिवासी ही पर्यावरण के असली संरक्षक है और हमारी सभ्यता संस्कृति के परिचायक भी। यदि हम इनकी भाषा समझने लगे तो ना जाने कितनी जड़ी बूटियों की हमें जानकारी मिले। द्वीप समूहों पर ढाई हज़ार प्रकार की जड़ी बूटियाँ पाई जाती हैं। जो ना जाने कितने रोगों में काम आ सकती हैं। डेनियल कह रहे थे, यह भी कि आदिवासियों को इस सब की जानकारी है। कई प्रकार के समुद्री जीव, मछली, कछुए तो अब लुप्त प्राय हैं जो इन आदिवासियों की चिंता का कारण है। अक्सर ये उन्हें ढूँढ़ते समुद्र के किनारों पर पाए जाते हैं। हमारा होटल आ चुका था। हम थके पैरों को सीधा करते रिसेप्शन हॉल के सोफे पर धँस गए। बेयरा पानी ले आया। कॉफी का पूछने लगा।

''मैडम,कल सुबह सुबह ही स्ट्रेट द्वीप के लिए निकल चलेंगे। ग्रेट अंडमानी

आदिवासियों से मिलना है ना आपको।''

रात में नींद में चौक चौक कर जाग जाती थी। कहीं ग्रेट अंडमानी भी जारवाओ जैसे आक्रामक तो नहीं। ऊँचे पूरे चट्टान जैसे काले, पीली आँखों, चपटी नाक और मोटे मोटे होठ।

स्ट्रेट द्वीप हैवलॉक द्वीप के नज़दीक एक छोटा सा द्वीप है। मुँह अँधेरे ही अंडमान के खास परिंदों की चहचहाहट ने जगा दिया। खिड़की से झाँक कर देखा। समंदर की भीगी हवाओं के लिए पौ फट रही थी। हम तैयार होकर जैसे ही नीचे उतरे राजा को इंतज़ार करते पाया। वर्मा जी, बेंजामिन जी और डेनियल सीधे फोनेक्स बे आ जाएँगे। जहाँ से जहाज़ लेना है।

''तुम स्ट्रेट द्वीप चल रहे हो न राजा ?''

''नहीं मैडम वहाँ जेट्टी पर जयंतो मिलेगा जीप लिए। वही आपको इस द्वीप की सैर कराएगा।''

फोनेक्स बे पर तीनों चाय पी रहे थे। हमारे प्याले ठंडे हो रहे थे। मुझे उनकी आतुरता पर हँसी आ गई। सागर अथाह सौंदर्य से भरा था। उगते सूरज की रुपहली किरणों ने सागर जल पर जैसे चाँदी के तार बिखेर दिए थे। दूर हरे भरे द्वीप ऐसे लग रहे थे जैसे नीलम के फर्श पर किसी ने मरकत बिखेर दिए हैं। जहाज़ निर्धारित समय पर रवाना तो हुआ था लेकिन ऊँची लहरों के कारण उसकी गति धीमी थी। लगभग 40 मिनट लेट पहुँचे हम। जयंती जेट्टी पर ही मिल गया। हँसमुख, दुबला पतला तमिल लड़का, दाँत हद से ज़यादा सफेद .....बाहर निकल कर हम सब जीप में बैठे। द्वीप की ठंडी हवा में आँखें मुँद सी गई।

''अभी तक आपने मैडम जिन आदिवासियों को देखा है, जानकारी ली है वह सब अपने मूल रूप में ही है। लेकिन ग्रेट अंडमानी अपने दायरे से बाहर निकले हैं। अब वे सभ्य होते जा रहे हैं। उन्हें प्रशासन की ओर से खाने-पीने की सामग्री तथा मासिक भत्ता भी मिलता है।'' डेनियल ने बताया और समुद्र की ओर इशारा किया। ''वो देखिए अपनी होड़ी यानी नाव पर ग्रेट अंडमानी पुरुष मछलियों की तलाश में।''

मैंने देखा पीले रंग की टी शर्ट और

हाफपैंट पहने वह खड़े होकर नाव चला रहा था।

अब समुद्र दिखना बंद हो गया था और जीप डामल की सड़क पर दौड़ रही थी। सड़क के दोनों ओर घने जंगल...चहचहाती बुलबुल.... और भी तरह तरह की रंग बिरंगी चिड़िया। एक जगह पेड़ की डाल पर दो मोर बैठे थे उनके पंख पूँछ के समान लटक रहे थे।

''बस अब गाँव शुरू हो गया है। यह उनके पाले हुए मोर हैं। जयंतो यही जीप रोक दो। हम गाँव में पैदल ही जाएँगे।'' कहते हुए वर्माजी उतरने की तैयारी करने लगे।

पगडंडियों से गाँव में प्रवेश करते ही मुश्किल से बीस पच्चीस कच्ची मिट्टी और लकड़ी से बने घर जिनकी छतें झोपड़ी नुमा आकार की। बस इतने तक ही सीमित है ग्रेट अंडमानीयों का निवास। इनकी संख्या तेज़ी से घट रही है और केवल 41 ही बची है। हमें देखकर आदिवासी औरतें अपने-अपने घरों के दरवाजे से झाँकने लगीं। वे लुंगी ब्लाउज पहने थीं और पत्थर, सीपी, कौड़ी से बनी श्रृंगार की वस्तुओं से खुद को सजाए हुए थीं। कुछ आदिवासी पुरुष हमारे नज़दीक आए और ताज्जुब ! हिंदी में पूछ रहे थे ''कहाँ से आए हैं आप लोग ?''।

'' मुंबई से'' सुनते ही उनकी आँखें चमकने लगी। मैंने बेंजामिन की ओर सवालिया नज़रों से देखा।

''इनमें जागृति आई है भाषा के नाम पर। इन्होंने हिंदी अपना तो ली है लेकिन अन्य मान्यताएँ इन्हें स्वीकार नहीं।'' बेंजामिन जी ने मेरी शंका का समाधान करते हुए एक आदिवासी लड़के से कहा ''हमें अपने बाग बगीचे नहीं घुमाओगे'' सुनकर वह पगडंडी पर सरपट दौड़ने लगा। और भी कुछ आदिवासी साथ हो लिए। घरों के पिछवाड़े फलों के झाड़ और सब्जियों के पौधे लगे हुए थे। बेंगन, तुरई,मिर्ची, शकरकंदी लगी थी। मेड पर पपीता और अनन्नास.....आप खाते ये सब?''

''हाँ, बहुत अच्छा लगता है'' कहते हुए आदिवासी हमें अपने घर के अंदर ले गया। जंगली सुगंध से भरा था घर। एक एल्युमीनियम के बर्तन में मछली कटी हुई रखी थी।दूसरे बर्तन में लकड़ियों की आँच पर चावल उबल रहे थे। बाहर के कमरे में दो आदिवासी बैठे हुए थे जो लकड़ी छिलते हुए उसे जानवरों, पंछियों का आकार दे रहे थे। इतने में मुखिया और उसकी पत्नी भी आ गए। मैंने उनसे उनके रीति-रिवाज की जानकारी पूछी। वे भी हिंदी में बताने लगे ''सामाजिक क्रिया कलाप के लिए परिवार इकाई है। पहले ये बच्चे के जन्म के पहले उसका नामकरण कर देते थे। थोड़े फेरबदल के बाद ये रिवाज आज भी है। विवाह सादे होते हैं खाना-पीना और एक दो घंटे में विवाह संपन्न हो जाता है। वृक्ष के तने से नाव बनाकर समुद्र में दूर तक नोकाटन करते हैं। यदि कोई मर जाता है तो उसके परिवार से झोपड़ा खाली करवा कर लाश को वही दफन कर देते हैं। लेकिन अब यह रिवाज खत्म होता जा रहा है। मुखिया से उनके मुट्ठी भर समुदाय की इतनी जानकारी काफी थी। चलने लगे तो मुखिया की पत्नी एक टोकरी में अनन्नास और पपीते भर कर ले आई। साथ ही लकड़ी से बने दो शिल्प। एक में चौरस लकड़ी पर दो हाथी पेड़ का तना सूँड से ढकेलते हुए, दूसरे में पंख पसार के उड़ती दो बुलबुल .....मैं मुग्ध हो उन्हें निहारने लगी

''यह आपके लिए सौगात है।इन आदिवासियों की।'' वर्मा जी ने दोनों शिल्प हाथ में लेकर देखे फिर जयंतो को पकड़ा दिए। सभी आदिवासी हमें जीप तक छोड़ने आए। लौट रही हूँ उनकी सौगातों से भरी पूरी।

जीप के ओझल होते तक वे मुख्य सड़क तक दौड़े आए। हाथ मिलाते रहे। मन में कुछ दरक सा गया। एक घने जंगल में अपनी बची खुची संख्या को लिए ये आदिवासी आख़िर कब तक ज़िन्दगी से संघर्ष करते रहेंगे। तभी जैसे कोई कान में फुसफुसाया -

जो ख़ौफ़ आँधी से खाते तो अपने रहने को

परिंदे किसलिए तिनकों का घोंसला रखते.....

***

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। कृपया रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

ग़ज़लें

अशोक अंजुम की चार ग़ज़लें

संपर्क:
संपादक: अभिनव प्रयास
गली-2, चन्द्र विहार कॉलोनी
(नगला डालचन्द), क्वारसी बाईपास,
अलीगढ़-202 0021
मोबा.09258779744

बरसना था नहीं बरसे जो फिर बरसे तो क्या बरसे
बहुत प्यासी है ये धरती कोई बादल ज़रा बरसे
मैं अच्छा हूँ बुरा हूँ जो भी हूँ मुझको नहीं मालूम,
मगर इक चोट मैं खाऊँ तो दुनिया से दुआ बरसे
ज़रा हँस - बोलना उनसे ये क्या तूफ़ान ले आया
धुआँ उट्ठा कि शोले चार सू बेइंतिहा बरसे
घटा पहले भी घिरती थीं, लरजती थीं, बरसती थीं
जो अबकी बार तुम हो तो ये बादल कुछ जुदा बरसे
खिले हैं फूल, घर - आँगन का हर कोना महकता है
ये होता है तभी जब बुज़ुर्गों का तजुरबा बरसे

***

माँ के आँसू छलक पड़े क्यों आख़िर मुसकानों के बीच
ये कैसे काँटे उग आए आँगन-दालानों के बीच
कल-परसों के जगराते ने कानों के परदे फाड़े
'सोनू निगम' का सर दुखता है कह दो आजानों के बीच
यारा तूने बचा के मुझको बहुत बड़ा अहसान किया
लेकिन अब जीना मुश्किल है तेरे अहसानों के बीच
बातें बड़ी-बड़ी होती हैं रजधानी के मंचों से
कोई तो झरना दिख जाए ऊँची चट्टानों के बीच
झूठों की महफ़िल में मैंने सच का साथ नहीं छोड़ा
जैसे एक दिया रक्खा हो यारो तूफ़ानों के बीच
एक नशा इस ओर दिखे है एक नशा उस ओर भी है
मंदिर-मस्जिद घिरे हुए हैं 'अंजुम' मयख़ानों के बीच

***

बस आख़िरी यही तो इक रस्ता है, बात कर
यों चुप्पी साधने से तो अच्छा है, बात कर
पिघलेगी बर्फ़ कर भी यकीं हो न यूँ उदास
क्यूँ सर को थाम के यहाँ बैठा है, बात कर
तूने उठा के हाथ ये अच्छा नहीं किया
नादान है, मासूम है, बच्चा है, बात कर
थोड़ी-सी ग़लतफ़हमियाँ आई हैं दरमियाँ
रिश्ता अभी इतना नहीं बिगड़ा है, बात कर
ले ख़ुद ही चल के आने लगा चाँद तेरे पास
छँटने लगी है धुन्ध-सी मौका है, बात कर
मौका भी है, दस्तूर भी, मौसम भी है हसीं
फिर किसलिए ये बीच में परदा है, बात कर
इतना गरूर किसके लिए पाल रखा है
वो दर पे तेरे देर से बैठा है, बात कर

***

अब के आफ़त ऐसी बरसी दीवारो दर टूट गए
इस बारिश में जाने कितने मिट्टी के घर टूट गए
लोगों की जाँ ले लेती है कभी-कभी इक ठोकर भी
और कभी जिस्मों को छूकर तीखे खंजर टूट गए
कुछ तो है जो सच की ख़ातिर सारे नियम बदलता है
शीशे से टकराकर वरना कैसे पत्थर टूट गए
जब तक हम अपने थे तब तक सपने थे उम्मीदें थीं
ऐ रहबर सच कहते हैं हम तेरे होकर टूट गए
आता नहीं सलीका सबको सुनने का और गुनने का
बेशऊर लोगों में आकर सच्चे शायर टूट गए
ऐसी साज़िश वक़्त रचेगा हमको ये मालूम न था
रफ़्ता.रफ़्ता इन आँखों के दिलकश मंज़र टूट गए
आख़िरत: वो जा ही पहुँचा अंजुम वहाँ बुलन्दी तक
जाने दो जो इस रस्ते पर पंछी के पर टूट गए

***

चन्द्रसेन विराट

बहुत से काम करने हैं, मुझे करने नहीं देता
जगत् जीने नहीं देता, प्रणय मरने नहीं देता
किसी का प्यार ही मुझको, निरंतर युद्धरत रखता
समर्पण चाहता करना, मुझे करने नहीं देता
मगन हूँ कल्पनाओं में, बहुत वीभत्स सच्चाई
सपन सच के धरातल पर चरण धरने नहीं देता
हरा है घाव वह मन का, अभी तक भर नहीं पाया
समय तो चाहता भरना, स्मरण भरने नहीं देता
नदी की कामना है वह, झरे बनकर कहीं झरना
मगर यह क्षेत्र मैदानी, उसे झरने नहीं देता
मैं सक्षम हूँ पराई पीर को पूरी तरह हर लूँ
कृपण मेरा हृदय लेकिन उसे हरने नहीं देता
मैं जीवन हूँ तो स्वाभाविक डरूँगा मौत से लेकिन
युवा वय का ये दुस्साहस मुझे डरने नहीं देता
भरूँ गुल्लक क्या बच्चों की, विचारों का उदर पूरा
ग़रीबी का कहर मुझको कभी भरने नहीं देता
रही है चाह अनब्याही, हृदय तो चाहता वर ले
मगर प्रतिबन्ध सामाजिक उसे वरने नहीं देता

***

121, बैकुंठधाम कॉलोनी, आनन्द बाजार के पीछे, इन्दौर-18 (म.प्र.) मो. 09329893540

ग़ज़लें

ज़हीर क़ुरैशी

हम भी ये बात सोचते ही नहीं,
कितने जीवन, अभी जिए ही नहीं!
उनसे मंज़िल की बात क्या करना,
वो जो घर से अभी चले ही नहीं।
इसलिए हो रही है झल्लाहट,
आप 'क्यू' में कभी लगे ही नहीं!
कैसे कह दूँ कि झुग्गियों में भी,
लोग सपनों को देखते ही नहीं?
ऐसे मुद्दों को क्या उखाड़ोगे,
जिनके मुर्दे अभी गड़े ही नहीं!
छूट जाती है रोज़ उनकी बस,
वो जो शहरों में दौड़ते ही नहीं।
मुट्ठियाँ भींचते रहे केवल,
लोग अन्याय से लड़े ही नहीं।

***

कुछ तो मरने के बाद रहते हैं,
भूल कर भी, जो याद रहते हैं!.
तन की अपनी ही गंध होती है,
तन के अपने ही स्वाद रहते हैं।
जो बनाते हैं खेत को ऊसर,
कुछ तो ऐसे भी खाद रहते हैं।
धर्म से वास्ता नहीं उनका,
धन की धुन में 'जिहाद' रहते हैं!
झाँकते हैं जो रोज़ चेहरे से,
मन में इतने विषाद रहते हैं।
श्रम से बचती मिली नई पीढ़ी,
तन में अक्सर प्रमाद रहते हैं।
काम आते हैं जो चुनावों में,
कुछ तो ऐसे विवाद रहते हैं!

***

संपर्क : 108, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने, गुरुबक्श की तलैया, पो.ऑ. जीपीओ, भोपाल-462001
(म.प्र.) मोबाइल : 09425790565
ईमेल: poetzaheerqureshi@gmail.com

लघु कथा

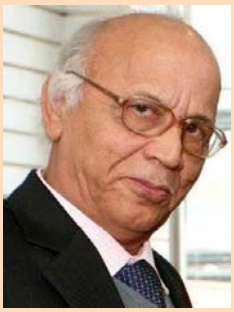

दादी माँ

सुभाष चंद्र लखेड़ा

पूरी रात रमा को नींद नहीं आई। बहू द्वारा शाम को ऑफिस से लौटने के बाद कहे वे शब्द वह चाहकर भी नहीं भूल पा रही थी। सुबह छह बजे तक वह निर्णय ले चुकी थी कि अब वह स्वदेश वापस लौट जाएगी। दरअसल, रमा इस बार यहाँ अपने डेढ़ वर्षीय पोते की देखभाल के लिए सान होजे, कैलिफ़ोर्निया अकेली आई थी। पिछली बार वह अपने पति के साथ तब आई थी जब उनका पोता दुष्यंत छह महीने का था। लगभग छह महीने तक बेटे - बहू के साथ पोते की देखभाल करने के बाद वे वापस दिल्ली लौट गए थे। उसके बाद दुष्यंत के नाना - नानी आ गए थे। अमेरिका में रहने वाले भारतीय परिवारों में यही होता आया है कि नवजात शिशु की देखभाल के लिए कभी उसके दादा - दादी तो कभी उसके नाना - नानी आते रहते हैं। आख़िर, बच्चे को सिर्फ नैनी यानी आया के भरोसे तो नहीं छोड़ा जा सकता है। अपना कोई तो ऐसा हो जो दिन भर नैनी पर नज़र रखे। खैर, ' पूत से प्यारा पोता ' के शाश्वत नियम के अनुसार रमा भी अपने पोते को बहुत प्यार करती है। यही वजह थी कि इस बार जब उसके पति ने अमेरिका आने में असमर्थता जताई तो वह अकेली चली आई। बहरहाल, कल शाम जैसे ही उसने दुष्यंत को खुद लिए काटे अमरूद के टुकड़ों में से एक टुकड़ा पकड़ाया कि तभी उसकी बहू देवयानी ने घर में प्रवेश किया। दुष्यंत के हाथ में अमरूद का टुकड़ा देख देवयानी ने उसे छीनते हुए तीखी आवाज़ में कहा, '' आप खुद चाहे जो भी खाओ लेकिन दुष्यंत को ये उल्टी - सीधी चीज़ें मत दिया करो। उसे मैं सिर्फ ऑर्गेनिक फ्रूट्स देती हूँ। ''

खैर, वह अपने पति को फ़ोन करके अपनी वापसी की एयर टिकट को प्रीपोन करने के लिए कहने वाली ही थी कि तभी उसे बाजू के कमरे से पोते की रोने की आवाज़ सुनाई दी। बहू के कड़ुवे शब्दों को भूलते हुए उसने दादी माँ का फ़र्ज निभाते हुए बेटे-बहू के कमरे के दरवाज़े को खटखटाते हुए कहा, '' बहू, ये दुष्यंत क्यों रो रहा है ? उसे मेरे पास छोड़ दो। ''

***

संपर्क:
सी - 180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर - 7, प्लाट नंबर - 17,द्वारका, नई दिल्ली - 110075
फोन : 011 - 25363280
मो0 : 09891491238
ईमेल: subhash.surendra@gmail.com

गीत

डॉ. विष्णु सक्सैना के गीत

संपर्क:
दयाल क्लीनिक, पुरानी तहसील रोड
सिकंदरा राऊ, जिला हाथरस, उत्तर प्रदेश
204215
मोबाइल 9412277268
9410691164

1-
ना सुलगती रात-
ना दिन आँसुओं से भीगते।
प्यार के बदले अगर तुम
प्यार देना सीखते॥

हमने जब भी गुनगुनाई
नेह की आसावरी,
खुद-ब-खुद बहने लगी तब
शब्द की गोदावरी,
इक सुखद सा स्पर्श पाकर
गीत अनगिन हो गए,
देह तो जगती रही
मन प्राण दोनों सो गए,
मुँह छिपाते ना उजाले
-ना अँधेरे रीझते।
प्यार के बदले अगर तुम
प्यार देना सीखते॥

गोद में सर रख के मेरा
तुम जो देते थपकियाँ,
आँसुओं को पोंछ देते
बंद करते सिसकियाँ,
धड़कनों, साँसों, निगाहों ने
निभाया हर धरम
पर तुम्हारे एक ही जुमले ने
तोड़े सब भरम,
फूल मुँह ना फेरते-
काँटे न दामन खींचते।
प्यार के बदले अगर तुम
प्यार देना सीखते॥

एक तितली फूल के
कहती है जब कुछ कान में,
तो समझ लो रुत
बसंती सी है बीयाबान में,
तुम भी छू लेते जो पत्थर
तो ये बनता देवता,
माफ़ कर देता तुम्हारी
अगली पिछली सब खता,
ज़ख्म जो अन्दर छिपे
-गर वो भी तुमको दीखते।
प्यार के बदले अगर तुम
प्यार देना सीखते।
***

2-
आँखों में पाले तो पलकें भिगो गए।
वासंती मौसम भी पतझड़ से हो गए॥

बीते क्षण बीते पल
जीत और हार में,
बीता जीवन सारा
झूठे सत्कार में,
भोर और संध्या भी करवट ले सो गए।
आँखों...

जीवन की वंशी में
साँसों का राग है,
कदमों में काँटे हैं
हाथों में आग है,
अपनों के मेले में सपने भी खो गए।
आँखों ....

रीता है पनघट भी
रीती हर आँख है,
मुरझाए फूलों की
टूटी हर पाँख है,
आँधी तूफानों में उपवन भी रो गए।
आँखों...

कितना मुश्किल फूलों
काँटों का मेल है,
जीवन क्या है ? गुड्डे-
गुड़ियों का खेल है
पथरीले मानव को आँसू भिगो गए।
आँखों....
***

3-
पंख छुए तितली के रंग लगा हाथ।
सपनों में सपनों की रिमझिम बरसात।

चले जब नशे में
तो काँपे थे पैर
गैर लगे अपने औ'
अपने भी गैर,
प्यार जब हुआ है तो काहे की ज़ात।
सपनों.....

जब से इठलाई है
आँगन में दूब,
दिन हो या रात
नींद आती है खूब,
जाने कब हो जाती है उनसे बात।
सपनों.....

आता है अब हमको
एक यही खेल,
जब चाहे चल जाए
आँख की गुलेल,
डरता है मन बिगड़े ना बनती बात।

हाय! उड़ी तितली ले
फूल का पराग,
दूर बहुत दूर गई
दहका के आग,
बिगड़ गया खेल बिछी रह गई बिसात।
सपनों.....
***

4-
रंगबसंती तो रूप है गुलाब।
देख लिया तुझको तो छोड़ दी शराब॥

पीला सा बस्ता ले
सरसों के फूल,

झूम झूम जाते हैं,
पढ़ने को स्कूल,
अनपढ़ भी बैठे है खोल कर किताब।
देख लिया.....

आपस में बतियाते
पीपल के पात,
खूब रात रानी के
संग कटी रात,
सुनकर ये चम्पा पर आ गया शबाब।
देख लिया.....

तितली औ' भँवरों नें
छेड़ी मल्हार
वासंती झोली से
छिटका है प्यार
हरियाली पतझड़ से ले रही हिसाब।
देख लिया .....

***

5-
रो ओ मत आँखों की सूखेगी झील।
ज़ख्मी हैं पाँव और जाना कई मील।

कोहरा घिरा कैसे
सच पाऊँ देख,
बूझूँ कैसे मन की
हलचल का लेख,
चिड़ियों के बच्चों को पाल रही चील।
ज़ख्मी....

खंडहर दिखाते कब
महलों की राह,
मरुथल पाए कैसे
निर्झर की थाह,
धूप की अदालत में ताड़ के वकील।
ज़ख्मी.....

अधरों से अनचाहे
रूठ गए बैन,
निंदिया से नाराज़
जाने क्यों नैन,
चन्दा को सविता की ज्योति गई लील।
ज़ख्मी.....

***

कविताएँ

मालिनी गौतम
संपर्क:
574, मंगल ज्योत सोसाइटी, संतरामपुर-389260, गुजरात
मो. 9427078711

प्रेम एक : अनुभूतियाँ अनेक

चालीस बसन्त बीतने के बाद भी
प्रेम बौराया नहीं
पहले प्यार का
खट्टा-सा स्वाद
अब भी बाकी है ज़ुबान पर
प्रेम फिर से
कर रहा है इंतज़ार
बसन्त का.....
***
प्रेम के ढाई आखर का फ़ासला
माप तो लिया था
ढाई पल में
पर कहते-कहते
एक उम्र बीत गई
अब जाकर
शब्द पके हैं
प्रेम के अलाव पर
पसारे हुए भात की खुशबू-सा
महक रहा है प्रेम ...
***
किताबें सिर्फ़ गवाह नहीं होतीं
इतिहास में
लड़ी गई लड़ाइयों
और युद्धों की तारीखों की...
क़ानून और संविधान की
धाराओं की,
इन सबसे अधिक
वे अक्सर होती हैं गवाह
सूखे गुलाबों को
अपने में दफ़न करते हुए
दम तोड़ते प्रेम की....
***
उसने कहा
बस....तुम हो
मैंने कहा
हाँ...बस तुम हो
अब बस प्रेम था
हमारे बीच..
***
प्रेम
उड़ रहा था आवारा
शाख़ से बिछुड़े हुए
ज़र्द पत्तों की तरह...
एक ठूँठ वृक्ष पर टिक गया
अब वृक्ष हरा है
और प्रेम खुशबू बिखेर रहा है...
***
प्रेम में हारना
कुछ ऐसा
जैसे वेंटिलेटर पर
रखे हुए शरीर को देखकर
डॉक्टर का बोलना-
''शी इज़ नॉट रिस्पॉन्डिंग''.....
***
प्रेम
फैलता है नसों में
कैंसर की कोशिकाओं
की तरह
मल्टीपल तीव्रता से,
कुछ देर के
तेज़ उजाले के बाद
फ़िर अचानक हो जाता है
ब्लैकआउट.....
***
प्रेम में
पली-बढ़ी यादें
अक्सर हो जाती हैं
अनुवादित
आँसुओं में
शुक्र है.....
अब कोई नहीं समझता
भाषा आँसुओं की.....
***

कविताएँ

शैफाली गुप्ता की कविताएँ
संपर्क: 6480 हीराबयाशी ड्राइव, सन होसे, कैलिफ़ोर्निया-95120
ईमेल : shaifaligupta80@gmail.com

दरवाज़ा

वो जो बड़ा-सा दरवाज़ा था
जिसमें दमकते थे लाखों सूरज हर पल में
जिसमें दिखाई देता था
चाँद का शीतल अक्स
जिसमें झरने की कल-कल, समुद्र का फेन
दोनों ही साथ निभाते थे,
जिसमें हाथों की लकीरों के कोई मायने न थे
बस था हौसला, विश्वास
और नित-नई उम्मीदें।

मालूम पड़ता है
वो स्रोता किसी मायूस हुए दरीचे-सा
वीरान पड़ा है
अब कोई वहाँ आता-जाता नहीं,
कोई पुकार, कोई हँसी-मुस्कराहट नहीं,
कोई रौशनी नहीं जन्मती
हरी दूब-सी कोमलता,
सूखे पत्तों पर भी कोई सरसराहट नहीं,
शांत, वीरान जैसे चाँद हो, एकदम अकेला।

हाँ, अम्मा के घर का दरवाज़ा बंद हो रहा
हर दिन, जाती हुई साँसों-प्राणों जैसा
वह घर जहाँ कइओं ने जन्म लिया,
रूप-सीरत संजोई
आज अम्मा उसी घर के छोटे, सीलन भरी
लकड़ी के नम दरीचे पर
खड़ी ताक रही है शून्य को,
न जाने क्या माँग रही है,
स्वयं के लिए एक नया द्वार या
दरीचे से ही आ जाए
एक छटाँक भर रौशनी!

***

चाय और तुम

एक के बाद
एक और, उसके बाद
कई और
चाय की प्यालियों की चुस्कियाँ
अक्सर मुझे नहीं उबारती
तुम्हारी यादों की तलब से।
कमबख़्त ये तो
मीठी अदरक-वाली चाय
में भी
नशा भर देती है
और दिन ढलने पर रह जाते हैं
यादों में डूबे शब्द
और
कई खाली पड़े
चाय के प्याले।

***

इंतज़ार

बहुत दिन गुज़रे
मैंने उन गलियों का फेरा नहीं किया
जिन पर उगे नीम की निम्बोलियाँ
फोड़ते पिचकाते बिताई हमने
जाने कितनी जेठ की दोपहरें।

लाखों अरबों लम्हें बीत गए
नहीं चखा मोहब्बत का वो जाम,
जानते हो न
तुम ही थे वो स्वाद
वो मधुशाला का मधु
और मेरा प्याला।

बीती सदियाँ
गर्मियों में तुम्हारे
पैरों का मखमल
नहीं टकराया मेरे पैरों से,
बहुत रातें बीत गईं
मैंने नहीं ओढ़ा तुम्हें
जाने कितनी शीत ऋतुएँ आई-गईं
गरमाई जाने कहाँ गुम हुई
बीतती रही घड़ियाँ
गुज़रती हुई निकली सदियाँ
मैं आज भी वही खड़ी
लेकर हाथ में खाली प्याला
शायद कभी वो रस फिर से
होठों तक आए
जिसका स्वाद होठों से रूह तक
छूकर सदियाँ मीठी कर गया।

***

देस -परदेस

ऊँची इमारतें, साफ़ सड़कें
उजला सा आकाश
सब मिल जाता यहाँ।

जो न मिल पाता
वो है
साथ बचपन के साथी का
पतंग से पटा आसमान
चौराहे तक गूँजती मंदिर में शाम की आरती
माँ के हाथ के दाल-चावल
पिता का वह आशीष-भरा हाथ
गरबों के डाँडिया का संगीत
होली के स्नेहिल रंग
दीवाली के पटाखों का धुँआ
और वो सड़कों का क्रिकेट।

यह सब धुँधलाता-सा है अब
यादें ही रह गईं हो जैसे
ईमारतों के आकारों ने बोना किया
देश का घर
और जैसे ले गई वो घर कि छत-
पर सूखती बड़ियों का स्वाद,
वैसे ही जैसे सूखा- दोस्ती का रस
अपनों का प्रेम।

अब रह गईं पास सिर्फ जैसे यादें और
लकीरों में परदेस की पगडंडी
न खिलता उस पर मिले-जुले परिवार का
फूल
न महकती अपनों की खुशबू
बस होता इंतज़ार
एक दिन जाएँगे लौट देस

***

कविताएँ

पंकज त्रिवेदी की कविताएँ

संपर्क:संपादक - विश्वगाथा (हिन्दी साहित्य की त्रैमासिक प्रिंट पत्रिका)

ईमेल:vishwagatha@gmail.com

मो:09662514007

मेरी खामोशी

तुम सोचती होगी कि
मैं खामोश क्यूँ हो गया?
मेरी खामोशी
मेरी घुटन नहीं है
मैं तुम्हें बहुत करीब से
देख पाता हूँ
तुम्हें अच्छे से सुन लेता हूँ
मेरी खामोशी
मतलब निकालने के लिए नहीं
तुम भी कभी खामोश हो जाओ
फिर देख पाओगी मुझे अच्छे से
पहचान पाओगी मेरे अस्तित्व को
और जान पाओगी तुम सत्य !
मेरी खामोशी गूँगी नहीं है
तुम अगर समझ सको तो
बहुत कुछ समझ में आएगा
मेरे ही बारे में !
सुन सको तो सुन भी लो
खामोश शब्द भी कितने
प्यारभरे और मीठे होते हैं !
मेरी खामोशी का मतलब
नाराज़गी नहीं होती मगर
खामोशी के दरमियाँ भी
मुझे जितना सुन पाओगी तुम
ज़िन्दगी उतनी ही अच्छे से
बसर होने लगेगी..
कम से कम आज तो मेरा कहा
मान भी लो तुम !

***

सह नहीं पाऊँगा....

वक्त को पहचान लो तुम
मैं पानी का वो बुलबुला हूँ
जो तुम्हारे हाथ में
आ भी गया तो हवा के संग
नाचूँगा तुम्हारी हथेली में
मगर इतना नाज़ुक भी हूँ कि
तुम्हारे स्पर्श से भी टूट जाऊँगा

मुझे छूने की कोशिश मत करो
न देखो खयाली सपनें तुम
मुझे पाना ही चाहो तो बसा लो
अपने मन की आँखों में
फिर न टूटने की बात
न छूटने का डर होगा कभी

ज़िन्दगी के चंद दिनों में
तुम्हारा साथ निभाऊं तो भी क्या
बुलबुला हूँ, टूट भी जाऊँगा मैं
छूट जाऊँगा मैं...

लोगों की सुनने की आदत है मुझे
गर तुमने भी कह दिया कुछ तो
सह नहीं पाऊँगा मैं... !

***

डूब जाता है.....

आँखें बरसती हैं आज
तुम्हारी याद में
ऐसा भी नहीं कि तुम मुझे
कभी याद नहीं आती
मगर छूट जाने का ग़म
आज भी मुझ पर हावी है
और इसी डर से मैं पल-पल
असमंजस में सहमा सा
अचानक खो जाता हूँ !
मेरे आसपास के लोग
समझते है कि मैं उनके
साथ हूँ फिर भी चुप !
असल में मेरा शरीर यहाँ
मन तुम्हारे पास !
कैसे समझा पाऊँगा मैं ?
कौन समझेगा मुझे ?
समंदर की लहरों सी तुम
नाचती हुई आती हो
जब होश आता है तो
तुम्हारा अक़्स डूबता हुआ
नज़र आता है समंदर में
और पूरा समंदर भी
डूब जाता है मेरी आँखों में !!

***

प्यार

मेरे शब्द
जो तुम्हें छू जाते हैं
अंतरमन तक
और
तुम छू जाती हो
मेरे अंतरमन तक ...!
ईश्वर ही तो है
जो प्यार बनकर
बैठ गया है
हम दोनों में !

***

ग़ज़ल

प्रदीप कांत

सब कुछ सच्चा लगता था जी
दिल ये जब तक बच्चा था जी
क्यूँ ना उसे निगलता सागर
कातर वो इक कतरा था जी
लिखना था तो सच ही लिखते
कोरा ही जब पन्ना था जी
मैं जानूँ या मेरा दुश्मन
किसको किससे ख़तरा था जी
अपने सागर से मिलना था
जल्दी में था, दरिया था जी
हम ही थे जो पहुँच गए थे
वर्ना मुश्किल रस्ता था जी

***

संपर्क : डी-8, सेक्टर-3, केट कॉलोनी, इन्दौर - 452 013, मध्य प्रदेश

मोबाइल : 94074 23354

इमेल: kant1008@rediffmail.com, kant1008@yahoo.co.in

कविताएँ

मंगलमूर्ति की 'ट्विटर कविताएँ'
संपर्क: ए-1/9, विराट खंड-1, गोमती नगर, लखनऊ : 226010
मो.+91-7752922938

साहित्य की शायद ही ऐसी कोई विधा होगी जिसमें कविता जितने विविध रूप होते होंगे। इन विविध काव्य-रूपों में वर्णों से लेकर शब्दों की संख्या तक की गिनती निश्चित होती है, पंक्तियाँ गिनी होती हैं,उनकी लम्बाई, उनकी लय और तुकों का क्रम निश्चित होता है। इसका एक छंद-शास्त्र ही होता है - लगभग हर भाषा में अपना-अपना। इसका प्रमुख कारण है कविता की गेयता, जिसमें संगीत की प्रधानता होती है, और इसीलिए सब कुछ लय-ताल में बंधा होता है और इसीलिए कविता में - हर देश, हर भाषा की कविता में बहुत सारे परंपरागत काव्य-रूप होते रहे हैं; जिनका प्रयोग सदियों से होता आ रहा है। जापानी 'हाइकू' और 'टानका' प्रसिद्द लघु-काव्य-रूप हैं। एक हाइकू पद्य में केवल 17 स्वर-वर्ण होते हैं - 5+7+5 की तीन पंक्तियाँ; जैसे - 'उगने लगे/कंकरीट के वन/उदास मन' (जगदीश 'व्योम')7 उसी तरह टानका में 5+7+5+7+7 : 'चमक रहे/अम्बर में बिखरे/इतने हीरे/ कितना अच्छा होता/एक मेरा भी होता' (स.द. तिवारी)। इन लघु-काव्य-रूपों में टेक्नोलॉजी के इस मोबाइल युग में नवीनतम काव्य-रूप है 'ट्विटर कविता'। इसमें मोबाइल 'की बोर्ड' पर केवल 140 'टच' में कविता या कथन अंकित होता है जिसमें 'स्पेस' भी गिना जाता है। इसे 'ट्वीहाइकू' भी कहा जाने लगा है। यहाँ प्रस्तुत हैं इसी काव्य विधा में मेरी कुछ 'ट्विटर कविताएँ'।

मैं हारा नहीं हूँ
थक गया हूँ
यह गहरी थकावट
मुझे हराना चाहती है
पर मैं हारूँगा नहीं
हारेगी मेरी थकावट
क्योंकि मैं कभी हारा नहीं
और न हारूँगा।
***

घड़ी पहनता हूँ
पर देखता हूँ कम
क्योंकि वक्त तो यों भी
सवार रहता है
बैताल की तरह पीठ पर
और धड़कता रहता है
दिल में घड़ी की ही तरह
धक-धक-धक-धक !
***

सूरज डूबा
या मैं डूबा
अंधकार में
सूरज तो उबरेगा
नए प्रकाश में
डूबेगी धरती
नाचती निज धुरी पर
मुझको लिए-दिए
गहरे व्योम में ढूँढ़ती
उस सूरज को।
***

बिंदी
चमक रही है
गोरे माथे पर तुम्हारी बिंदी
तुम्हारी उलझी
लटों की ओट से
कह रही हो जैसे
होंठ दाँतों से दबाए -
नहीं समझोगे तुम कभी
मेरे मन की बात !
***

कविता एक तितली सी
उड़ती आती और बैठ जाती है
मेरे माथे पर सिहरन जगाती
किसी कोंपल को चूमती
पंख फड़फड़ाती
गाती कोई अनसुना गीत
और उड़ जाती अचानक
***

मर्द और औरत
बनाए गए प्यार में
एक होने के लिए -
एक-दूसरे से
डरने या डराने
के लिए नहीं
पर जो इसे समझते नहीं
वे मर्द या औरत
होते ही नहीं...
***

आदमी बना
जानवर से आदमी
फिर आदमी से जानवर
और तब जानवर से भी बदतर
कुत्ते भी रेप-गैंगरेप नहीं करते
आदमी में नहीं रही
कुत्तों वाली नैतिकता भी
***

ज़ू में बैठा हूँ मैं
लोग तो जानवरों को
देख रहे हैं
मैं उन लोगों को
देख रहा हूँ
और कुछ लोग
आते-जाते
हैरत-भरी नज़रों से
मुझको भी
देख लेते हैं
***

मैं एक खंडहर हूँ
कब्रगाह के बगल में
मेरे अहाते में
जो एक दरख़्त है
ठूँठ शाखों वाला
उस पर अक्सर
क्यों आकर बैठती है
सोच में डूबी
एक काली चील?
***

कविताएँ

डॉ. अमरेंद्र मिश्र की कविताएँ

संपर्क: संपादक- समहुत,
4/516, पार्क एवेन्यू, सेक्टर 4, वैशाली,
ग़ाज़ियाबाद - 201010
मो.: 9873525152
ईमेल : samhutpatrika@gmail.com

टूटना और छूटना

जब कुछ छूटता है
तब कुछ टूटता है

टूटने और छूटने के बीच
एक अजब रिश्ता है

गौर से देखें तो बीच का वक्त
धीरे-धीरे बहता है

और एक 'शब्द' घुलता है मौन,नि:शब्द !
इसे कोई नहीं देखता !
***

...बावजूद इसके

बहुत दिन बीते इस बात को
जब लोग मिलते थे, बेवजह
पूछते थे हाल-चाल,बैठते थे पास
चलते थे कुछ दूर तक साथ

अब हर बात की वजह ढूँढ़ी जाती है
किसी के मिलने की वजह
किसी से मिलने की वजह
किसी के घर आने की वजह

घर तो बनता मेहमान उनके लिये भी
आते जो बरसों बाद रहने
मिलने अपनों से
लगते मेहमान से आगंतुक !

अब तो उनकी भी खास वजह होती है
घर लौटने की, मिलने की अपनों संग
आते और चले जाते हैं
चौखट में धंसकर कद मापते अपना

नहीं मिलते वो घर की खिड़कियों से
दरवाज़ों से, शाम की दीया-बाती
सुबह की पहली किरण से
नहीं मिलते वो खेत-खलिहानों से

नहीं मिलते चौपाल और ताल तलैया से
वो सब अब अकारण नहीं मिलते
कोई कारण होता है बराबर चलते हुए

अब नहीं चलता कोई साथ हमारे
अकारण चलने वाले अब थोड़े बचे हैं...
उनसे मिलो तो मुसकरा भर देते हैं
पर यह मुस्कान अकारण नहीं लगती
सच ऐसा ही होता है
बिन कहे सब कुछ कह जाता है...
***

उनके लिये

हुक्मरानों ने उनके हक़ में जब फ़ैसला लिया
वे गहरी नींद में सो रहे थे

एक ख़्वाब पहरा बन खड़ा था
फ़ैसला जिनके लिये आया
उन्हें निगोड़ी नींद न आई

फ़ैसले के पहले भी
फ़ैसले के बाद भी
फ़कत एक रोटी के लिये !
***

यहाँ से दिखना

ऐसे ही किसी दिन अचानक दिखना
जैसे दिखता ध्रुवतारा
जैसे दिखता कटा चाँद अचानक बादलों में
ऐसे ही किसी दिन अचानक ढूँढ़ लेना मुझे
जब गुम जाऊँ किसी मेले में,
जब निकल पड़ूँ खोजने अपनी जन्म भूमि
जब पहचाना न जाऊँ अपनों में

तब पुकारना मुझे अंतस से
तब शायद फिर जनमूं अपनी जन्म भूमि में
यह भी हो अचानक,
जैसे दिखना तुम अचानक।

ऐसे ही यह वक्त कुछ कर जाये अचानक
कि मज़ा आ जाए और जिएँ दिन बचपन के
लौट आए जो अचानक बिन पुकारे
जन्म भूमि हो खुशियों से सराबोर

यह सब मिले हमें भरपूर
भले ही वक्त लगे और यह सब न हो
अचानक !
***

ग़ज़ल

प्रदीप कांत

वो तो तूने समझा था
वरना कब वो अपना था
एक पड़ोसी था अपना
हमसे बातें करता था
हर्फ़ लिये कुछ ख़्वाबों के
इक बच्चे का बस्ता था
पार हुए तब समझ सके
दरिया सचमुच गहरा था
बोल हुए हैं ऊँचे अब
बच्चा था, जब सुनता था
***
जब भी वो इल्ज़ाम लिखेगा
मेरा पहला नाम लिखेगा
सूरज उसके क़ब्ज़े में है
मेरे हिस्से शाम लिखेगा
अपनापा है ही कुछ ऐसा
रावण को भी राम लिखेगा
आती जाती इन लहरों का
बतला तो क्या दाम लिखेगा
सच दुनिया का झुठलाएगा
सच्चे चारों धाम लिखेगा
***

संपर्क : डी-8, सेक्टर-3, केट कॉलोनी,
इन्दौर - 452 013, मध्य प्रदेश
मोबाइल : 94074 23354

नवगीत

सौरभ पाण्डेय
संपर्क : एम-2 / ए-17, ए.डी.ए. कॉलोनी, नैनी, इलाहाबाद- 8 (उप्र)
मोबाइल : 9919889911
ईमेल : saurabh312@gmail.com

अब लिए जुलाई आ जाओ

बहुत हुए हम मई-जून
अब लिए जुलाई
आ जाओ.. !

जानता हूँ तुम धरा हो
गूँज को तुम मान दोगी
मैं गगन की रीतियों को
शब्द दूँगा, तुम सुनोगी

कहो तुम्हीं
फिर मेघ मुखर मैं
घोष स्वरों में बोलूँ क्या.. !
देखो फिर से बारिश आई
भूल रुखाई, आ जाओ..

बिन तुम्हारे क्या भला हूँ
मैं सदा से जानता हूँ
बारिशों में बूँद की है क्या महत्ता
मानता हूँ
भरे हुए वृक्षों-तालों के
तृप्त स्वरों में मुझको सुन
आकुल हुई नदी बन थामो
बाँह-कलाई, आ जाओ..

कुछ समझ पाया न अबतक
बादलों की भावनाएँ
सच यही है, मूढ़ पर्वत
दे रहा था यातनाएँ !
सदा रहा
कंकड़-पत्थर
गीलट-काग़ज़ में खोया जो
उसी निपट रूखे अहमक ने
सेज सजाई, आ जाओ.. !!
***

टुकड़े-टुकड़े छितरी धूप

साढ़े सात बजे
कमरे में
टुकड़े-टुकड़े छितरी धूप !!

सुबह हुई अलार्म बजे से
'जमा करो पानी' का ज़ोर
इधर बनाना टिफिन सुबह का
उधर खाँसते नल का शोर
दो घण्टे के इस 'बादल' से
करना बर्तन सरवर-कूप !
टुकड़े-टुकड़े छितरी धूप !!

लटका टूटा कान लिए कप
बुझा रही गौरइया प्यास
वहीं पुराने टब में पसरे
मनीप्लाण्ट में ज़िंदा आस
डबर-डबर-सी आँखों में है
बालकनी का मनहर रूप !
टुकड़े-टुकड़े छितरी धूप !!

एक सुबह से उठा-पटक, पर
इस हासिल का कारण कौन
आँखों के काले घेरों में
जाने कितने सूरज मौन..
ढूँढ़ रहे हैं आईने में
उम्मीदों का सजा स्वरूप !
टुकड़े-टुकड़े छितरी धूप !!
***

यार, ठीक हूँ, सब अच्छा है

लोगों से अब मिलते-जुलते
अनायास ही कह देता हूँ--
यार, ठीक हूँ..
सब अच्छा है !..

किससे अब क्या कहना-सुनना
कौन सगा जो मन से खुलना
सबके इंगित तो तिर्यक हैं
मतलब फिर क्या मिलना-जुलना
गौरइया क्या साथ निभाए
मर्कट-भाव लिए अपने हैं
भाव-शून्य-सी घड़ी हुआ मन
क्यों फिर करनी किनसे तुलना

कौन समझने आता किसकी
हर अगला तो ऐंठ रहा है
रात हादसे-अंदेसे में--
गुज़रे, या सब
यदृच्छा है !

आँखों में कल की ख़बरों की
बच्ची अबतक तैर रही है
अपनी बिटिया की सूरत से
मगर अलग वह ख़ैर रही है
बिटिया चाहे पास नहीं पर
यही सोच कर बहुत खुशी है
मोबाइल-चैटिंग के ज़रिए
आख़िर वो कब ग़ैर रही है ?

रोज़ सवेरे समाचार को
पढ़ना, या फिर
दर्शन करना
जगत् सान्द्र है दो कमरों में
बाकी सब तो
पनछुच्छा है !

जितने की इच्छा थी उतनी
सबकी दुनिया दिखी चहकती
कहीं धार में बहता पानी
कहीं सुगंधित धार महकती
दौर तेज़ है, तो सब दौड़ें
या सुस्ताएं, पाट सँभालें
वो भी चुप हैं अपने हिस्से
जहाँ किरच से रात लहकती

वैसे तो बिन्दास दिखे मन
चौंक रहा है
हर 'खटके' से
बिखर रहा फिर तार-तार-सा,
इसे कहूँ दिन गुड़-लच्छा है ?
***

जय-जय कन्हैया लाल की

लिख रही हैं यातनाएँ

अनुभवों से
लघुकथाएँ-
मौसम-घड़ी-दिक्काल की !
जय-जय कन्हैया लाल की !!

शासकों के चोंचले हैं
लोग गोवर्द्धन उठाएँ
हम लकुटिया ले खड़े हैं
चोंच में आकाश पाएँ

शातिर सदा पद 'इन्द्र' का
जो सोचता बस चाल की..
जय-जय कन्हैया लाल की !!

अब उफनती है न जमुना
कालिया मथता अड़ा है
चेतना लुंठित-बलत्कृत
देह-मन लथपथ पड़ा है

कुब्जा पड़ी हर घाट पर
किसको पड़ी है ताल की !
जय-जय कन्हैया लाल की !!

नत कमर ले शांत रहना
पीढ़ियों का सच यही है
कंस फिर पंचायतों में
भाग्य का षड्यंत्र भी है.

फिर से जरासंधी-मिलन,
चर्चा हुई है जाल की
जय-जय कन्हैया लाल की !!

क्या ग़ज़ब हो इस घड़ी जो
साध ले जग वो हृदय हो
किन्तु यह भी है असंभव
घात-प्रतिघाती सदय हो

जब पूतना की गोद है,
फिर क्या कहें ग्रहचाल की !
जय-जय कन्हैया लाल की !!
***

साथ बादलों का

ईंट-पत्थरों में घुलके
एक शाम ढल गई
साथ रह गया है आज
बादलों का स्याह भर... .

सोचना-गुहारना,
कि मन ही मन पुकारना
पानियों के वेग-सा
उटपटाँग विचारना

बूँदियाँ झिहर रहीं जो
कुछ नहीं हैं,
चाह भर

उभर रहा है अक्स
बाढ़-बूँद-मेघ रूप में
चौंकता वजूद है
आश्वासनों की धूप में

साधने मंज़िल चले
हासिलों में राह भर.. ..

हो रही लहर मुखर
ये स्वप्न-ताल बावरे..
चुप पड़े थे घाव आज
हो रहे हैं फिर हरे

बादलो..! ..
रे मान जा,
न झींसियों में आह भर... .

टूटते विश्वास का भी
देखना, अंजाम हो
बिखर गए तो ठीक,
वर्ना...
इक मुफीद नाम दो

तौलते रहे थे प्यार
मोल आए डाह भर.. .

श्याम-वन में घन-घटा
लहर-लहर विचर रही
हथेलियों पे झील की
मेंहँदी उभर रही

नाम लिख रही तेरा
फुहार से.. उछाह भर.. .
***

दोहे

हमने तो पानी लिखा.....
जय चक्रवर्ती

आँखों का पानी मरा, मरी हृदय की पीर।
रोम-रोम हम हो गए, पत्थर की जागीर ॥

पानी तक पहुँची नहीं, पानी की अरदास।
पानी की मजबूरियाँ, थीं पानी के पास ॥

पानी संकट पर इधर, थी संसद गमगीन।
राजमार्ग पर थे उधर, पानी के कालीन॥

पानी हो कैसे भला, पानी से भरपूर।
पानी ही होने लगा, जब पानी से दूर ॥

पानी बिन प्यासा मरा, पंछी - पानीदार।
पानी-पानी हो गया, पानी का बाज़ार ॥

पानी वाली हो गईं, आँखें जब कंगाल।
जीवन-सारा बन गया, खुद में एक सवाल ॥

सबकी अपनी चाहतें, सबकी अपनी आस।
पानी दुखिया किस तरह, सींचे सबकी प्यास॥

प्यासा भी लाचार था, पानी भी लाचार।
पानी पर भारी पड़ा, पानी का बाज़ार ॥

पानी कैसे लाँघता, पानी की प्राचीर।
बाज़ारों के हाथ थी, पानी की तक़दीर ॥

दर्द एक जैसे मगर, अलग-अलग अहसास।
हमने तो पानी लिखा, उसने बाँची प्यास ॥

अंतहीन बरबादियाँ, हैं पानी को याद।
पानी की इस पीर का, कौन करे अनुवाद ॥
***

संपर्क: एम.1/149, जवाहर विहार, रायबरेली-229010, मो: 9839665691

कविताएँ

महेश शर्मा
संपर्क : 28 क्षपणक मार्ग फ्रीगंज
उज्जैन(मप्र)
मोबाइल : 09425195858
(वरिष्ठ कवि ज्ञानेंद्र पति की सुप्रसिद्ध कविता ट्राम में एक याद के एक दशक बाद महेश शर्मा की चेतना पारीक को याद करती हुई यह कविता।)

चेतना पारीक, एक दशक बाद

चेतना पारीक, कैसी हो
पहले जैसी हो?
कुछ-कुछ खुश
कुछ-कुछ उदास
देख पाती हो तारे
छू पाती हो घास?

पिता के घर की
आती तो होगी याद
वो गुड्डे-गुड़ियों की शादी
थी बचपन की बात
वो सहेलियों से रूठना-मनाना
चुटकुलों पर बिखरता
हँसी का ख़ज़ाना
अब तो ये रसोई है
और आटे से सने हाथ
सुनहरा बचपन रहा नहीं साथ

चेतना पारीक, याद है
कॉलेज की सीढ़ियों पर
बैठकर खिलखिलाना
नज़्मों व शेरों पर ताली बजाना।
वो पंछी-सी स्वच्छन्दता
ये पर्दे की ओट
तहजीब और मर्यादा पर
लग न जाए चोट।
की थी प्रवाहित तुमने शब्द - सरिता
व्यथित है कवि मन
तुम स्वयं बन गई कविता
चेतना पारीक
आश्चर्य है तुम्हारे थे बहुत-बहुत मित्र
बताओ तो विस्मृत अतीत बनता है कभी
चलचित्र?
ज़िन्दगी के असली नाटक में
ले रही हो भाग
चेहरे पर है शीतलता
हृदय में धधक रही है आग
उभरी हैं गालों की हड्डियाँ
रगों में खून कम है
आँखों के नीचे ये काले धब्बे
क्या सिर्फ मेरा वहम है?
अदृश्य हुए टेसू
झर गए पलाश
पैंतीस की उम्र है
लगती है पचास।

चेतना पारीक,
देखती हो क्या अब भी सपने?
सच कहना ढूँढ़ पाती हो कोई अपने?
स्वप्न में खुद को क्या पाती हो
भीगी पलकें लिए अनुत्तरित कहाँ जाती हो?
नज़रों को भी जब चुभती है दाढ़ी
उफ् जल्दी करो,
चूक न जाए उनकी आठ वाली गाड़ी
राशन हुआ खत्म
बाज़ार है जाना
मुन्ने के बस्ते पर
पैबंद है लगवाना
मुन्नी की फ्राक भी तो
पड़ रही है छोटी
मुई ताड़ सी बढ़ रही
हो गई है कुछ मोटी
बच्चों की महँगी किताबें, बढ़ती हुई फीस
ट्यूटर की ज़रूरत भी पैदा कर रही टीस
ज़िन्दगी ही अब शोक गीत बन गई
गुनगुनाना पड़ेगा इसे,
ये जग की रीत बन गई।
नियति ने थाम ली रंग-तूलिका
बना रही चित्र, आकांक्षाएँ हो रही मृत्तिका।

चेतना पारीक कैसी हो?
भाग्यवाद को ठुकराने वाली नियति को मान
बैठी हो?
कहो, अतीत से कुछ परिचय शेष है
मौन हो तकती क्या
आँखें अनिमेष हैं
पूनम के चंदा को देख
चुभती है मन में फांस
नीर भरे नयनों में अटकी है कोई आस

चेतना पारीक
एकांत में यूँ क्योंकि रोती हो
व्यथा के अनमोल क्षणों को
व्यर्थ क्यों खोती हो।
बना क्यों नहीं लेती इन्हें तुम अपनी शक्ति
अखिल विश्व देखेगा फिर ज़िन्दगी के प्रति
तुम्हारी भक्ति।
देखों,
कहीं कुछ सृजन की ऊर्जा शेष है?
जानता हूँ
चेतना पारीकों से भरा यह देश है
कहो तो एक गूँज, एक हुँकार
एक उठी हुई मुट्ठी से
नवल प्रकाश झरेगा
फैलकर चारों ओर
तम-रावण का दर्प हरेगा,
तोड़ो मौन, इस पावन धरती का
कण-कण स्पंदन करेगा
परिवर्तन की इस लहर का वेग
देखें कौन मंद करेगा?
सीमेन्ट-कॉंक्रिट के जंगल में
मिट्टी की महक खो गई
कंठ है अवरूद्ध
दुनिया की संवेदना सो गई।

चेतना पारीक, ओ चेतना पारीक...
चेतना पारीक...
हो भी या खो दिखा अस्तित्व
खंड-खंड हो गया व्यक्तित्व
मिट गई पहचान
बदल दिया गया नाम?

चेतना पारीक,
ओ चेतना पारीक...
...चेतना पारीक।
***

रवीन्द्रनाथ त्यागी स्मृति पुरस्कार प्रस्तावित

पिछले दिनों हिंदी भवन में, तीन घंटे चली, 'व्यंग्य यात्रा' द्वारा आयोजित, 'रवीन्द्रनाथ त्यागी की बैठक', वैचारिक दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध रही। कमलकिशोर गोयनका सम्पादित एवं वाणी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'रवीन्द्रनाथ त्यागी रचनावली' तथा प्रेम जनमेजय द्वारा संपादित एवं दिल्ली पुस्तक सदन द्वारा प्रकाशित 'खुली धूप में नाव का यात्री : रवीन्द्रनाथ त्यागी' के लोकार्पण के माध्यम से अनेक पीढ़ियों ने न केवल रवीन्द्रनाथ त्यागी साहित्य- चर्चा एवं संस्मरण साझा किए अपितु व्यंग्य से ज्वलंत जुड़े मुद्दों पर अपनी बात रखी। चर्चा में नरेंद्र कोहली, कमलकिशोर गोयनका, शेरजंग गर्ग, हरिपाल त्यागी, हरीश नवल, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, सुरेश कांत, सुरेश उनियाल,सुभाष चन्दर, फारूख अफरीदी, आशा रावत, इंदु त्यागी, आशा कुंद्रा, एम् एम् शर्मा के समृद्ध विचार सुनने को मिले। इस अवसर पर शारदा त्यागी ने कहा कि रवीन्द्रनाथ त्यागी जी की स्मृति को अक्षुण रखने के लिए 'व्यंग्य यात्रा' ने बहुत महत्त्वपूर्ण आयोजन किया है। इससे पूर्व भी 'व्यंग्य यात्रा' विशेषांक निकाला एवं त्यागी जी पर कार्यक्रम आयोजित किए हैं। गोयनका जी ने रचनावली संपादित कर उनकी स्मृति को अक्षुण्ण करने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। मैं व्यंग्य यात्रा को एक और ज़िम्मेवारी सौंपना चाहती हूँ। त्यागी जी की स्मृति में एक पुरस्कार दिया जाए जिसके लिए मैं 21000 की राशि प्रतिवर्ष दिया करुँगी। आयोजन की व्यवस्था, पुरस्कार की प्रकृति, नियमावली आदि प्रेम जी, गोयनका जी जैसे अग्रजों से चर्चा कर तय करलें। अतिथियों का स्वागत सुरेश कांत की पुस्तकों से एवं सुरेश कांत का स्वागत नरेंद्र कोहली की कृति से किया गया। कुशल संचालन लालित्य ललित ने किया।

मुख्य अतिथि नरेंद्र कोहली ने कहा कि रवींद्र नाथ त्यागी से मेरी अधिक मुलाकातें नहीं हैं, पर जितनी हैं उनमें मैंने उन्हें एक स्पष्टवादी इंसान पाया। वे अपने लेखन के प्रति गंभीर थे। हमारा समय ऐसे लेखकों को उपेक्षा की दृष्टि से देखने का है।रवींद्र नाथ त्यागी को भी हिंदी साहित्य ने बहुत उपेक्षित किया है। मेरा मानना है कि यदि आपको लिखना है तो आपको उन्हें उपेक्षित करना होगा जो आपको कर रहे हैं। मैं केवल लिखता हूँ और दिल से लिखता हूँ, किसी आलोचक की कृपा दृष्टि पाने के लिए नहीं लिखता हूँ। अनेक लोगों ने मेरे पुरस्कार रोके पर वे मेरा लेखन नहीं रोक पाए। केवल व्यंग्य लिखना मेरी विवशता नहीं है। मेरा मानना है कि आप सबसे पहले साहित्यकार बने। सारी भाषाओं की विधाओं को पढ़े,जो मन में आए उस विधा में लिखें। रही बात पुरस्कार कि तो मुझे ज्ञान पीठ का पुरस्कार नहीं मिला तो क्या मैं लेखक नहीं हूँ? गुटबंदी साहित्य को नष्ट कर रही है। हमें इससे बचने की ज़रूरत है।

कमलकिशोर गोयनका ने अपनी बात रखते हुए कहा कि रवींद्र नाथ त्यागी अपनी वसीयत में लिख कर गए थे कि उनकी रचनावली का संपादन मुझे करना है। आज मैंने अपना वादा निभा दिया है। यह रचनावली मेरी तरफ से उनको श्रद्धांजलि है। उन्होंने आगे बताया कि इस रचनावली को तमाम प्रयासों के बाद लाया गया है। इसमें कमियाँ हो सकती हैं लेकिन कोई तो युवा आएगा जो इसकी कमियों को दूर करेगा। उन्होंने समकालीन व्यंग्य को लेकर भी अपनी बात रखते हुए कहा कि सच्चा व्यंग्य वही है, जिसमें उच्चकोटि का भाव उत्पन्न होता हो। आत्म व्यंग्य से बड़ा कोई भी व्यंग्य नहीं हो सकता है।

अध्यक्ष शेरजंग गर्ग जी ने अपनी स्मृतियों को याद करते हुए कहा कि रवीन्द्रनाथ त्यागी मूलतः साहित्यकार थे। और वे अपने को कवि मानते थे। उनको जब तक नहीं समझा जा सकता तब तक कि उनके कवि कर्म को नहीं समझा जाएगा। शेरजंग गर्ग ने रवींद्र नाथ त्यागी की काव्य प्रतिभा को रेखांकित किया। उनका मानना था कि रवींद्र नाथ त्यागी जितने बड़े व्यंग्यकार थे, उतने ही बड़े कवि थे।

प्रेम जनमेजय जी ने 'व्यंग्य यात्रा' की शुरूआत का उद्देश्य सबके सामने रखते हुए कहा कि इसका का हमेशा यही उद्देश्य रहा है कि व्यंग्य-विमर्श को गंभीरता की तरफ ले जाया जाए। पहले ही अंक में व्यंग्य मनोविज्ञान से विचार विमर्श शुरू करते हुए व्यंग्य के अनेक मुद्दों पर चर्चा जारी है। यह आरम्भ से ही एक खुला मंच रहा है। रवीन्द्रनाथ त्यागी अपने से बाद की पीढ़ी से जुड़ने को सदा तत्पर रहते थे। वे न केवल अपने से बाद की पीढ़ी को पढ़ते थे अपितु गंभीरता से उनकी रचनाओं का विश्लेषण करना और बेबाकी से अपनी राय देना उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। उम्र में अपने से बहुत ही छोटे रचनाकारों को अपनी पुस्तक समर्पित कर देना, उनके व्यक्तित्व का एक ऐसा गुण है जो बहुत कम देखने में आता है, वरना समर्पण करते समय अनेक गणित लगाए जाते हैं।

ज्ञान चतुर्वेदी की अनुपस्थिति में एम. एम. चन्द्रा ने उनका सन्देश सदन में पढ़ कर सुनाया। जिसमें लिखा था कि व्यंग्य और विनोद को तो बहुत लोग रचते हैं परन्तु बिरले ही रवीन्द्रनाथ त्यागी बन पाते हैं। दशकों में एकाध। रविंद्रनाथ त्यागी न केवल अपनी रचनाओं में बड़े थे बल्कि वे मनुष्य के तौर पर मुकम्मल इन्सान थे। मुझ पर और प्रेम जन्मेजय पर उनका विशेष स्नेह था। उनके पास बैठना, उन्हें सुनना, उनके चेहरे को ताकते रहना, उनके भोलेपन तथा विद्वता के मिलेजुले आभामंडल को महसूस करना - ऐसे कई अवसर मुझे मिले हैं।

हरीश नवल जी ने भावुक होते हुए कहा कि त्यागी जी हिप्पोक्रेट नहीं थे। उन्हें कभी

भी किसी भी आवरण की आवश्यकता नहीं थी। उनका सिखाने का अंदाज ही अलग था।

सुरेशकान्त ने व्यंग्य विरासत का ज़िक्र करते हुए उन लोगों को जवाब दिया जो यह कहते हैं कि त्यागी जी का अति मूल्यांकन हुआ है। उन्होंने कहा है कि हास्य-व्यंग्य के गौरीशंकर हैं रवीन्द्रनाथ त्यागी। व्यंग्यकार और भी हैं, व्यंग्य में उनका भी जवाब नहीं, व्यंग्य के शिखर हैं वे सब, पर हास्य-व्यंग्य के गौरीशंकर तो रवीन्द्रनाथ त्यागी जी ही हैं। मुझ पर उनकी बहुत कृपा रही है। समाज, साहित्य, राजनीति, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में जहाँ भी विसंगति नज़र आई, वहीं त्यागी जी ने तीखा प्रहार किया है। उनकी भाषा को संस्कृतनिष्ठ कहकर क्लिष्ट और आम पाठकों के लिए दुर्गम बताया जाता है, जो कि सत्य नहीं है, क्योंकि उन्होंने सबसे ज़्यादा प्रयोग तो उर्दू के आमफहम शब्दों का किया है। संस्कृत के शब्द उनके लेखन में संस्कृत के उद्धरणों या प्रसंगों के संदर्भ में ही आए हैं।

हरिपाल त्यागी जी ने रवीन्द्रनाथ त्यागी को याद करते हुए कहा कि उनका काम ही था जिनके पीछे चलते चलते आज हम आपके पास आ गए हैं। उन्होंने रवीन्द्रनाथ त्यागी से सम्बन्धित कई प्रसंग सुनाए।

सुभाष चंदर ने बताया कि त्यागी जी से उनका रिश्ता चाचा भतीजे की तरह था। हमारा आपस में काफी तीखा वाद-विवाद होता रहता था। उन्होंने त्यागी जी से जुड़े एक प्रसंग को सुनाया कि एक बार उनको लिखे एक पत्र में मुझसे उनका नाम गलत लिखा गया। त्यागी जी ने लिखा कि तुम एक निहायत ही असभ्य व्यक्ति हो, इतना सब होने के बाद भी त्यागी जी जब भी दिल्ली आए तो मुझसे ज़रूर मिले। उनका अनुशासन आज भी हमें याद आता है।

सुरेश उनियाल ने आपने वक्तव्य में कहा कि मेरे पास उनसे जुड़े बहुत संस्मरण हैं जो कई दिन बोलने के बाद भी खत्म नहीं होंगे। उनकी हर बात में सहज व्यंग्य आता था। ऐसा लगता था जैसे वे व्यंग्य को जीते थे। उनका अनुशासित जीवन उनके लेखन में भी देखने को मिलता है आशा रावत ने कहा कि मुझे तो व्यंग्य लिखना उन्हीं ने सिखाया है। लेकिन मैं उनको व्यंग्यकार के साथ - साथ एक कवि के रूप में भी जानती हूँ। त्यागी जी ने कभी भी तात्कालिक लाभ के लिए काम नहीं किया। यही उनका जीवन दर्शन है

इंदु त्यागी जी ने पूरे सदन को भाव विभोर कर दिया। जब वे बोलती चली गई तो न जाने कितने किस्से कोताह अपने आप बहते चले गए। उन्होंने बताया कि वे हमारे लिए एक आदर्श पापा थे। उन्होंने हमारी पसंद को अपनी पसंद बनाया, हमारे जीवन के हर फैसले के साथ खड़े रहे। साहित्यिक संस्कृति तो हमें विरासत में मिली थी। हम लोग खाना खाते समय न जाने कितने देशी विदेशी लेखकों से परिचित हुए। जब भी वे इलाहाबाद की बात करते तो लगता जैसे हम अभी भी इलाहाबाद को जी रहे हैं। उनकी यादें आज भी ज़िंदा है। पापा आज भी आप हममें ज़िंदा हो, हमारी आशाओं में, उल्लास में और विचारों में। मैं जानती हूँ आप हमारा साथ कभी नहीं छोड़ेंगे।

एम. एम. चन्द्रा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि अभी भी उनके सपनों को पूरा करना बाकी है। उनका सपना था - जो साहित्यकार यदाकदा व्यंग्य लिखते हैं उनको भी चिह्नित किया जाए। विभिन्न भारतीय भाषाओं के व्यंग्य लेखन को भी चिह्नित किया जाए। विदेशी भाषाओं में लिखे जा रहे व्यंग्य को भी हिंदी पाठकों तक लाया जाए। उन पत्रों का भी संकलित किया जाए जो व्यंग्य साहित्य की धरोहर है। उनका सपना यह भी था कि देश की उन तमाम पत्रिकाओं से भी व्यंग्य का संकलन किया जाए जो आज बंद हो चुकी हैं। काव्य, आलोचना, समीक्षा और अनुवाद के काम को भी आगे बढ़ाया जाना चाहिए। ये सारी ज़िम्मेदारी अब हमारी है। हमें ही उनके सपनों को पूरा करना है।

आशा कुंद्रा ने आयोजन में शामिल होने वाले सभी अतिथियों का आभार वक्तव्य करके सभा का समापन किया। इस आयोजन में दिल्ली के अनेक रचनाकार उपस्थित थे।

-- **प्रस्तुति एम. एम. चन्द्रा**

***

उ0प्र0 सरकार द्वारा कवि योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' सम्मानित

लखनऊ स्थित उ0प्र0 राज्य कर्मचारी साहित्य संस्थान के वार्षिक सम्मान समारोह में उ0प्र0 के राज्य कर्मचारियों को जो साहित्य सृजन कर रहे हैं, पुरस्कार प्रदान किए गए जिसमें मुरादाबाद के साहित्यकार श्री योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' को दीर्घकालीन साहित्य सेवा (काव्य लेखन) के लिए ''महाकवि सुमित्रानंदन पंत पुरस्कार'' से सम्मानित किया गया। सम्मान स्वरूप कवि योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' को सम्मानपत्र, प्रतीक चिह्न, अंगवस्त्र तथा सम्मान राशि भेंट की गई। कार्यक्रम में नामित पुरस्कारों के साथ-साथ ''साहित्य गौरव'' पुरस्कार से भी कई साहित्यकारों को पुरस्कृत किया गया।कार्यक्रम का आयोजन लखनऊ स्थित उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के यशपाल सभागार में हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. हरिओम, सचिव- संस्कृति विभाग उ.प्र. शासन ने की, मुख्य अतिथि श्री सुधीर कुमार सक्सेना अध्यक्ष - उ.प्र. न्यायिक सेवा अभिकरण, विशिष्ट अतिथि पूर्व कृषि उत्पादन आयुक्त उ.प्र. श्री अनीस अंसारी रहे। कार्यक्रम में संस्थान के महासचिव डॉ. दिनेश चन्द्र अवस्थी, डॉ. रश्मिशील शुक्ल, मधुकर अष्ठाना, रमाशंकर सिंह, शिवभजन 'कमलेश', श्यामनारायण श्रीवास्तव, भारतेन्दु मिश्र आदि अनेक स्थानीय साहित्यकार एवं प्रशासनिक अधिकारी उपस्थित रहे।

उल्लेखनीय है कि श्री योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' की अब तक तीन पुस्तकें- 'इस कोलाहल में', 'बात बोलेगी' एवं 'रिश्ते बने रहें' प्रकाशित हो चुकी हैं ।

***

गांधी शान्ति प्रतिष्ठान में पुरस्कार अर्पण समारोह सम्पन्न

दिनांक 15 अप्रैल, 2017 की शाम को नई दिल्ली के गांधी शान्ति प्रतिष्ठान में युवा कवि प्रांजल धर के संयोजन में पुरस्कार अर्पण समारोह का भव्य आयोजन किया गया। इस अवसर पर वर्ष 2016-17 के लिए आठ युवा रचनाकारों को सम्मानित किया गया। रवीन्द्र कालिया स्मृति पुरस्कार (कथा या कथेतर गद्य के लिए) वर्ष 2016 के लिए कबीर संजय को और वर्ष 2017 के लिए मनोज कुमार पाण्डेय को; पंकज सिंह स्मृति पुरस्कार (कविता के लिए) वर्ष 2016 के लिए अशोक कुमार पाण्डेय को और वर्ष 2017 के लिए मृत्युंजय प्रभाकर को; श्याम धर स्मृति पुरस्कार (पत्रकारिता या सामाजिक कार्य के लिए) वर्ष 2016 के लिए आकांक्षा पारे को और वर्ष 2017 के लिए पूजा सिंह को; सीताराम शास्त्री स्मृति पुरस्कार (आलोचना के लिए) वर्ष 2016 के लिए सर्वेश सिंह को और वर्ष 2017 के लिए कमलेश वर्मा को प्रदान किया गया। ये पुरस्कार इन रचनाकारों को कार्यक्रम के अध्यक्ष सुप्रसिद्ध आलोचक-चिन्तक मैनेजर पाण्डेय और सुप्रसिद्ध वरिष्ठ कथाकार श्रीमती ममता कालिया के हाथों प्रदान किए गए। पुरस्कारस्वरूप इन आठों रचनाकारों में से प्रत्येक को तीन हज़ार एक सौ रुपये की नगद राशि और प्रशस्ति पत्र भेंट किए गए। उल्लेखनीय है कि साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रत्येक वर्ष चार पुरस्कार घोषित किए जाते हैं।

इन पुरस्कारों के लिए बनाए गए निर्णायक मण्डल में तीन सदस्य शामिल हैं - सर्वश्री विजय राय (सम्पादक - 'लमही'), कथाकार अखिलेश (सम्पादक - 'तद्भव') और कवि-आलोचक जितेन्द्र श्रीवास्तव। इस समारोह में ये तीनों सदस्य उपस्थित थे और अखिलेश ने निर्णायक मण्डल की तरफ से इन पुरस्कारों की निर्णय प्रक्रिया से जुड़ा अपना वक्तव्य दिया। पुरस्कृत रचनाकारों की प्रशस्तियों का वाचन किया गया और पुरस्कृत रचनाकारों ने अपने-अपने वक्तव्यों में अपनी रचना-प्रक्रिया से जुड़ी चीज़ें साझा कीं। ममता कालिया ने कहा कि यह युवा रचनाशीलता का उत्साहवर्द्धन है और जब महिला पत्रकारों को पुरस्कार मिलते हैं तो इससे पत्रकारिता का भी भला होता है और समाज में महिलाओं का भी भला होता है। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने रचनाकारों का उत्साहवर्द्धन किया और कुछ बेहतरीन सुझाव भी दिए ताकि आगामी वर्षों में इस कार्यक्रम को और अधिक व्यवस्थित बनाया जा सके।

***

अशोक कश्यप सम्मानित

नई दिल्ली ! 27 मई को नवांकुर साहित्य सभा एवं दिल्ली पब्लिक लाईब्रेरी, (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित युवा 'काव्य गोष्ठी' हुई जिसमें श्री अशोक कश्यप द्वारा दिए गए साहित्य,कला, संस्कृति एवं भाषा के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान देने के फलस्वरूप, टू मीडिया टीम ने श्री अशोक कश्यप (अध्यक्ष-'नवांकुर साहित्य सभा') को ''टू मीडिया गौरव सम्मान- 2017 '' से सम्मानित किया !

***

सूर्यबाला को महाराष्ट्र साहित्य अकादमी का अखिल भारतीय जीवन-गौरव सम्मान

पिछले दिनों प्रख्यात रचनाकार सूर्यबाला को महाराष्ट्र साहित्य अकादमी का डॉ. राम मनोहर त्रिपाठी अखिल भारतीय सर्वोच्च, जीवन गौरव पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

साहित्य प्रेमियों से खचाखच भरे सभागार में महाराष्ट्र के शिक्षा एवं संस्कृति कार्यों के मंत्री श्री विनोद तावड़े, विधायक श्री राजपुरोहित तथा महाराष्ट्र साहित्य अकादमी के कार्याध्यक्ष श्री नंदलाल पाठक द्वारा उन्हें शाल, श्रीफल स्मृति चिह्न तथा मानपत्र प्रदान किया गया।

पुरस्कार समिति के सदस्य श्री संजय भारद्वाज ने कहानी, उपन्यास, व्यंग्य-लेखन तथा स्मृति-कथाओं के रूप में पिछले साढ़े चार दशकों तक फैले सूर्यबाला के महत्त्वपूर्ण साहित्यिक अवदान का परिचय देते हुए कहा कि उन्हें पुरस्कृत करते हुए अकादमी स्वयं गौरवान्वित है।

शिक्षामंत्री श्री विनोद तावड़े ने सूर्यबाला का अभिनंदन करते हुए अकादमी के निर्णय और कार्यों की प्रशंसा की तथा अकादमी को उत्कृष्ट पुस्तकों के अनुवाद की दिशा में विशेष पहल करने का आग्रह किया।

स्वागत भाषण पुरस्कार समिति के सदस्य डा. एस.पी. दुबे ने दिया। कार्यक्रम का संचालन अकादमी के सदस्य संजय भारद्वाज तथा सुरेश नियास ने किया। प्रारंभ में विभिन्न कलाकारों द्वारा लोकनृत्य तथा गीतों की प्रस्तुति की गई तथा अंत में राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

-संदीप उपाध्याय

***

संतोष सुपेकर के लघुकथा संग्रह 'हँसी की चीखें' का विमोचन संपन्न

विश्व पुस्तक दिवस पर उज्जैन में हुआ पुस्तक विमोचन

उज्जैन/म.प्र.। 'लघुकथा साहित्य की सबसे कठिन विधा है क्योंकि इसमें रचनाकार को थोड़े में बहुत कुछ कहना होता है, इसमें शब्दों की सीमा तय होती है इसलिए यह अत्यधिक श्रम और सतर्कता माँगती है।' उक्त उद्गार सीहोर से पधारे ख्यात कथाकार, संपादक (विभोम स्वर) श्री पकंज सुबीर ने संतोष सुपेकर के चौथे लघुकथा संग्रह 'हँसी की चीखें' के विमोचन प्रसंग पर व्यक्त किए। यह जानकारी देते हुए संस्था सरल काव्यांजलि के सचिव डॉ. संजय नागर ने बताया कि इस अवसर पर वरिष्ठ लघुकथाकार श्री सूर्यकांत नागर (इंदौर) ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में लघुकथा की रचना प्रक्रिया बताते हुए कहा कि घटना को देखना, ग्रहण करना, मस्तिष्क में पचाना तथा फिर काग़ज़ पर उतारना ही लघुकथा निर्माण की वास्तविक विधि है। उन्होंने कहा कि संतोष सुपेकर में सहजता, सरलता व स्वअनुशासन कूट-कूट कर भरा है जो उनकी लघुकथाओं में भी परिलक्षित होता है। कार्यक्रम के विशेष अतिथि रतलाम से पधारे पश्चिम रेलवे के वरिष्ठ मंडल विद्युत अभियंता (क.प.) श्री संजीव मेहता ने कहा कि दुनिया की सारी क्रांतियों के बीज का पुरोधा साहित्यकार ही होता आया है। संतोष सुपेकर केवल लेखन ही नहीं करते, साहित्य की भक्ति भी करते हैं। ख्यात साहित्यकार, संपादक श्रीयुत् श्रीराम दवे ने कहा कि समकालीन लघुकथा अपने पचास वर्ष पूर्ण करने जा रही है, अब इसका विश्लेषण भी गहराई से हो रहा है। विशेष अतिथि वरिष्ठ पत्रकार श्री अनिलसिंह चंदेल ने भी अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त की। पुस्तक चर्चा करते हुए विक्रम विश्वविद्यालय के कुलानुशासक डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा ने संतोष सुपेकर को मंगल कामनाएँ देते हुए कहा कि उन्होंने लघुकथा की मुकम्मल पहचान को बरकरार रखने का प्रयास किया है। सुपेकर जी ने आपसी दूरी, मनुष्यता का अभाव, निस्तेज होते हुए व्यवस्था तंत्र जैसी घटनाओं को अपनी लघुकथाओं का विषय बनाया है। वर्ल्ड बुक डे के अवसर पर आयोजित इस प्रसंग में पुस्तक के लेखक श्री संतोष सुपेकर ने कहा कि वैचारिकता को लेकर प्रतिबद्ध लेखक का प्रयास होता है कि वह एक निष्प्राण कंकड़ पर तो लिखे पर उसका लिखा निष्प्राण न हो। उन्होंने संग्रह में से अपनी दो प्रतिनिधि रचनाओं का पाठ करने से पूर्व लघुकथा के ब्रह्मलीन स्तम्भों सर्वश्री सुरेश शर्मा, पारस दासोद, सतीश दुबे एवं एन. उन्नी को श्रद्धांजलि अर्पित की।

प्रारंभ में सरस्वती वंदना राजेश रावल 'सुशील' ने प्रस्तुत की। अतिथि स्वागत श्री विजयसिंह गेहलोत, विजय गोपी, नरेंद्र व्यास, संजय जौहरी, रमेश जाजू, अरूण सक्सेना, अनिल चौबे, मोहनसिंह, प्रबुद्ध कुमार, बाबूराम, महेश कानूनगो, आशागंगा शिरडोणकर ने किया। स्वागत भाषण संस्था अध्यक्ष श्री नितिन पोल ने दिया। संचालन श्री राजेन्द्र देवधरे 'दर्पण' व अंत में आभार श्री परमानंद शर्मा 'अमन' ने माना।

इस अवसर शहर की ख्यात हस्तियाँ यथा डॉ. पिलकेन्द्र अरोरा, डॉ. शिव चौरसिया, डॉ. पुष्पा चौरसिया,डॉ. जफर महमूद, डॉ. प्रभाकर शर्मा, राधेश्याम पाठक 'उत्तम', प्रदीप 'सरल', अरविंद त्रिवेदी 'सनन', मीरा जैन, श्रीकृष्ण जोशी, जगदीश पंड्या, चित्रकार जयेश त्रिवेदी, कोमल वाधवानी 'प्रेरणा', वासुदेव शर्मा, वाणी दवे, रामचंद्र अरुण पांचाल, हरीश अंधेरिया, नारायण मंघवानी एवं राजेश ठाकुर 'निर्झर' आदि मौजूद थे।

* * *

राकेश मिश्र कृष्ण प्रताप कथा सम्मान से सम्मानित

कहानीकार राकेश मिश्र को उनके दूसरे कथा संग्रह 'लाल बहादूर का इंजन' के लिए वर्ष 2016 का कृष्ण प्रताप स्मृति कथा सम्मान से सम्मानित किया गया। 14 अप्रैल 2017 को रामानंद सरस्वती पुस्तकालय जोकहरा (आजम गढ़) में हुए सम्मान समारोह में उन्हें शॉल, प्रशस्तिपत्र और सम्मानराशि देकर सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम के संयोजक और निर्णायक मंडल के प्रमुख सदस्य प्रख्यात उपन्यासकार विभूतिनारायण राय ने राकेश मिश्र की कहानियों की खासियत बताते हुए कहा कि नब्बे के बाद के हमारे समाज में आए तीव्र बदलाव को समझने के लिए राकेश मिश्र एक अपरिहार्य और ज़रूरी कहानीकार हैं।

मुख्य अतिथि प्रख्यात फिल्म समीक्षक प्रहलाद अग्रवाल ने राकेश की कहानियों के नाटकीय तत्त्वों की गंभीर विवेचना की। युवा आलोचक शंभु शरण मिश्र ने राकेश मिश्र की कहानियों पर विशेष वक्तव्य देते हुए कहा कि वे अपने समय की गतिशीलता को अपनी गतिकी से दर्ज करने वाले विरल कहानीकार हैं।

सम्मानित कहानीकार राकेश मिश्र ने कहा कि पुरस्कार प्राप्त करने के बाद लेखकीय ज़िम्मेदारी और बढ़ जाती है। उन्होंने कहा कि उनकी पीढ़ी की कहानियाँ दर असल कहानियों में नागरिक समाज की वापसी की कहानियाँ हैं। कार्यक्रम में युवा आलोचन कालू लाल कुलमी, प्रियदर्शन मालवीय तथा सोनू पांडेय ने भी राकेश मिश्र की कहानियों के बारे में विचार व्यक्त किए।

* * *

अभिनव अरुण के दो रचना संग्रहों का लोकार्पण

साहित्य हमें जीवन को जीने की कला सिखाता है – डॉ. ओम निश्चल

वाराणसी निवासी समकालीन कविता और ग़ज़ल के सशक्त हस्ताक्षर अभिनव अरुण के दूसरे ग़ज़ल संग्रह ''बादल बंद लिफ़ाफ़े हैं '' एवं प्रथम काव्य संग्रह ''माँद से बाहर '' सहित कुल साथ पुस्तकों का लोकार्पण समारोह रविवार, दिनांक 2 अप्रैल 2017 को इलाहाबाद स्थित हिन्दुस्तानी अकादमी सभागार,सिविल लाइन में सम्पन्न हुआ। प्रख्यात कवि श्री यश मालवीय की अध्यक्षता में आयोजित समारोह में सुपरिचित समालोचक डॉ ओम निश्चल (दिल्ली) मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। चर्चित पत्रिका ''ग़ज़लकार''के संपादक डॉ. दीपक रूहानी के संचालन में आयोजित कार्यक्रम में कवि नन्दल हितैषी, डॉ अमिताभ त्रिपाठी और डॉ रविनंदन सिहं विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे।

दिल्ली से आए मुख्य अतिथि डॉ. ओम निश्चल (सुपरिचित आलोचक) ने पुस्तकों पर चर्चा करते हुए कविता के मूल तत्त्वों पर प्रकाश डाला तथा पुस्तकों के विधागत श्रेष्ठ होने पर रचनाकारों को बधाई दी तथा समग्र साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा कि साहित्य हमें जीवन को जीने की कला सिखाता है। प्रख्यात गीतकार श्री यश मालवीय ने साहित्य और मीडिया के आपसी संबंध, समाज में पुस्तकों की उपयोगिता, समकालीन कविता के बदलते आयाम आदि विषयों पर विस्तार से चर्चा की। समालोचक डॉ. रविनंदन सिंह ने कहा कि अंतर्जाल पर उपलब्ध प्रचुर साहित्य मानक नहीं है और वह लिखित साहित्य का स्थान नहीं ले सकता। आज की कविता सामाजिक सरोकारों के प्रति अधिक सजग और मुखर है।

इसके पहले कार्यक्रम की शुरूआत दीप प्रज्जवलन तथा यश मालवीय के सुस्वर सरस्वती वंदना से हुई तथा संस्था से सदस्यों द्वारा अतिथियों को शाल माला पहना कर तथा स्मृति चिह्न देकर स्वागत किया गया तथा पुस्तकों का लोकार्पण अतिथियों ने अपने करकमलों से किया।

पुस्तक चर्चा सत्र में डॉ. अमिताभ त्रिपाठी ने अभिनव अरुण के ग़ज़ल संग्रह 'बादल बंद लिफाफे हैं' पर अपने विचार प्रस्तुत किए तथा ग़ज़लों को समाज के संदर्भों से जोड़ते हुए तमाम विषमताओं पर करारा प्रहार बताया। वहीं गिरिराज भंडारी के ग़ज़ल संग्रह 'पुकारा है हमने उसे बार बार' पर चर्चा करते हुए डॉ. अमिताभ त्रिपाठी ने कहा कि सरल भाषा में जीवन के अलग अलग रंगों की इन्द्रधनुषी प्रस्तुति से पुस्तक सजीव हो उठी है।

अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद के तत्वावधान में अपराह्न तीन बजे आयोजित समारोह में पुस्तक चर्चा, मुशायरा सह कवि सम्मेलन एवं पुस्तक प्रदर्शनी हुई।

***

ओमप्रकाश प्रजापति सम्मानित

ओमप्रकाश प्रजापति को टू मीडिया सम्पादकीय कार्यालय में श्री गजेन्द्र सिंह ने टू मीडिया द्वारा साहित्य, कला, भाषा एवं संस्कृति के क्षेत्र में किए अतुल्य योगदान करने पर 'गज केसरी युग सम्मान' से सम्मानित किया। इस सम्मान के साक्षी बने श्री दिनेश सिंह, डॉ. मनोज कुमार एवं श्री विनोद पाँडेय।

***

हेमंत स्मरण और अखिल भारतीय कवि सम्मेलन

मुम्बई 23 मई, विश्व मैत्री मंच द्वारा युवा कवि हेमन्त की स्मृति में आयोजित हेमंत स्मरण एवं कवि सम्मेलन का आयोजन एवं मुंबई के सभी साहित्यकारों का उसमें अपनी मौजूदगी दर्ज कराना मानों हेमंत की यादों का लौट आना था। सभागार उस समय बेहद भावुक हो उठा जब ललिता अस्थाना, सूरज प्रकाश,रीता दास राम, सूर्यबाला,सुधा अरोड़ा ने हेमंत की स्मृतियों को साझा किया। आयोजन के मुख्य अतिथि महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष डॉ. नंदलाल पाठक, अध्यक्ष 'नवनीत' के संपादक विश्वनाथ सचदेव, विशिष्ट अतिथि अभिनेता, कवि राजेन्द्र गुप्ता, जे जे टी यूनिवर्सिटी के कुलपति डॉ. विनोद टिबड़ेवाला, वरिष्ठ पत्रकार एवं कवि डॉ. राकेश पाठक तथा समीक्षक कवयित्री मधु सक्सेना ने हेमंत की कविताओं पर चर्चा करते हुए हेमंत को याद किया। राजेंद्र गुप्ता ने अपने खास अंदाज़ में हेमंत की चार कविताओं का पाठ किया।

कार्यक्रम में जहाँ एक ओर कमलेश बख्शी, डॉ. रोचना भारती, डॉ. विद्या चिटको, धीरेंद्र अस्थाना वेद प्रकाश, रेखा रोशनी जैसे वरिष्ठ लेखक मौजूद थे वही हस्तीमल हस्ती, सुभाष काबरा, राकेश शर्मा, देवमणि पाण्डेय, शाश्वत रतन, खन्ना मुज़फ्फरपुरी, संतोष श्रीवास्तव, हरि मृदुल, लक्षमण शर्मा वाहिद, सुमिता केशवा, चित्रा देसाई, संजय भिसे, ज़ुबेर आज़मी, रेखा बब्बल आदि कवियों ने अपनी कविताओं का पाठ किया।

***

धर्म और विचार के बीच निजी जीवन

हिन्दी के शीर्ष आलोचक मैनेजर पाण्डेय जी का एक चित्र किसी पूजा में बैठे हुए सामने आया और उसको लेकर भाई लोगों ने वितंडा खड़ा कर दिया। समझ में नहीं आता इन दिनों हम लोग व्यक्तिगत जीवन को लेकर इतने दुराग्रही क्यों होते जा रहे हैं। और इस बात से क्या फ़र्क़ पड़ता है कि कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन में किस प्रकार से जी रहा है। सबसे पहले तो बात यह कि धर्म एक निजी मामला है। हर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपने इस निजी अधिकार का उपयोग किस प्रकार करता है। जैसे कि यह कि स्व. हरकिशन सिंह सुरजीत जो कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के लम्बे समय तक महासचिव रहे वो जीवन भर धार्मिक प्रतीकों, पगड़ी और केश को धारण करे रहे। पगड़ी और केश सिख समाज के पवित्र धार्मिक प्रतीक हैं, उनको धारण करते हुए भी वे वामपंथी बने रहे। कभी भी यह नहीं प्रश्न उठा कि धार्मिक प्रतीकों को धारण करते हुए ये वामपंथ के सबसे महत्त्वपूर्ण पद पर कैसे बैठे हैं। लेकिन मैनेजर पाण्डेय जी का एक चित्र सामने आता है जिसमें वे पूजा करते हुए दिखाई दे रहे हैं तो उस पर इतना बड़ा बखेड़ा खड़ा हो जाता है। बौद्धिक विकास अलग बात है और परिवार का आग्रह अलग बात है। जब हम परिवार में होते हैं तो हम परिवार के होते हैं और जब हम समाज में होते हैं तो हम समाज के होते हैं। हमें यह दोनों जीवन संतुलन के साथ जीना चाहिए। रचनाकारों के परिवार को तो वैसे भी उनका बहुत कम समय मिल पाता है, ऐसे में यह बात बिल्कुल ठीक है कि जब वो परिवार के साथ रहे तो फिर पूरी तरह परिवार का ही होकर रहे। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि विचारों से , साहित्य से, विमर्श से, शिक्षा से जो बौद्धिक विकास हुआ है वो हमारा हुआ है, हमारे परिवार का नहीं। बहुत से संस्कार, रीतियाँ, रिवाज भले ही हमें अब विकास के क्रम में आडंबर लगने लगे हों, लेकिन हमारे परिवार के सदस्यों के लिए वो आस्था का विषय हैं। ऐसे में कई बार केवल उनका मन तथा मान रखने के लिए हमें इन सब में शामिल होना पड़ता है। परिवार हमारी शक्ति होता है, हमारा आधार होता है। हम उसे सिरे से खारिज नहीं कर सकते। दूसरी बात यह कि आप अपने संस्कार अपने बच्चों को तो दे सकते हैं लेकिन अपने माता-पिता, पत्नी आदि को नहीं दे सकते; क्योंकि उनको यह संस्कार उनके माता-पिता ने दिए हैं। यदि आपको किसी भी रीति, रिवाज, परंपरा को लेकर कुछ भी ग़लत लगता है तो आप अपने बच्चों को अपने विचारों से अवगत कराएँ। लेकिन इन दिनों यह अपेक्षा की जा रही है कि मैनेजर पाण्डेय जी जैसे बुज़ुर्ग जिनका पूरा जीवन प्रगतिशील विचारधारा के पोषण में और हिन्दी साहित्य की सेवा में बीता, वे अपने परिवार को भी प्रगतिशीलता से संस्कारित करें। हम श्री मैनेजर पाण्डेय जी द्वारा दिए गए सारे योगदान को एक सिरे से केवल एक ही फोटो के सामने आने पर खारिज करने पर उतर आ रहे हैं। यह उसी प्रकार की कट्टरता है जिस कट्टरता के विरोध में प्रगतिशील विचारधारा का जन्म हुआ। धार्मिक कट्टरता के विरोध में पैदा हुई विचारधारा स्वयं ही वैचारिक कट्टरता की ओर बढ़ रही है। परिवार के पूजा समारोह में इस प्रकार बैठे हुए फोटो हम सभी के होंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि हमारे अंदर की प्रगतिशीलता इस एक ही फोटो से समाप्त हो गई है। प्रगतिशीलता अंदर से उपजने वाला एक भाव है। प्रगतिशीलता एक गुण है जो हमें ठीक समय पर ग़लत को ग़लत और सही को सही कहने की ताक़त प्रदान करता है। याद रखिए यह क्रांतिक समय है, इस समय सही तरीक़े से लड़ने की आवश्यकता है। बाक़ी आप जानें... आप ज़्यादा समझदार हैं.....।

सादर आपका ही,

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन : पुस्तकों के नए संस्करण

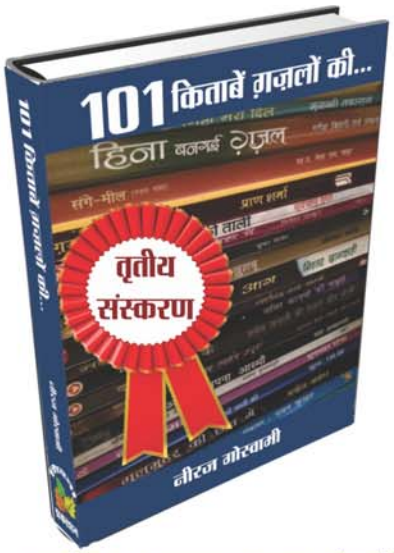

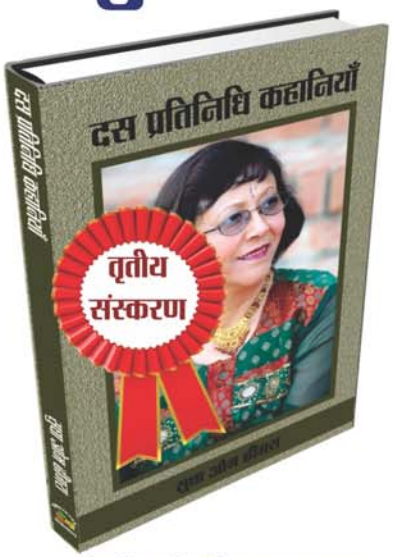

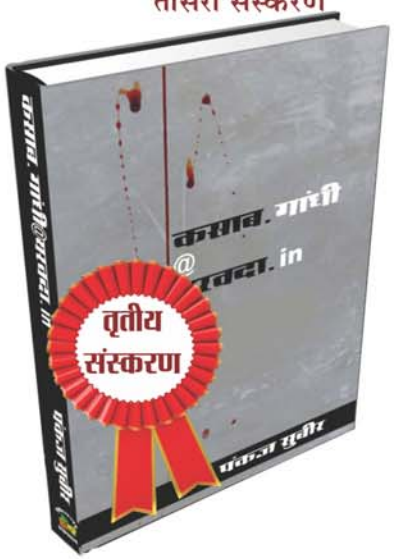

सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार तथा स्तंभ लेखक श्री नीरज गोस्वामी की पुस्तक समीक्षाओं का संग्रह–
101 किताबें ग़ज़लों की...
मूल्य : 250 रुपये
तीसरा संस्करण

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार डॉ. सुधा ओम ढींगरा की प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह–
दस प्रतिनिधि कहानियाँ
मूल्य : 100 रुपये
तीसरा संस्करण

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, कवयित्री तथा लघुकथाकार ज्योति जैन का प्रथम उपन्यास–
पार्थ... तुम्हें जीना होगा!
मूल्य : 175 रुपये
दूसरा संस्करण

हिन्दी के चर्चित कहानीकार तथा उपन्यासकार पंकज सुबीर की कहानियों का संग्रह–
कसाब.गांधी@यरवदा.in
मूल्य : 150 रुपये
तीसरा संस्करण

हिन्दी के चर्चित कहानीकार पंकज सुबीर का बहुचर्चित तथा प्रशंसित उपन्यास–
अकाल में उत्सव
मूल्य : 250 रुपये
पाँचवा संस्करण

वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी तथा लेखक डॉ. मनोहर अगनानी के लेखों का संग्रह–
अंदर का स्कूल
मूल्य : 150 रुपये
दूसरा संस्करण

शिवना प्रकाशन

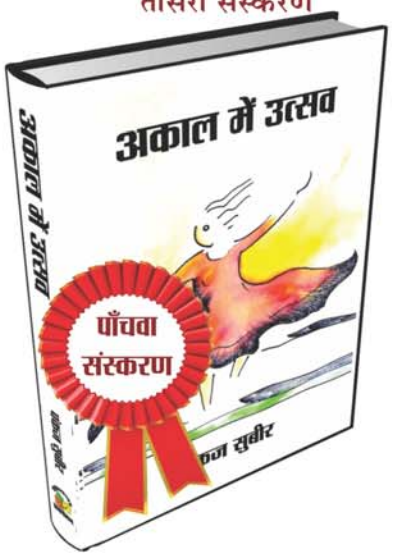

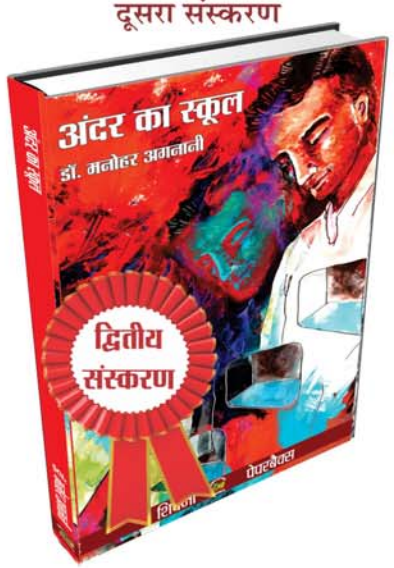

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

http://www.amazon.in http://www.flipkart.com
https://www.paytm.com http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● July-September 2017 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

शिवराज सिंह चौहान
मा. मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश शासन

एशिया कप
में मध्यप्रदेश तीरंदाजी अकादमी के खिलाड़ी
शिवांश अवस्थी
ने भारत के लिए जीता कांस्य पदक!

"शिवांश की अन्तर्राष्ट्रीय उपलब्धि पर बधाई"

यशोधरा राजे सिंधिया
मा. मंत्री
खेल एवं युवा कल्याण
म.प्र. शासन

बधाई

खेल और युवा कल्याण विभाग मध्य प्रदेश

खेल और युवा कल्याण विभाग, मध्यप्रदेश

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।